आ. लिखाचेव

# कान, नाक और गले के रोग

ЛИХАЧЕВ А. Г.

# БОЛЕЗНИ УХА, ГОРЛА И НОСА

«МЕДИЦИНА»
МОСКВА

आ. लिखाचेव

# कान, नाक और गले के रोग

अनुवादक:
डा. शंभूशरण श्रीवास्तव

मीर प्रकाशन, मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लिमिटेड
नई दिल्ली

1

A. LIKHACHEV

Diseases of the Ear, Nose and Throat

На языке хинди

## विषय-सूची

## नाक, ग्रसनी और स्वरयंत्र के रोग

# प्रस्तावना

कान, नाक ग्रौर गले के रोगों को पिछली शती के ग्रंत से ही एक विषय के ग्रंतर्गत रखा जाने लगा है, क्योंकि ये ग्रवयव संरचनात्मक रूप से परस्पर निकट हैं ग्रौर रोग से प्रभावित होने की इनकी क्षमता भी एक-दूसरे पर निर्भर करती है। एक ग्रौर कारण है कि इन सभी ग्रवयवों का परीक्षण गुहादर्शी पद्धतियों से होता है, जिनमें कृत्रिम प्रकाश ग्रौर विशेष उपकरणों की ग्रावश्यकता पड़ती है।

नासाकर्णकंठ-विज्ञान (संक्षेप में नाकक-विज्ञान) नाक, कान ग्रौर गले के रोगों का विज्ञान है। यह चिकित्सा शास्त्र की उन नयी शाखाग्रों में से एक है, जिनका महान ग्रक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद से सोवियत संघ में व्यापक रूप से विकास किया गया है।

क्रांति-पूर्व के रूस में नाकक-विज्ञान ग्रपनी शैशवावस्था में था ग्रौर विशेषीकृत चिकित्सा-सहायता जनता के केवल ग्रल्पसंख्यक भाग को उपलब्ध थी। महान ग्रक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद ग्राबादी को निःशुल्क के साथसाथ विशेषीकृत चिकित्सा-सहायता उपलब्ध कराने के लिये राष्ट्रव्यापी प्रयास किये गये। नाकक-विज्ञान को व्यापक रूप से विकसित किया गया: जनता को दक्ष चिकित्सा देने के लिये वहिरंग ग्रौर ग्रंतरंग नाककविभागों का विस्तृत तानाबाना बनाया गया।

नाकक-विज्ञानी सहायता के उपयुक्त संगठन ग्रौर चिकित्सा की नवीनतम पद्धतियों को व्यापक रूप से ग्रमल में लाने से सोवियत संघ में इन रोगों से मृत्यु की संख्या में काफी कमी ग्रायी है।

नाकक-विज्ञान के रोग-निरोधक पहलुग्रों पर भी सोवियत काल में बहुत ध्यान दिया गया है। ऊर्ध्व श्वसन-पथ के रोग-निरोध का महत्व न केवल

इस से ग्रस्त होने वालों की संख्या में कमी से, बल्कि सुधरे हुए शारीरिक विकास, विशेषकर बच्चों के शारीरिक विकास, से भी प्रमाणित है।

नाक, कान और गले के रोगों की सफल और सक्रिय रोकथाम तथा उपचार की पूर्वशर्तों में आई० एम० सेचेनोव और एस० पी० बोत्किन द्वारा प्रस्तुत और आई० पी० पावलोव व उनके अनुयाइयों द्वारा विकसित की गयी तंत्रिका संबंधी अवधारणाओं को और आगे व्यावहारिक रूप से लागू करना और उनका रचनात्मक विकास करना भी शामिल है। ये अवधारणाएं नैदानिक व्यवहार में मार्गदर्शक सिद्धांत बन गयी हैं।

सोवियत चिकित्सा शास्त्र का यह सिद्धांत – कि चिकित्सा रोगी की होनी चाहिये, न कि रोग की, – सोवियत संघ के नाकक-विज्ञान की आधारशिला है; यह कान, नाक तथा गले के रोगों की चिकित्सा के प्रति सही प्रणालिकिक दृष्टिकोण को दर्शाता है।

नासाकंठकर्ण-विज्ञान की यह पाठ्यपुस्तक माध्यमिक चिकित्सा स्कूलों के लिए लिखी गयी है और यह अत्यंत अनिवार्य सैद्धांतिक व व्यावहारिक सूचनाएं प्रदान करती है, जिनकी स्वतंत्र रूप से कार्यरत अवर चिकित्सा-कर्मियों को आवश्यकता होती है।

इस पुस्तक का उद्देश्य चिकित्सा-संस्थानों में सहायक चिकित्सकों के तौर पर, या स्वतंत्र रूप से कार्यरत अवर चिकित्साकर्मियों को नाकक के लंछक रोगों का निदान करने, सही मशविरा देने, सही इलाज करने तथा अवश्यकतानुसार रोगी की प्राथमिक चिकित्सा करने में सक्षम बनाना है।

नाक, कान और गले के रोगों के नैदानिक पहलुओं पर विचार करने से पूर्व हम इन अवयवों की शरीर-रचना और शरीरक्रिया-विज्ञान का संक्षिप्त विवरण दे देना आवश्यक समझते हैं, जिससे नैदानिक अध्ययन में काफी सुगमता हो सकेगी।

कान, नाक और गले के रोगों के शीघ्रातिशीघ्र निदान पर विशेष ध्यान दिया गया है, जो इलाज और रोग-निरोध दोनों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

प्रमुख रोगों (तीव्र कर्णशोथ, तीव्र कर्णमूल-प्रवर्ध के शोथ, गंभीर चिरकारी सपूय कर्णशोथ, आंतर कर्णशोथ, कर्णजनित तानिकाशोथ, कर्णजनित पूतिदोष, कर्णजनित मस्तिष्क-विद्रधि, अग्र शिरानाल के शोथ, कंठ-प्रदाह, कंठशोथ, आदि) के रोगजनन, लक्षण-विज्ञान तथा प्रवाह का विस्तार से विवेचन किया गया है ताकि प्रत्येक विशेष मामले में ह्रासमान

स्थिति का आकलन करने में मदद मिले तथा जरूरी होने पर रोगी को समय रहते चिकित्सालय में जाने अथवा विशेषज्ञ का परामर्श लेने की सलाह दी जा सके।

विभिन्न रोगों का वर्णन करते समय लेखक ने व्यक्तिगत रोग-निरोध, शरीरकठोरन (शीतोष्ण-सह्यता के विकास) के महत्व और विधियों को दिखा कर नासाकंठकर्ण-विज्ञान में रोग-निरोधक प्रवृत्ति पर बल देने का प्रयास किया है।

जनवरी 1960 में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति और सोवियत संघ की मंत्रिपरिषद ने "सोवियत संघ में चिकित्सा सम्बंधी देख-भाल और सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार के उपाय" के संबंध में एक निर्णय पारित किया, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं के और आगे विकास का एक व्यापक कार्यक्रम है।

स्वास्थ्य संबंधी इन उपायों का राष्ट्रव्यापी पैमाने पर कार्यान्वयन अवर चिकित्साकर्मियों की फौज की सहायता से ही पूरा किया जा सकता है, जिसमें 10 लाख से अधिक चिकित्साकर्मी शामिल हैं। नैदानिक विषय के रूप में नासाकंठकर्ण-विज्ञान न केवल अनेक संक्रामक रोगों के शीघ्रातिशीघ्र निदान में सहायता करता है, बल्कि अनेक उपद्रवों की रोकथाम में भी समान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

आज की एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या यह है कि तीव्र रोगों और रोगोत्तर प्रभावों की चिकित्सा, मध्यकर्ण के चिरकारी सपूय शोथ तथा परानासा कोटरों और स्वरयंत्र के चिरकारी रोगों (चिरकारी टांसिलशोथ आदि) से पीड़ित अभी भी जो अनेकानेक रोगी हैं, उनकी संख्या में कमी लाने, उन्हें स्वस्थ बनाने की विधियों के रूप में की जाये।

इन तथा दूसरी व्यावहारिक स्वास्थ्य समस्याओं के समाधान में अवर चिकित्साकर्मियों के प्रयास एक बहुमूल्य योगदान हैं। यह तथ्य योग्यताप्राप्त अवर चिकित्साकर्मियों के प्रशिक्षण को विशेष महत्व प्रदान करता है।

रोगों की घटनाओं में कमी लाने और कान, नाक व गले के कुछ रोगों के गंभीर उपद्रवों की रोकथाम करने में रोग-निरोध की अनूठी भूमिका को देखते हुए कुछ अध्यायों (चिरकारी सपूय मध्यकर्ण-शोथ, ग्रसनी के दग्धों, ग्रास नली, स्क्लेरोमा, आदि) में रोग-निरोध पर अलग से अनुभाग शामिल हैं। कुछ रोगों (स्क्लेरोमा, ओजेना, ग्रासनली-दग्ध आदि) के

उपचार से संबंधित अनुभागों में आधुनिक खोज-सामग्रियां, विशेषकर प्रतिजीवाणु पदार्थों के बारे में, दी गयी हैं।

ऊर्ध्व श्वसन-पथ के रोग-निरोधन और बहरेपन तथा श्रवण मंदता (कम सुनाई देना) की रोकथाम के अभियान में स्वास्थ्य-शिक्षा के महत्व को देखते हुए स्वास्थ्य-शिक्षा सम्बंधी व्याख्यानों के लिए सुझाये गये विषयों की एक सूची पुस्तक के अंत में दी गयी है; साथ में दो व्याख्यानों की सविस्तार रूप-रेखा भी प्रस्तुत है।

लेखक आशा प्रकट करता है कि प्राप्त हुई तमाम आलोचनाओं और उपयोगी सुझावों को ध्यान में रख कर तैयार किया गया प्रस्तुत संस्करण अवर चिकित्साकर्मियों के प्रशिक्षण में सहायक सिद्ध होगा।

आ० लिखाचेव

# कान के रोग

## कान की शरीर-रचना

कान के तीन हिस्से होते हैं—वाह्य, मध्य और आंतर (चित्र 1)। आंतर कान में श्रवण- तथा प्रघाण-विश्लेषकों के ग्राहक होते हैं।

### वाह्य कर्ण

वाह्य कान में कर्णपाली या वहिर्कर्ण और वहिर्कर्ण-कुहर होते हैं। सीप की आकृति वाली कर्णपाली (चित्र 2) में त्वचा से आवृत्त
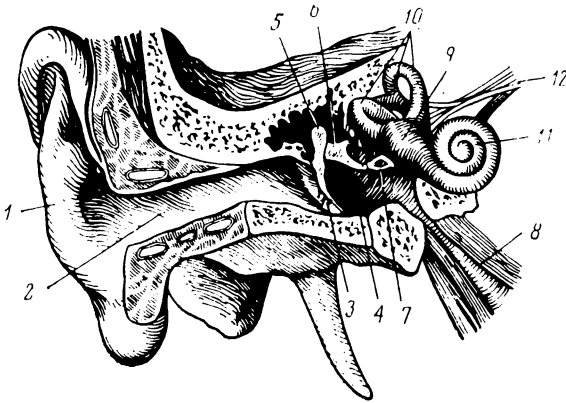
चित्र 1. वाह्य, मध्य और आंतरकान की शरीर-रचना (अर्ध-कार्यप्रदर्शी चित्र)
(1) कर्णपाली; (2) वहिर्कर्ण-कुहर; (3) मध्यकर्ण-कला; (4) मध्यकर्ण; (5) मैलियस; (6) इन्कस; (7) स्टेपिस; (8) यूस्टेशियन नली; (9) प्रघाण; (10) अर्धवृत्त नलिका; (11) कोक्लिया; (12) श्रवण (ध्वनिक) तंत्रिका।
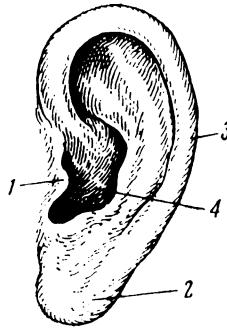
चित्र 2. कर्णपाली
(1) ट्रेगस ; (2) लोब ; (3) कर्ण-कुण्डलिनी ; (4) केवम कोकी।

उपास्थिक पट्टलिका होती है, जिसका पश्च तल समरूपी से उत्तल और चिकना होता है, जबकि अग्र तल अवतल होता है जिसमें अर्धचंद्र-पुटक तथा पोला होते हैं। कर्णपाली के आग्र तल की त्वचा पूर्यपास्थि से सीधी जुड़ी होती है, हालांकि पश्च तल पर ढीले कोशिकीय ऊतकों की एक छोटी परत के कारण यह पुटक बना सकती है। कर्णपाली की स्वतंत्र अग्रवाह्य परिसीमा कर्ण कुंडलिनी कहलाती है; नीचे की तरफ कर्णपाली धीरे-धीरे लोब में परिणत हो जाती है, जो उपास्थि विहीन होता है और जिसमें अच्छी तरह विकसित वसा, कोशिकीय ऊतक तथा कुछ वाहिकाएं तथा तंत्रिकाएं होती हैं। वहिर्कर्ण-कुहर के ऊपर उभरे हुए लघु प्रवर्ध को ट्रेगस (तंगिका) कहते हैं। कर्ण कुंडलिनी के सामने और समानांतर एक कटक होता है जिसे प्रतिकर्णशष्कुली कहते हैं जिसके पश्च छोर पर प्रतितुंगिका स्थित होती है।

वहिर्कर्ण-कुहर कर्णपाली के बाहरी तल पर स्थित कीप की आकृति वाले पोला (केवुम कोन्की) से लेकर मध्यकर्णकला या कर्ण-पट्टह तक फैला होता है। यह एक नलिका है जो क्षैतिज रूप से भीतर की तरफ और थोड़ा आगे की तरफ निर्देशित होती है। ट्रेगस के उच्चतम बिंदु से कर्णपटह के किनारे तक इस नलिका की औसत लम्बाई 3.5 सें० मी० होती है। नलिका के अंत में स्थित कर्ण-पट्टह वाह्य तथा मध्य कर्ण को अलग करता है। श्रवण नलिका का बाहरी तिहाई भाग कार्टिलेज (उपास्थि) तथा कला-ऊतक से बना होता है और आंतरिक दो-तिहाई भाग अस्थि से बना होता है।

वहिर्कर्ण-कुहर क्षैतिज तथा फ्रंटल तलों पर वक्रित होता है। कुहर के अस्थिय और उपास्थिक (कार्टिलेजिनस) हिस्से एक अधिक कोण बनाते हैं जो आगे तथा नीचे की तरफ खुलता है। अतः कर्णपटह की परीक्षा करते समय कर्णपाली को पीछे तथा ऊपर की तरफ खींचना चाहिए ताकि कुहर सीधा हो सके। वहिर्कर्ण-कुहर के अंडाकार अवकाश का अनुदैर्घ्य व्यास 1 सें० मी० होता है। इसकी चौड़ाई उम्र के साथ बदलती है और विभिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग हो सकती है। इसका सबसे संकीर्ण हिस्सा इस्थमस है जहाँ उपास्थिक और अस्थिय भाग का संगम होता है तथा आगंतुक शल्य के निवेशन की सबसे अधिक संभावना इसी स्थान पर रहती है। श्रवण-कुहर की भित्तियों पर त्वचा का स्तर होता है जो अस्थिय भाग में धीरे-धीरे पतला हो जाता है, उसका अवत्वक ऊतक समाप्त हो जाता है और वह पर्यस्थि-कला से अभिवर्धित हो जाता है। कार्टिलेजिनस भाग को ढकने वाली त्वचा में रोम, त्वग्वसीय-ग्रंथियां और कर्णगूथ-ग्रंथियां प्रचुर मात्रा में होती हैं जो कर्णगूथ का स्राव करती हैं। अस्थिय भाग की त्वचा में न तो रोम होते हैं और न ग्रंथियां। वहिर्कर्ण-कुहर की चार भित्तियां होती हैं: ऊर्ध्व भित्ति शंख-अस्थि के पट्टकी भाग से बनी होती है, इसका आंतरिक भाग, मध्य कपाल खात के फर्श के किनारे पर पाया जाता है; पश्च भित्ति, मैस्टॉइड प्रवर्ध की अग्र भित्ति बनाती है; अग्र और निम्न भित्तियों के आंतरिक हिस्से शंख-अस्थि के मध्यकर्ण वाले भाग के बने होते हैं। अग्र-निम्न भित्ति का बाहरी तिहाई भाग कार्टिलेज का बना होता है जिसमें दो लम्ब विदार होते हैं जिनसे शोथ-प्रक्रिया वहिर्कर्ण-कुहर से कर्णपूर्व-ग्रंथि के चारों ओर स्थित संयोजी ऊतक में फैल सकती है और इसके विपरीत भी हो सकता है। अग्र भित्ति मैंडिबिल (चिबुकास्थि) के संधायक शीर्ष से सटी होती है। यही कारण है कि वहिर्कर्णकुहर की अग्र भित्ति में शोथ होने पर रोगी को मुँह खोलने और चबाने पर दर्द की अनुभूति होती है। निचले जबड़े पर चोट से, गिरने या चिबुक पर ऊपर की ओर की गयी चोट से श्रवण कुहर की अग्र भित्ति में अस्थि-भंग हो सकता है जिसमें चिबुकास्थि का संधायक शीर्ष पीछे और ऊपर की ओर ढकेला जाता है।

नवजात शिशुओं में न तो अस्थिय कर्णकुहर होता है और न कर्णमूल प्रवर्ध ही। उनमें अस्थिय कर्णकुहर के स्थान पर अस्थिय वलय होता है, जो ऊपरी भाग के छोटे हिस्से में अपूर्ण होता है और कला-कार्टिलेजिनस कर्णकुहर से सीधे जुड़ा होता है। अस्थिय वलय की आंतरिक सीमा पर

अस्थिय परिखा होती है, जिसमें मध्य कर्ण-कला निवेशित होती है। अस्थि-रहित ऊपरी भाग में कर्ण-पट्टह पट्टक की निचली कोर से सीधा जुड़ा होता है; यह रिविनस की भंगिका कहलाता है। तीसरे वर्ष के अंत तक वहिर्कर्ण-कुहर पूरी तरह विकसित हो जाता है।

वाह्य कर्ण का रक्त संभरण, वाह्य कैरोटिड धमनी की शाखाओं के द्वारा होता है। इसका तंत्रिका-प्रेरण त्रिधारा-तंत्रिका की शाखाओं के अलावा श्रवण-तंत्रिका के द्वारा भी होता है, जो कर्णकुहर की पश्च भित्ति में शाखित होती है। इसीलिए कर्ण-कुहर की पश्च भित्ति में यांत्रिक क्षोभ होने पर (जैसे कर्ण-गूथ निकालते समय) कई बार खांसी प्रतिवर्त होती है। कर्णकुहर की भित्तियों से लसीका निकटतम लसीका-पर्व में जाता है जो उत्कोष्ठ के आगे, कर्णमूल प्रवर्ध पर और कर्ण कुहर की निचली भित्ति के नीचे स्थित होती हैं। वहिर्कर्णकुहर में शोथ के साथ कई बार इन लसीका-पर्वों में सूजन और दर्द होता है।

## मध्य कर्ण की झिल्ली (कर्णपटह)

मध्य कर्ण की झिल्ली (चित्र 3, रंगीन तालिका I, चित्र 1) या कर्णपटह पतला अर्ध-पारदर्शी दीर्घवृत्तीय चकती है जो वाह्य और मध्य कर्ण के बीच में स्थित होता है। यह 9.5-10 मि० मी० × 8.5-9 मि० मी० माप का होता है। कर्णपटह का अधिकतर भाग जो मध्य कर्ण-वलय की अस्थिय खातिका में उपयोजित होता है, तना हुआ होता है और कर्णपट्टह का तना हुआ भाग कहलाता है। कर्णपट्टह का दूसरा भाग, जो आगे और ऊपर की ओर मुखरित होता है और पट्टक की भंगिका (रिविनस की भंगिका) से सीधे जुड़ा होता है, शिथिल होता है और कर्णपट्टह का शिथिल भाग या श्रापनेल की झिल्ली कहलाता है। कर्ण-पट्टह की तीन परतें होती हैं, बाहरी या वाह्य त्वचीय परत जो श्रवण-कुहर के साथ सतत होता है; मध्य परत में त्रिज्य और वर्तुल संयोगी ऊतक-तंतु होते हैं और आंतरिक परत की श्लेष्मा मध्यकर्ण-गुहा की श्लेष्मा-कला से सतत होती है। श्रापनेल कला या कर्णपट्टह के शिथिल भाग में दो ही परतें होती हैं, उसमें तंतु-ऊतक का मध्य स्तर नहीं होता।

बचपन के शुरूआत में ढीली अवश्लेष्मिक परत के कारण कर्णपट्टह
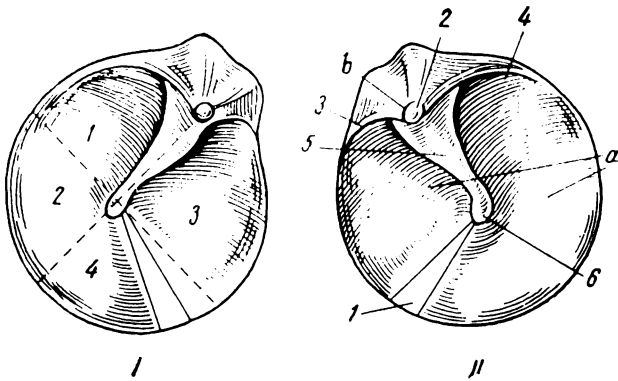
चित्र 3. सामान्य कर्ण-पट्टह का बायां और दायां भाग

I दायां कर्ण-पटह चार भागों में विभाजित होता है: (1) पश्च-ऊपरी ; (2) पश्च निम्न ; (3) अग्र ऊपरी ; (4) अग्र निम्न।
II बायां कर्ण-पट्टह: (a) कर्ण-पट्टह का आतत भाग ; (b) कर्ण-पट्टह का शिथिल भाग ; (1) प्रकाश शंकु ; (2) मैलियस का लघु प्रवर्ध ; (3) तथा (4) अग्र और पश्च पुट्टक ; (5) मैलियस का हस्तक ; (6) अम्बो

तुलनात्मक तौर पर मोट्टा होता है। वह समय के साथ दृढ़ होता जाता है और बुढ़ापे में काफी पतला हो जाता है।

कर्णपट्टह कर्ण-कुहर के लम्बे अक्ष के साथ तिर्यकतः स्थित होता है न कि लम्ब-रूप से, इसलिए यह आगे, नीचे और अंदर की ओर निर्देशित होता है। नवजात और स्तनपोषित शिशुओं में यह लगभग क्षैतिज होता है।

कर्णपट्टह का कर्ण-कुहर से परीक्षण करने पर एक कीप रूपी अवतल आकार दिखाई देता है जिसके केंद्र में सबसे गहरे स्थान पर एक उत्सेध होता है जो अम्बो कहलाता है। मैलियस का हस्तक जो कर्णपट्टह की तंतु परत में संपुट्टित होता है, अम्बो से शुरू होकर ऊपर और आगे की ओर जाकर सुई-शीर्ष के माप के छोटे मुंड में समाप्त होता है जो मैलियस का लघु प्रवर्ध कहलाता है। लघु प्रवर्ध से फैले हुए अग्र और पश्च पुट्टक कर्णपट्टह के ऊपरी शिथिल भाग को निचले आतत (तने हुए) भाग से अलग करते हैं।

मध्य कर्ण में मध्यकर्ण-गुहा, अपनी कोशिकीय व्यवस्था के साथ मैस्टाइड (चुचुकवत) प्रवर्ध, तथा यूस्टेशियन नली होते हैं (चित्र 4) और सभी एक दूसरे से सीधे जुड़े रहते हैं।

मध्यकर्ण-गुहा एक छोटा कोष्ठ है जो एक घन सें० मी० माप का होता है और यह मध्यकर्ण-कला तथा आंतरकर्ण के बीच में शंख-अस्थि की गहराई में स्थित होता है। मध्यकर्ण-गुहा, सामने की ओर, यूस्टेशियन नली के द्वारा नासा-ग्रसनी से संचार करती है और पीछे वह मैस्टाइड कोटर के प्रवेश के द्वारा मैस्टाइड कोटर और मैस्टाइड प्रवर्ध की कोशिकाओं से संचार करती है। मैस्टाइड प्रवर्ध की कोशिकाओं के समान मध्यकर्ण-गुहा में वायु होती है जो यूस्टेशियन नली के द्वारा आती है।

परंपरागत तौर पर मध्यकर्ण-गुहा को तीन भागों में विभाजित किया जाता है। मध्य और सबसे बड़ा भाग, जो कर्णपटह के आतत (तने हुए) भाग के तुल्य है, मीजो टिम्पेनम कहलाता है। ऊपरी भाग जो मध्य भाग के ऊपर स्थित है, अधिमध्य कर्ण या अधिमध्य दरी या एटिक कहलाता है। निचला भाग हाइपोटिम्पेनम, कर्ण-पटह के स्तर से नीचे स्थित होता है।
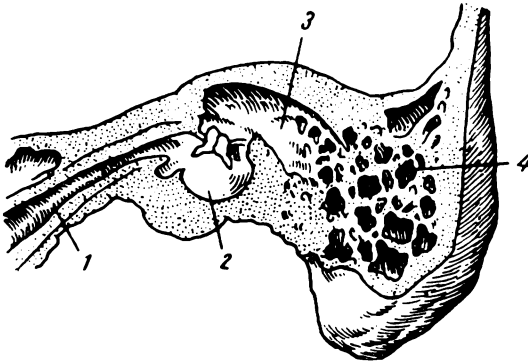
चित्र 4. मध्य कर्ण दर्शाता हुआ भाग

(1) यूस्टेशियन नली; (2) मध्यकर्णगुहा; (3) कोटर; (4) मैस्टाइड कोशिकाएं

मध्यकर्ण-गुहा की छह भित्तियां होती हैं।

मध्यकर्ण की गुहा की छत अस्थि की पतली पट्टिका की बनी होती है जो मध्य कर्ण की गुहा को मध्य कपाल के खात से अलग करती है जहाँ शंख-अस्थि स्थित होता है। इस पट्टिका में कई बार जन्मजात विदार होते हैं जिनके द्वारा मध्यकपाल-खात से आने वाली वाहिकाएं गुजरती हैं। इन्हीं शारीरी विशेषताओं की वजह से तीव्र मध्यकर्ण-शोथ हुए बच्चों में कई बार तानिका के लक्षण देखे जाते हैं।

मध्यकर्ण-गुहा की निम्न भित्ति ( या फर्श ) जुगूलर-कंद से एक अच्छी-खासी घनी अस्थिय पट्टिका के द्वारा अलग होती है। इस भित्ति में अस्थि-विदार शायद ही कभी पाये जाते हैं।

यूस्टेशियन नली मध्यकर्ण-गुहा को आंतरिक कैरोटिड धमनी से अलग करने वाली अग्र भित्ति में स्थित एक द्वार से शुरू होती है।

पश्च भित्ति के ऊपरी भाग में एक द्वार मैस्टॉइड कोटर में अग्रसर होता है।

आंतरिक भित्ति मध्यकर्ण-गुहा को आंतर कर्ण से अलग करती है। इसमें छोटा उत्सेध होता है जो प्रोतुंग कहलाता है और वह कौक्लिया के आधारी मोड़ के तुल्य है। प्रोतुंग के ऊपर और पीछे अंडाकार गवाक्ष या प्रघाण-गवाक्ष होता है, जो प्रघाण की ओर अग्रसर होता है और स्टेपिस की प्रघाण-पट्टिका द्वारा ढका जाता है। प्रोतुंग के नीचे और पीछे गोलाकार गवाक्ष या कर्णावर्ती गवाक्ष है जो कौक्लिया की ओर अग्रसर होता है और यह एक पतली झिल्ली, गौण मध्यकर्ण-कला से भरा होता है।

आंतरिक भित्ति में अंडाकार गवाक्ष के ऊपर एक अस्थिय टोरस है जो आनन की तंत्रिका-नलिका का क्षैतिज भाग है। कोष्टर के प्रवेश पर पहुंचने पर नलिका नीचे की ओर मुड़ कर अवरोहित जानु बनाती है और फिर वह कर्ण-कुहर की पश्च भित्ति के पीछे और स्कंभचुचुकवत ( स्टाइलोमैस्टाइड ) रंध्र द्वारा कपाल के आधार में जाती है। इस अस्थिय नलिका की भित्तियां अपरदित हो सकती हैं। ऐसे रोगियों में मध्यकर्ण-कला विदारों में से निकल कर आनन-तंत्रिका के आवरण से सीधे संपर्क में आ जाती है। इस वजह से सपूय मध्यकर्ण-शोथ में कई बार आनन-तंत्रिका का आंशिक घात या घात हो सकता है। आनन-तंत्रिका नलिका के कुछ पीछे और ऊपर, मैस्टाइटड कोर की आंतरिक भित्ति पर क्षैतिज अर्धवृत्त नलिका

का शिखर होता है जिसकी स्पष्ट आकृति मध्य कर्ण पर हो रही शल्य-क्रियाओं में दिक् विन्यास का काम करती है।

मध्यकर्ण-गुहा की बाह्य भित्ति मध्यकर्ण-कला द्वारा बनती है और कर्ण-पटह के ऊपर यह भित्ति अधिमध्यकर्ण-दरी या एटिक की बाह्य अस्थिय भित्ति से बनती है।

मध्यकर्ण-गुहा में तीन श्रवण-अस्थिकाएं होती हैं: मैलियस, इन्कस और स्टेपिस (चित्र 5)। ये तीनों ही जोड़ों और स्नायुओं के द्वारा आपस में जुड़ी होती हैं और कर्णपटह तथा अंडाकार गवाक्ष के बीच निरंतर और लगभग सुनम्य कड़ी बनाती हैं। मैलियस का हस्तक मध्यकर्ण-कला की तन्तु-परत में गुंथा हुआ होता है और स्टेपिस की पाद-पट्टिका अंडाकार गवाक्ष में वलय-स्नायु के द्वारा जड़ी होती है। इन्कस मैलियस और स्टेपिस के बीच में स्थित होता है। पूरा तंत्र स्नायुओं द्वारा अपने स्थान पर रखा जाता है जो मैलियस और इन्कस को मध्यकर्ण-गुहा की भित्तियों से बांधती हैं।

मध्य कर्ण की पेशियां. मध्यकर्ण-गुहा में दो पेशियां होती हैं: (1) तानिका मध्यकर्ण-पेशी, जो मध्यकर्ण-कला को खींचती है। यह यूस्टे-शियन नली के ऊपर अस्थिय नलिका में स्थित होती है और मैलियस के हस्तक से जुड़ी होती है। (2) स्टेपीडियस पेशी, जो मध्यकर्ण-गुहा की पश्च भित्ति से निकलती है और स्टेपिस के शीर्ष से एक पतली कंडरा
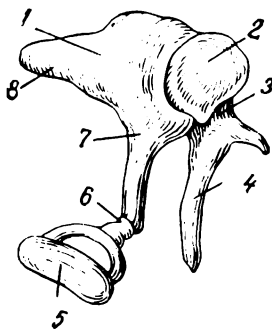
चित्र 5. संबद्ध श्रवण अस्थिकाएं

(1) इन्कस की बाडी; (2) मैलियस का शीर्ष; (3) मैलियस की ग्रीवा; (4) हस्तक; (5) स्टेपिस की पट्टिका; (6) स्टेपिस का शीर्ष; (7) इन्कस का लम्बा प्रवर्ध; (8) इन्कस का लघु प्रवर्ध

द्वारा जुड़ी होती है। तानिका मध्यकर्ण का तंत्रिका-प्रेरण त्रिधारा-तंत्रिका की शाखा और स्टेपीडियस की आनन-तंत्रिका की शाखा द्वारा होता है।

यूस्टैशियन या श्रवण-नली, जो लगभग 3.5 सें० मी० लंबी होती है, मध्यकर्ण-गुहा को नासा-ग्रसनी से जोड़ती है। इस नली के ऊपरी तिहाई भाग, जो मध्यकर्ण-गुहा से सटा होता है, की भित्तियां अस्थिय होती हैं, जबकि बाकी निचला भाग नासा-ग्रसनी की ओर अग्रसर होता है। उसकी भित्तियां झिल्लियों और उपास्थियों से बनी होती हैं। यूस्टेशियन नली पर स्थित रोमक उपकला के सिलिया (रोमों) का संचरन नासा-ग्रसनी की तरफ होता है। गतिरहित स्थिति में यूस्टेशियन-नली निपात अवस्था में रहती है, लेकिन निगलने की प्रत्येक क्रिया के साथ यह अपने से जुड़ी हुई कोमल तालू-पेशियों के संकुचन द्वारा खुलती है और इससे वायु मध्यकर्ण-गुहा में आती है।

चुचुकवत (मैस्टाइड) प्रवर्ध, जो वहिर्कर्ण के कुहर के ठीक पीछे स्थित है, एक अस्थिय संरचना है, जो नीचे की ओर वहिर्सरित होता है और उससे उरोजत्रुक कर्णमूलिका-पेशी जुड़ी होती है। छोटे बच्चों में मैस्टाइड प्रवर्ध पूरी तरह विकसित नहीं होता और यह अस्थिय मध्यकर्ण-वलय के पीछे अस्थिय ट्यूबरकल के रूप में होता है।

प्रवर्ध की ऊपरी सीमा शंख लाइन (एक अस्थिय टोरस) है, जो जाइयगोमेतिक प्रवर्ध का पीछे की ओर विस्तार है। मध्य कपाल के खात का फर्श सामान्यतः इस लाइन के स्तर पर होता है।

मैस्टाइड प्रवर्ध की अग्र भित्ति वहिर्कर्ण-कुहर की पश्च अस्थिय भित्ति है। कर्ण-कुहर की ऊपरी भित्ति में उस स्थान पर जहाँ पश्च भित्ति उससे मिलती है, एक छोटा अस्थिय शिखर होता है, जो अधिकुहर-कंटक कहलाता है और वह वहिर्कर्ण-कुहर के ऊपर स्थित होता है। कंटक के पीछे एक गर्त है जो मैस्टाइड खात कहलाता है। अधिकुहर-कंटक और शंख-लाइन शल्य-क्रियाओं में महत्वपूर्ण निर्देशक चिन्ह होते हैं; मैस्टाइड प्रवर्ध की गहराई में मैस्टाइड खात के प्रक्षेप पर मैस्टाइड कोटर स्थित होता है।

मैस्टाइड प्रवर्ध की आंतरिक भित्ति लैबीरिन्थ तक जाती है और पीछे यह कपालेतर खात से सीमित होती है। कपालेतर खात के सामने के तल पर एक चौड़ी S-आकृति वाली खातिका होती है जिसे अवग्रह परिखा कहते हैं तथा जिसमें ड्यूरामाटेर के अवग्रह साइनस का कुछ भाग रहता है। मैस्टाइड प्रवर्ध का केन्द्रीय भाग कोटर है जो अधिमध्य कर्ण की दरी के

ठीक पीछे रहता है। कोटर मध्यकर्ण-गुहा तथा मैस्टाइड प्रवर्ध की वायु से भरी हुई कोशिकाओं के साथ संचार करता है। कोटर की ऊपरी भित्ति या छत इसको मध्य कपाल खात से अलग करती है।

मैस्टाइड प्रवर्ध में निम्न प्रकार की संरचनाएं पायी जाती हैं: वायवी या बड़ी कोशिका से युक्त संरचना, डिप्लोइक और संहित या "श्वेत पट्टल"। वायवी संरचनाओं में मैस्टाइड प्रवर्ध की गुहा पतले अस्थिय विभाजनों द्वारा बड़ी व छोटी कोशिकाओं का जालक बनाती है। डिप्लोइक संरचना में छोटी कोशिकाएं होती हैं जो डिप्लोइटिक अस्थि से मिलती हैं; मैस्टाइड संरचना का मिश्रित रूप सबसे अधिक देखा जाता है जिसमें छोटी कोशिकाओं के साथ बड़ी कोशिकाएं पाई जाती हैं। संहित संरचनाओं में अस्थि दृढ़ीभूत होती है और कोशिकाएं बहुत कम होती हैं। यह संरचना कई बार चिरकारी सपूय मध्यकर्ण-शोथ के फलस्वरूप पाई जाती है।

मध्यकर्ण-कुहर, कोटर और मैस्टाइड कोशिकाओं की भित्तियों पर निरंतर पतली श्लेष्मा का अस्तर होता है जिसमें श्लेष्मा ग्रंथियां नहीं होती हैं। यूस्टेशियन नली, और मध्यकर्ण-गुहा के फर्श का सटा हुआ हिस्सा रोमक स्तंभाकार उपकला से आच्छादित होते हैं। यूस्टेशियन नली के कार्टिलेजिनस भाग की श्लेष्मा में श्लेष्मा-ग्रंथियां होती हैं जो मध्य कर्ण के अन्य भागों की श्लेष्मा में नहीं पाई जातीं।

मध्यकर्ण का अधिकतर रक्त-संचरण वाह्य कैरोटिड धमनी की शाखाओं द्वारा होता है। मध्य कर्ण से शिरीय रक्त का निकास ड्यूरामाटेर की शिराओं, शिरा-नालों और कैरोटिड धमनी के चारों ओर पाये जाने वाले शिरा-जालकों द्वारा होता है। लसीका-निकास दो तरह से होता है: (1) यूस्टेशियन नली की लसीका-वाहिकाओं द्वारा, प्रत्यकग्रसनी के लसीका-पर्व में और आगे, गहरी ग्रीवा-ग्रंथियों में; (2) मध्यकर्ण-गुहा की वाहिकाओं द्वारा, वहिर्कर्णकुहर की लसीका-वाहिनियों में और उत्कोष्ठ के आगे और पीछे स्थित लसीका-पर्वों में होता है। मध्य कर्ण का तंत्रिका-संभरण जिह्वा-ग्रसनी की तंत्रिका, आनन-तंत्रिका और अनुकम्पी तंत्रिकाओं की शाखाओं द्वारा होता है।

## आंतर कर्ण या लैबीरिन्थ

आंतर कर्ण में कला-लैबीरिन्थ और अस्थिय लैबीरिन्थ होते हैं। अस्थिय लैबीरिन्थ, कला-लैबीरिन्थ को कैप्सूल की तरह घेरे रहता है। कला-लैबी-

चित्र 6. दायां तरफ का अस्थिय लैबीरिन्थ
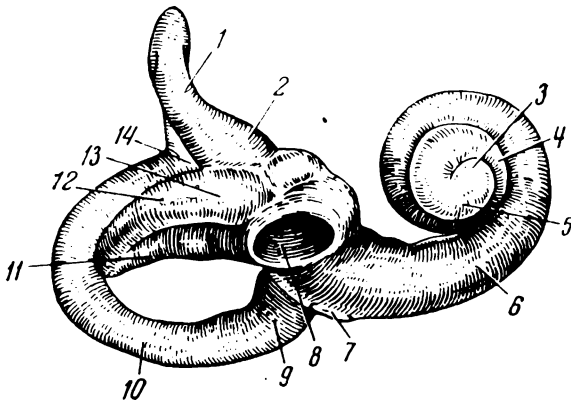
(1) फ्रन्टल अर्धवृत्त नलिका; (2) फ्रन्टल अर्धवृत्त नलिका की तुम्बिका; (3) काक्लिया का शिशाग्र; (4) काक्लिया का मध्यवर्ती मोड़; (5) काक्लिया का शिशाग्र मोड़; (6) काक्लिया का आधारी मोड़; (7) गोलाकार गवाक्ष; (8) अंडाकार गवक्ष; (9) अग्रपश्च अर्धवृत्त नलिका की तुम्बिका; (10) अग्रपश्च अर्धवृत्त नलिका; (11) तथा (12) ...ग; (13) क्षैतिज अर्धवृत्त नलिका की तुंगिका; (14) फ्रन्टल व अग्रपश्च अर्धवृत्त नलिकाओं के युक्त क्रस

...न्थ एंडोलिम्फ नामक तरल से भरा रहता है, जबकि उसके चारों ओर ...ा मेरुदण्ड-तरल जो उसे अस्थिय कवच से अलग करता है, परिलसीका ...हलाता है।

अस्थिय लैबीरिन्थ प्रघाण, तीन अर्धवृत्तीय नलिकाओं और काक्लिया ...ा बनता है (चित्र 6)।

प्रघाण अस्थिय लैबीरिन्थ के केंद्र में रहता है और इसकी वाह्य भित्ति ...ा अंडाकार गवाक्ष रहता है। इसके सामने आंतरिक भित्ति में प्रघाण के ...ा कला-कोशों के लिए दो दरियां होती हैं।

अग्र कोश लघु कोश कहलाता है। यह प्रघाण के आगे स्थित कला-...ाक्लिया के साथ संचार करता है। पश्च कोश यूट्रिकल कहलाता है और ...ह प्रघाण के ऊपर और पीछे जाने वाले त्रिकलीय अर्धवृत्तीय नलिकाओं ...ा जुड़ा रहता है। प्रघाण के परस्पर संचारी कोशों में स्थैतिको-गतिकीय ...ाहक होते हैं जो मैकुला एकोस्टिके कहलाते हैं। ये कर्णबालुका-अंग हैं जो

विभेदीकृत विशिष्ट तंत्रिका-उपकला से बनते हैं। यह तंत्रिका-उपकला चूने के कार्बोनेट और फास्फेट कणों, यानी कर्णबालुकाओं वाली कला से ढकी रहती है।

अर्धवृत्तीय नलिकाएं एक-दूसरे से समकोण पर होती हैं और ये व्योम के तीन तलों का प्रतिनिधित्व करती हैं। अर्धवृत्तीय नलिकाएं संख्या में तीन हैं—वाह्य या क्षैतिज, ऊपरी या फ्रंटल, और पश्च या अग्रपश्च। हर नलिका का एक छोर एक बड़े क्षेत्र में खुलता है, जो तुम्बिका कहलाता है, तथा इसका दूसरा छोर समतल होता है। फ्रंटल और अग्रपश्च नलिकाओं का एक संयुक्त समतल तना होता है जो युक्त क्रस कहलाता है।

प्रत्येक कला-नलिका की तुम्बिका में एक कटक होता है जो एम्पूला शिखा कहलाता है। यह एक ग्राहक है जिसमें तंत्रिकांत होता है। इसमें अत्यधिक विभेदीकृत तंत्रिका-उपकला या रोम और आधार-कोशिकाएं होती हैं। रोम-कोशिकाओं का खुला तल रोमों से ढका रहता है जो एंडोलिम्फ के तनिक विस्थापन या दाब से अनुक्रिया करता है।

प्रघाण और अर्धवृत्तीय नलिकाओं के ग्राहक प्रघाण-विश्लेषक के परिसरीय तंत्रिका-अंत हैं।

काक्लिया एक अस्थिय नली है जो मोडियोलस नामक केन्द्रीय स्तंभ के चारों ओर ढाई चक्कर पर लिपटी होती है और इसका रूप घोंघे के कवच जैसा होता है।

मोडियोलस से वाह्य भित्ति की ओर अग्रसर होने वाला अस्थिय-कला-फलक, जो मोडियोलस को चारों ओर से लपेटता भी है, नली की ल्यूमेन की दो दिशाओं में विभाजित करता है—ऊपरी या घ्राण अद्य:कुल्या और निचली या कर्णावर्त अद्य:कुल्या में, जो काक्लिया के शिखर से हेलीकोट्रेमा नामक छोटे द्वार से संचार करती हैं। दोनों वाहिकाएं परिलसीका से भरी रहती हैं।

घ्राण अद्य:कुल्या प्रघाण के साथ संचार करती है, जबकि, कर्णावर्त अद्य:कुल्या गौण मध्यकर्ण-कला वाले गोलाकार गवाक्ष द्वारा मध्यकर्ण-गुहा की सीमा बनाती है।

काक्लिया की घ्राण अद्य:कुल्या में पतली रेइस्नेर्स-कला होती है जो अस्थिय सर्पिल फलक से फैली रहती है और एंडोलिम्फ से भरे एक त्रिकोणी परिच्छेद को अलग करती है। इसे काक्लियर वाहिनी कहते हैं।

कोर्टी के अंग (चित्र 7) कर्ण विश्लेषक की एक गूढ़ ग्राहक संरचना
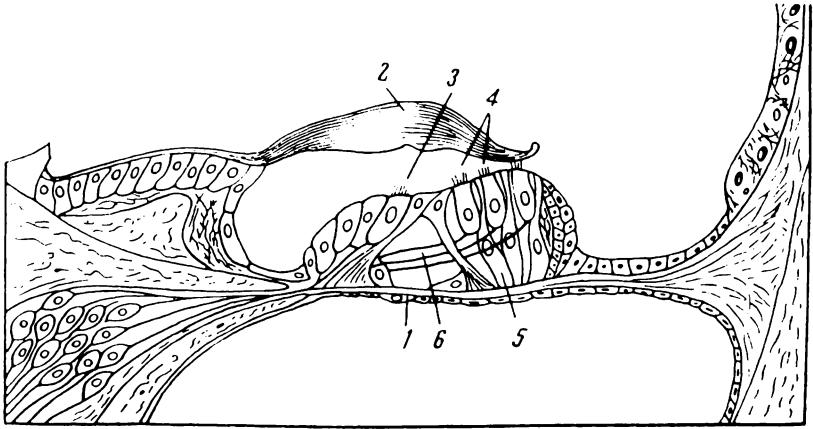
चित्र 7. कोर्टी के अंग (कार्य प्रदर्शी चित्र)

(1) आधार-कला; (2) टैक्टोरियलकला; (3) तथा (4) रोम कोश; (5) आधार-कोश; (6) रोम कोशों तक पहुंचने वाले तंत्रिका तंतु

हैं जो आधार-कला या काक्लियर नली की निचली भित्ति पर टिकी रहती है। आधार-कला विभिन्न लंबाइयों वाले प्रत्यस्थ तंतुओं की व्यवस्था है जो अस्थिय सर्पिल फलक से सामने काक्लिया की वाह्य भित्ति तक फैले रहते हैं।

कोर्टी के अंगों की काफी गूढ़ ऊतकीय संरचना होती है, जिसमें रोम और आधार-कोश होते हैं। रोमों द्वारा ढकी हुई संवेदी कोशिकाएं छोटे समूहों में आधार-कोशों के बीच पायी जाती हैं। कोश एक कला द्वारा ढके रहते हैं, जो टैक्टोरियल कला कहलाती है। संवेदी रोम-कोश काक्लियर तंत्रिका की शाखाओं के जाल से घिरे रहते हैं जो श्रवण-तंत्रिका के अस्थिय सर्पिल फलक में स्थित सर्पिल गंडिका से हो कर आगे दुर्बोध मार्गों द्वारा कपाल कोर्टेक्स में जाती हैं।

## कान का क्रिया-विज्ञान

कान उन ज्ञानेन्द्रियों में से एक है जिनके द्वारा मनुष्य बाहरी दुनिया के संपर्क में आता है।

आई० पी० पावलोव का ज्ञानेन्द्रियों के बारे में सिद्धांत उन्हें विश्लेषकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिनमें से प्रत्येक निम्नलिखित अवयवों की एक

इकहरी पद्धति बनाता है: (1) परिसरीय हिस्सा या ग्राहक यानी ऐसे तंत्रिका-ग्रंत जो कि कुछ प्रकार के उद्दीपकों से ग्रनुक्रिया करते हैं; (2) तंत्रिका-चालक जो ग्राहक से ग्रावेग का वहन करते हैं; (3) मस्तिष्क प्रान्तस्था में एक केन्द्रीय हिस्सा, जहाँ समस्त उद्दीपनों का पूरा विश्लेषण होता है तथा उनको संवेदनाग्रों में रूपांतरित किया जाता है।

कान दो काम करता है। पहला, सुनने का ग्रौर दूसरा—व्योम में दिशाविन्यास करने तथा संतुलन की ग्रवस्था कायम रखने का।

## श्रवण-क्रिया

कान की श्रवण-क्रिया के ग्रंतर्गत ध्वनि का वाह्य तथा मध्य कर्णों या कपाल-हड्डियों के द्वारा चालन तथा कोर्टी के सर्पिल इन्द्रिय (श्रवण-विश्लेषकों के ग्राहक) के द्वारा ग्रभिग्रहण ग्राते हैं। वाह्य तथा मध्य कर्ण ध्वनि-चालक-उपकरण के तौर पर तथा ग्रांतर कर्ण, विशेष तौर पर कोर्टी इन्द्रिय, ध्वनिबोध के उपकरणों के तौर पर काम करते हैं।

जानवरों की ग्रपेक्षा मनुष्य में वहिर्कर्ण कम महत्वपूर्ण होता है, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि यह ध्वनियों का संग्रह करने तथा उनकी दिशा निश्चित करने में भूमिका ग्रदा करता है।

वाह्यकर्ण-कुहर ध्वनि-तरंगों का बाहरी माध्यम से मध्य-कर्ण-कला तक चालन करता है। कुहर के व्यास से सुनाई पड़ने की तीक्ष्णता का कोई संबंध नहीं है। हालांकि इसकी ग्रविवरता, साथ ही इसका पूर्ण ग्रवरोध—जैसा कि कर्णगूथ के ग्रंतर्घटन में होता है—ध्वनि-तरंगों के मार्ग को ग्रवरूद्ध कर देता है तथा श्रवण को काफी कम कर देता है।

मध्यकर्ण-कला से टकराने वाली ध्वनि-तरंगें इसमें कंपन शुरू कर देती हैं। ये तरंगें ग्रस्थिका-शृंखला को प्रेषित हो जाती हैं, क्योंकि कर्ण-पटह मैलियस के हस्तक से जुड़ा होता है। स्टेपिस की पाद-पट्टिका ध्वनि-तरंगों की प्रावस्था के ग्रनुसार लैबीरिंथ के ग्रडाकार गवाक्ष को बंद करती हुई ग्रंडाकार गवाक्ष के भीतर-बाहर झूलती है। ग्रंडाकार गवाक्ष में स्टेपिस की पाद-पट्टिका का कंपन परिलसिका में कंपन शुरू कर देता है। ये तरंगें ग्राधार-कला तथा कोर्टी के ग्रंगों में, जिनको ये ग्राधार प्रदान करती हैं, प्रेषित हो जाती हैं।

ग्राधार-कला के कंपन के कारण सर्पिल कोर्टी इन्द्रिय की लोम-कोशिकाएं ऊपर झूल रही टोक्टोरियल कला के संपर्क में ग्रा जाती हैं। साथ ही,

तरंगों की यांत्रिक ऊर्जा तंत्रिका-उत्तेजन की शरीरवृत्तिक प्रक्रिया में परिवर्तित हो जाती है जो श्रवण-तंत्रिका के अत्यंत कोमल ग्राहकों को प्रेषित हो जाती है तथा फिर और भी आगे मेरूरज्जु-शीर्ष में इसके केन्द्रकों तक पहुंच जाती है और फिर उचित नलिकाओं के द्वारा शंखीय मस्तिष्क-खण्डों में स्थित प्रमस्तिष्क श्रवण-केन्द्रों में पहुँचती है, जहाँ तंत्रिका आवेगों की व्याख्या सुनी हुई आवाज की तरह होती है।

आंतर-कर्ण कान का सबसे महत्वपूर्ण कार्य करता है, क्योंकि यहीं ध्वनि का बोध होता है।

सामान्य श्रवण ध्वनि-बोध तथा ध्वनि-चालन की सामान्य स्थिति पर निर्भर करता है।

सामान्य ध्वनि-चालन के लिए कर्ण-पटह तथा अस्थिका-शृंखला में आवश्यक तनाव मध्यकर्ण-पेशियों की संयुक्त क्रिया के द्वारा बना रहता है। सामान्य कंपन के लिए मध्यकर्ण-कला को मध्यकर्ण-गुहा के भीतर की तथा बाहरी वायु में (यानी कर्ण-पटह के दोनों तरफ) वातदाबों में संतुलन की जरूरत होती है। यह निगरण के समय यूस्टेशियन नली के द्वारा हवा के गुजरने से बना रहता है। मध्य कर्ण में यूस्टेशियन नली द्वारा वायु-संभरण में विक्षोभ से मध्य कर्ण की हवा अंदर जाती है तथा कर्णपटह अंदर की तरफ खिंच जाता है, जिसके बाद श्रवण में अवनति हो जाती है। निम्न तान यानी निम्न आवृत्ति की प्रति सेकेंड कंपन वाली ध्वनि के लैबीरिन्थ तक प्रेषण के लिए ध्वनि-चालक उपकरण का सामान्य स्थिति में होना अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

लैबीरिन्थ तक ध्वनि-तरंगों के चालन के दो तरीके होते हैं – वायु-चालन (वाह्यकर्ण-कुहर, मध्यकर्ण-कला तथा अस्थिका-शृंखला से हो कर) तथा अस्थि-चालन (सीधे कपाल-अस्थियों तथा स्टेपिस से होकर)।

उच्च तान, अर्थात् प्रति सेकेंड उच्च कंपनावृत्ति की ध्वनि का लैबीरिन्थ तक आसानी से चालन होता है – न सिर्फ मध्यकर्ण-कला तथा अस्थिका-शृंखला से होकर, बल्कि कपाल-अस्थियों तथा स्टेपिस से होकर भी।

मनुष्य 16 से 20000 चक्र प्रति सेकेंड आवृत्ति की वाह्य ध्वनियां सुन सकता है।

मनुष्य के कान विभिन्न सुरों, तीव्रताओं और संगीत-रूपों की ध्वनियों के बीच फर्क कर सकते हैं। श्रवण के सार तथा विभिन्न प्रकार की ध्वनियों में फर्क करने की कान की क्षमता की व्याख्या करने के लिए बहुत

से सिद्धांत हैं। इनमें सबसे पुराना व अति प्रचलित सिद्धांत है हेल्महोज द्वारा 1863 में स्थापित तथा अनुकम्पी कंपन की भौतिक घटना पर आधारित अनुनाद-सिद्धांत। इस सिद्धांत के अनुसार पियानो तथा हार्प जैसे वाद्य-यंत्रों के तारों के झनझनाने की तरह ध्वनि के साथ-साथ आधार-कला के तंतु भी कम्पित होते हैं। उच्च तान द्वारा उद्दीपित किये जाने पर आधार-कला के छोटे, पतले तथा अधिक कसे हुए तंतु, जो काक्लिया के आधारी मोड़ पर स्थित होते हैं, इस तान के साथ-साथ कंपित होते हैं, अर्थात् अनुनाद करते हैं, जबकि अधिक लंबे, स्थूलतर तथा कम कसे हुए तंतु, जो काक्लिया के शिखर मोड़ पर स्थित होते हैं, निम्न तान के जवाब में अनुनाद करते हैं।

अनुनाद-सिद्धांत के विषय में कई गंभीर आपत्तियां हैं क्योंकि यह एक क्रिया-विज्ञान के रूप में श्रवण के सार का, इसे केवल यांत्रिक पहलू से चित्रित करके, अतिसरलीकरण कर देता है, और समग्र रूप में श्रवण-विश्लेषकों के क्रिया-विज्ञानी गुणधर्मों का पूरा चित्रण नहीं कर पाता। किन्तु इस बात को नोट करना चाहिए कि उच्च और निम्न तानों के बोध के स्थान क्रमशः आधारी तथा शिखरी काक्लियर मोड़ हैं (अनुनाद-सिद्धान्त इसी बात पर आधारित है), यह प्रयोगों तथा रोग-लक्षण के प्रेक्षणों द्वारा साबित हो चुका है।

अनुनाद-सिद्धांत के विरोध में श्रवण का तथाकथित दूरभाष-सिद्धांत यह दावा करता है कि आधार-कला दूरभाष-कला की तरह सब जगह कम्पित होती है। यह सिद्धांत काक्लिया में स्थित परिसरीय ग्राहकों में बनने वाली ध्वनि के किसी भी विश्लेषण को नकारता है। यह सिद्धांत रोगलक्षण-अभ्यास और प्रायोगिक अनुसंधानों द्वारा गलत साबित हो चुका है।

भिन्न सुरों का बोध काक्लिया के भिन्न भागों में होता है—यह निश्चित तौर पर एल० ए० आंद्रेयेव ने पावलोव की प्रयोगशाला में सोपाधिक प्रतिवर्तों पर प्रयोग द्वारा सिद्ध किया। ये प्रयोग कुत्तों पर किये गये, जिनमें निम्न, मध्यम तथा उच्च आवृत्ति की तानों से लाला-स्रवण के सोपाधिक प्रतिवर्त पैदा हुए। जब प्रतिवर्त पूरी तरह स्थापित हो गया तो एक तरफ का काक्लिया पूरी तरह नष्ट कर दिया गया, पर जानवर ने अपना सोपाधिक प्रतिवर्त कायम रखा। इसके बाद काक्लिया के विभिन्न हिस्सों को चुन-चुन कर नष्ट किया गया।

काक्लिया शिखर को छोटी वेधनी से नष्ट करने पर निम्न पिच की

ध्वनि से संबंधित सोपाधिक प्रतिवर्त खत्म हो गया, जबकि काक्लिया आधार के नष्ट होने के बाद उच्च पिच की ध्वनि वाला प्रतिवर्त समाप्त हो गया। इन प्रयोगों ने साबित कर दिया है कि काक्लिया के शिखरी मोड़ में क्षति से निम्न तान का बोध समाप्त हो जाता है, जबकि काक्लिया के आधारी मोड़ में क्षति के साथ उच्च तान का बोध समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार, आई० पी० पावलोव व उनके अनुयायियों की शिक्षा के अनुसार श्रवण-विश्लेषकों के परिसरीय ग्राहक ध्वनि की यांत्रिक शक्ति को तंत्रिका-उत्तेजन की क्रियाविज्ञानी प्रक्रिया में परिवर्तित करके ध्वनि का प्रारंभिक विश्लेषण करते हैं। यह फिर तंत्रिका-नलिकाओं द्वारा मस्तिष्क-कोर्टेक्स के उपयुक्त केन्द्रों में पहुँचाया जाता है, जहाँ तंत्रिका-आवेगों की श्रम-ध्वनियों के रूप में अंतिम रूप से व्याख्या होती है। आई० पी० पावलोव की शिक्षा के द्वारा श्रवण-विश्लेषक के प्रत्येक हिस्से के कार्यों के विषय में स्पष्ट धारणा मिलती है जिससे उसका पूरा कार्य एक क्रियाविज्ञानी प्रक्रिया के रूप में सामने आता है।

ध्वनि के स्रोत के स्थान-निर्धारण की क्षमता, यानी तथाकथित ओटोटोपिया द्विकर्णी श्रवण पर आधारित होती है। यह एकतरफा श्रवण वाले लोगों में अधिकतर नष्ट हो जाती है, जिन्हें ध्वनि के स्रोत का स्थान-निर्धारण करने के लिए सिर को विभिन्न दिशाओं में घुमाना पड़ता है। दोनों स्वस्थ कानों वाले व्यक्ति ध्वनि की दिशाओं का निर्धारण बिना सिर घुमाये आसानी से कर सकते हैं।

ध्वनियों की दिशाओं का पता लगाना केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र का कार्य है। एक ओर से आने वाली ध्वनि दूसरी ओर के कर्ण में 0.0006 सेकेंड की मामूली देरी के पश्चात पहुँचती है।

इसी देरी के द्वारा ध्वनि की दिशा का निर्धारण संभव होता है।

## प्रघाण-क्रिया

शरीर तथा इसके विभिन्न हिस्सों का व्योम में दिशाविन्यास कई ग्राहकों के सहयोग से संभव होता है। शरीर तथा इसके विभिन्न हिस्सों का स्थान नेत्र-दृष्टि के अलावा त्वचा, पेशियों, जोड़ों तथा कंडराओं में स्थित तंत्रिका-अंतों, जिन्हें प्रग्राहक कहते हैं, के द्वारा जाना जाता है।

उपर्युक्त ग्राहकों के अतिरिक्त सेरिबेलम, तथा सबसे बढ़ कर प्रघाण-उपकरण, विश्राम तथा गति की अवस्था में शरीर के दिशाविन्यास तथा

संतुलन को कायम रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। प्रघाण-उपकरण, प्रघाणों (जिनमें कर्णबालुका सिस्टम रहते हैं) तथा तुम्बिकाओं सहित अर्धवृत्तीय नलिकाओं (जिनमें प्रघाण-ग्राहकों के तंत्रिका-अंत रहते हैं )से मिल कर बना होता है।

व्योम में गति करते समय शरीर को प्राप्त त्वरण प्रघाण-ग्राहकों के तंत्रिका-अंतों के लिए उपयुक्त या विशिष्ट उद्दीपक होते हैं। सीधी रेखा में गतियां कर्ण-बालुकाओं को विस्थापित कर देती हैं तथा प्रघाण-कोशों में स्थित संरचनाओं कर्णबालुका या स्तेतोलिथ के ग्राहकों, का उद्दीपन कर देती हैं। कोणीय या घूर्णन गतियों से अर्धवृत्तीय नलिका में एन्डोलिम्फ का विस्थापन तथा तुम्बिका में ग्राहकों का उद्दीपन होता है।

प्रघाण-विश्लेषकों के ग्राहकों के उद्दीपन से कई प्रतिवर्त प्रतिक्रियाएं उत्पन्न होती हैं जो शाखाओं, ग्रीवा, आँखों तथा धड़ की कुछ पेशी-पूलिकाओं के तान में परिवर्तन पैदा करती हैं। यह फिर पूरे शरीर की स्थिति में परिवर्तन करता है तथा संतुलन कायम करता है।

अर्धवृत्तीय नलिका के उद्दीपन में देखा जाने वाला एक निरोपाधिक प्रतिवर्त – निस्टेग्मस – है जिसके अन्तर्गत आँखों की एक निश्चित दिशा में तथा फिर वापस तालबद्ध गति होती है, जैसे पार्श्व या लम्ब निस्टेग्मस। निस्टेग्मस नेत्र-गोलकों की विभिन्न स्थितियों में देखा जा सकता है; उदाहरणार्थ सीधे देखने पर या एकदम बगल की तरफ देखते हुए। निस्टेग्मस के प्रेक्षण का उपयोग उद्दीपित प्रघाण-ग्राहकों की प्रतिक्रिया की जांच करने के लिये किया जाता है।

प्रघाण-उपकरण की भूमिका खास तौर पर तब स्पष्ट हो जाती है जब इसमें तीव्र विक्षोभ होता है या इसकी क्रिया बंद हो जाती है, जैसा कि कई बीमारियों में होता है। रोगी तीव्र स्थिर तथा गतिशील दोषों से पीड़ित हो जाते हैं; वे चल-बैठ या खड़े नहीं हो पाते हैं; वे अपनी गतिविधियों में संतुलन कायम नहीं रख पाते हैं तथा उनमें स्वतःस्फूर्त निस्टेग्मस पैदा हो जाता है। इसके साथ-साथ भ्रमि, मतली तथा वमन होने लगता है। तीन-चार सप्ताह बाद ये लक्षण कम या खतम हो जाते हैं, क्योंकि केन्द्रीय-तंत्र से क्षति-पूर्ति होने लगती है। उपयुक्त उद्दीपनों के प्रति प्रघाण-उपकरण की कम या ज्यादा तीव्र प्रतिक्रिया केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र की अवस्था पर, विशेष रूप से मस्तिष्क कोर्टेक्स पर, निर्भर करती है।

## कान का परीक्षण

यह परीक्षण केस पर जानकारियां इकट्ठा करने से शुरू होता है तथा इसके बाद कान का निरीक्षण किया जाता है तथा श्रवण का क्रियात्मक परीक्षण होता है। कान-नाक-गले के कंपलेक्स (सम्मिलित) परीक्षण में हमेशा नाक व गले को पहले लिया जाता है।

केस-इतिहास में रोगी द्वारा वर्णित लक्षणों को और उन परिस्थितियों को शामिल करना चाहिए, जिनमें बीमारी शुरू हुई।

जानकारी हासिल करते समय (1) कर्ण वेदना व उसके गुण, (2) पूय-विसर्जन, (3) श्रवण में अवनति या पूर्ण बधिरता, (4) टिनिटस (कान के बजने), (5) घुमनी पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। उतना ही महत्वपूर्ण यह जानना भी है कि मरीज को सिरदर्द, कपकपी आदि है कि नहीं। कर्णरोगों के अनेक कारणों में सबसे ज्यादा पाये जाने वाले कारण हैं नाक व गले के शोथ जो तीव्र मध्यकर्ण-शोथ पैदा करते हैं। इसलिए, यह जानना जरूरी होता है कि चर्चित कर्ण रोग के पहले इन्फ्लूएंजा, तीव्र नासा-शोथ आदि हुए थे कि नहीं। उसके पश्चात सामान्य जानकारियां हासिल करनी चाहिए, जैसे स्वास्थ्य की आम हालत, पुरानी बीमारियों, खास तौर पर संक्रामक बीमारियों, रहने और काम करने की परिस्थितियों तथा रोगी की प्रतिदिन की जिन्दगी से संबंधित अन्य तथ्यों की जानकारी। कान के परीक्षण में कान तथा मैस्टाइड प्रवर्ध का वाह्य परीक्षण और परिस्पर्शन तथा वाह्य-कर्ण-कुहर तथा मध्यकर्ण-कला का परीक्षण (ओटो-स्कोपी) शामिल हैं।

### ओटोस्कोपी

कर्णपटह की अनुपस्थिति में वाह्यकर्ण-कुहर, मध्यकर्ण-कला और साथ ही मध्यकर्ण-गुहा के परीक्षण में कर्ण व कर्ण-स्पेकूलम (चित्र 10) में प्रकाश के परावर्तन के लिए कृत्रिम प्रकाश व शीर्षदर्पण (चित्र 9) की जरूरत होती है। प्रदीप्ति का सर्वोत्तम स्रोत 50-60 वाट का तुषारित बल्ब है; शीर्षदर्पण थोड़ा अवतल गोलाकार दर्पण होता है जिसका व्यास 8-9 सें० मी०, और नाभिकीय दूरी 20 सें० मी० होती है तथा उसके मध्य में एक छिद्र होता है। विद्युत प्रकाश के अभाव में प्रकाश का कोई भी स्रोत, जैसे सूर्य का प्रकाश भी, काम में लाया जाना चाहिए। परीक्षण आसीन

चित्र 8. कर्ण-परीक्षण

स्थिति में, प्रकाश को रोगी के शीर्ष के स्तर पर उससे दायें व थोड़ा पीछे रख कर, किया जाता है, जैसा कि चित्र 8 में दिखाया गया है। शीर्ष-दर्पण को परीक्षक की बायीं ग्राँख के सामने इस तरह से रखा जाता है कि परीक्षक की ग्राँख, दर्पण-छिद्र व कर्ण-छिद्र तीनों एक सीधी लाइन में रहें।

ग्रोटोस्कोपिक परीक्षण के लिए दोनों नेत्र इस्तेमाल किये जाते हैं; बायां नेत्र ग्रनिवार्यतः दर्पण-छिद्र में से देखता है। कर्ण-स्पेकूलम को निवेशित करने से पहले कुहरी छेद की परीक्षा करनी व उसका व्यास मापना चाहिए। छोटे बच्चों के परीक्षण के लिए सहायक की ग्रावश्यकता होती है जो बच्चे के शीर्ष को एक हाथ से पकड़ कर ग्रपनी छाती से मजबूती से सटा कर
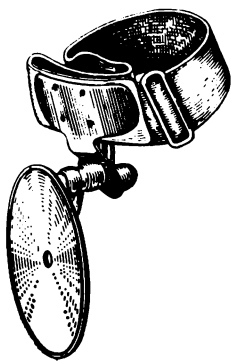
चित्र 9. शीर्ष-दर्पण
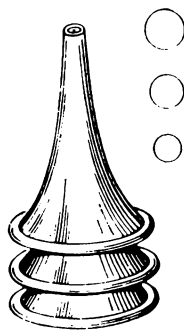
चित्र 10. कर्ण-स्पेकूलम

रखता है और दूसरे हाथ से उसके हाथ पकड़ता है। बच्चे के पैरों को सहायक के पैरों के बीच दबा कर रखा जाता है।

कर्ण-स्पेकूलम के विस्फारित भाग को अंगूठे व तर्जनी के बीच पकड़े रख कर उसे सावधानी से कुहर के छिद्र में हल्का घुमाते लगभग 1 से 1.25 सें० मी० की गहराई तक किसी अस्थिय हिस्से को छुए बिना, जहाँ तक व्यवहारतः संभव हो, घुसाते हैं। साथ ही, कुहर के कोण को सीधा करने के लिए कर्णपाली को बड़ों में ऊपर व पीछे की तरफ तथा छोटे बच्चों में नीचे तथा पीछे की तरफ खींचते हैं। सूजन, विदार या एक्जीमा रहने की हालत में स्पैकुलम को विशेष सावधानी से घुसाते हैं ताकि दर्द न हो। स्पेकूलम के भीतरी भाग को हल्के से घुमाते हुए परीक्षक कर्ण-गुहा के भीतरी भागों तथा कर्णपटह की पूरी सतह का निरीक्षण करता है। कुहर-नलिका का परीक्षण करते समय पश्च-ऊर्ध्व भित्ति पर विशेष ध्यान देना चाहिए, ताकि संभावित स्थूलता या यहाँ तक कि नीचे और बाहर की तरफ जाते हुए लटकावों का पता चल सके।

कृत्रिम प्रकाश के बिना कान का परीक्षण तभी संभव है जब श्रवण कुहर खूब चौड़ा और काफी सीमा तक सीधा हो। सिर से प्रकाश का मार्ग अवरुद्ध न हो, इसके लिए डाक्टर को रोगी से थोड़ी दूरी पर होना चाहिए, हालांकि तब कान के विवरण उतनी स्पष्टता से नहीं दिखेंगे।

सामान्य कर्णपटह मुक्ताभधूसर रंग का एक अंडाकार चक्र होता है जिस पर निम्नलिखित निर्दिष्ट बिन्दु स्पष्टतः दिखते हैं (चित्र 3, रंगीन तालिका 1, चित्र 1)। कील-शीर्ष के आकार का गोराई लिया हुआ पीला मुंड, जो कर्णपटह के उग्र ऊर्ध्व हिस्से से निकलता हुआ होता है, मैलियस का लघु प्रवर्ध कहलाता है। इससे पीछे और आगे की तरफ दो धूसर-श्वेत रेखाएं जाती हैं, जो अग्र तथा पश्च पुटक हैं और जो कर्ण-पटह के अग्र ऊर्ध्व भाग को (जो शिथिल भाग या श्रापनेल की कला कहलाता है) निचले तनावपूर्ण हिस्से (कर्णपटह के आतत भाग) से अलग करती हैं। लघु प्रवर्ध से मैलियस के हस्तक को नीचे तथा पीछे की तरफ जाते हुए देखा जा सकता है। इसका चौड़ी निचली किनारी कर्ण-पटह के केन्द्र–अम्बो–पर समाप्त होती है। ओटोस्कोपी में दर्पण से आकर प्रकाश-किरणें कर्णपटह पर तेजस्वी पर शंकु की आकृति का प्रकाश प्रतिवर्त बनाती हैं जिसका शीर्ष केन्द्र (अम्बो) की ओर रहता है और आधार कर्णपटह-कला की अग्र-निम्न कोर की ओर मुखरित होता है।
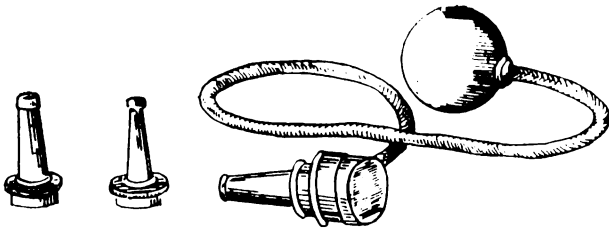
चित्र 11. वायवी स्पेकूलम

सुविधा के लिए, कर्णपटह-कला में होने वाले परिवर्तनों का वर्णन करते समय इसे चार भागों में विभाजित (चित्र 3) किया जाता है। यह मैलियस के हस्तक से कर्णपटह के किनारे की ओर जाने वाली काल्पनिक रेखा व इससे समकोण पर अम्बो के केन्द्र से निकली अंतरयोजी रेखा द्वारा किया जाता है, जिससे इसके अग्र-ऊर्ध्व, अग्र-निम्न, पश्च-ऊर्ध्व व पश्च-निम्न भाग बनते हैं। कर्णपटह मध्यकर्ण-गुहा से काफी नजदीकी से जुड़ा होता है, इसलिए यह मध्य कर्ण के किसी भी विकार की स्थिति के अस्तित्व को दर्शाता है। इस प्रकार रंग में परिवर्तन, मसलन कर्णपटह की ललाई, मध्यकर्ण-शोथ का द्योतक होता है। निर्दिष्ट बिन्दुओं के स्थान में परिवर्तन, खास कर प्रकाश-शंकु में, मध्य कर्ण के चिरकारी रोगों की वजह से खिंचे हुए कर्णपटह के रूप में प्रकट होते हैं।

कर्णपटह की गतिशीलता का परीक्षण वायवी स्पेकूलम द्वारा किया जा सकता है (चित्र 11)। स्पेकूलम का विस्फारित अंत लेंस से अवातित तौर पर सील होता है और इसके एक तरफ से निकलती हुई नली एक रबड़-कंद से जुड़ी होती है। कर्णपटह की गतिशीलता का लेंस के जरिये ठीक से प्रेक्षण करने के लिए स्पेकुलम को श्रवण-कूहर में ठीक से फिट कर दिया जाता है, तथा रबड़-कन्द द्वारा वायु को पहले सम्पीडित, फिर विरलित करते रहते हैं, जिससे कर्ण-पटह अंदर और बाहर होता रहता है।

ओटोस्कोपी में परीक्षण पहले स्वस्थ कान से प्रारंभ किया जाता है ताकि उसकी तुलना रोगी कान से की जा सके।

## श्रवण-क्रिया का परीक्षण

श्रवण-क्रिया का परीक्षण फुसफुसाने तथा बातचीत की आवाज, ट्यूनिंग फोर्क तथा औडियोमीटर के द्वारा किया जाता है। फुसफुसाना परीक्षण

उपयुक्त आकार वाले शांत कमरे में किया जाना चाहिए। हर कान का परीक्षण अलग-अलग करते हैं तथा परीक्षण करते समय रोगी दूसरे कान को उंगली के सिरे से बंद कर देता है। रोगी अपने कान को परीक्षक की तरफ कर देता है, ताकि वह परीक्षक का चेहरा न देख सके और उसके ओठों के संचलन को देख कर उसके द्वारा बोले गये शब्दों के बारे में अंदाज न लगा सके। बराबर एक तीव्रता से ही फुसफुसाना चाहिए। यह

| औसतन 5 मी० की अधिकतम दूरी से सुने जा सकने वाले फुसफुसा कर बोले गये शब्द | | औसतन 20 मी० की अधिकतम दूरी से सुने जा सकने वाले फुसफुसा कर बोले गये शब्द | |
|---|---|---|---|
| फन | डोरी | आयी | चासनी |
| वो | मिला | एवज | चींटी |
| ब्रू | मीरा | वायवी | मैना |
| प्रेत | मड | शर्त | सूरज |
| मोर | मेरो | चर्च | श्वास |
| मूल | बूट | से | साँस |
| नौ | नंबर | चूस | सुवास |
| नून | नीरू | चीनी | चाट |
| ओम | नरेश | ज़ान | सिरिंज |
| रूम | अंबुज | चर्म | स्पर्श |
| रोम | अंडा | चीज़ | सीसी |
| लूम | आग | छीजन | सकल |
| लूप | रम | संत | सजल |
| बोरा | रव्योदय | सचेंद्र | सचल |
| वौरा | हरीहर | आँच | गेट |
| रवि | मौरी | साँचा | सस्ता |
| रण | ऐब | साई | शस्त्र |
| अवर | जव | सीसा | अस्त्र |
| | अब | स्नेह | अष्ट |
| | | चटर | षष्ट |

तीव्रता इस प्रकार प्राप्त करनी चाहिए कि बिना प्रयत्न के बाहर की तरफ सांस निकालने के बाद अवशिष्ट वायु का प्रयोग करके शब्द बोलने चाहिए।

सामान्य कान फुसफुसाया हुआ वाक्य, जिसमें निम्न तान की प्रधानता हो, सुन सकता है; जैसे व्यंजन, ओष्ठ तथा तालु ध्वनि जैसे बी, पी, टी, एम, एन, को 5 से 10 मीटर की दूरी तक। उच्च तान की प्रधानता वाले फुसफुसाये स्वर, यानी महोदर जैसे स, जे, च, श, श्च को 20 मीटर की दूरी पर से सुना जा सकता है। श्रवण-शक्ति का अनुमान फुसफुसाना परीक्षण द्वारा एक से सौ तक की संख्याओं को पुकार कर और नीचे स्वर वाली संख्याओं जैसे दो, पाँच, नौ और ऊँची तान की आवाज वाले शब्दों जैसे छह, सात, पैंसठ आदि को चुन कर किया जाता है। चूँकि बोली गयी संख्याओं का कई रोगी अनुमान लगा सकते हैं, इसलिए श्रवण-परीक्षण खास चुने हुए उच्च व निम्न तानों के शब्दों के साथ करना चाहिए। ऐसे शब्दों की वी० आई० वोयाचेक द्वारा बनायी गयी तालिका दी जा रही है। पहले समूह में मुख्यतः निम्न स्वर वाले, औसतन 5 मीटर की दूरी पर सुनाई देने वाले शब्द हैं, दूसरा समूह उच्च स्वर वाले, 20 मीटर की दूरी से सुनाई देने वाले शब्दों का है। इसी सिद्धांत पर आधारित कुछ चुने हुए हिन्दी शब्द पृष्ठ 37 पर दिये गये हैं।

इस तालिका का प्रयोग करके मोटे तौर पर कर्ण-रोगों के प्रकार का पता लगाया जा सकता है। पहले समूह (निम्न तान) के शब्दों के निम्न बोध का अर्थ होगा स्वर-चालक उपकरण में दोष, यानी चालन-बधिरता। दूसरे समूह (उच्च तान) वाले शब्दों के श्रवण में हानि स्वर-बोधी उपकरण में विक्षति की ओर संकेत करती है, यानी तंत्रिका-बधिरता यदि फुसफु-

चित्र 12. संखपेटी
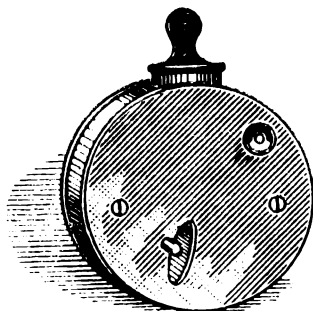
साया हुआ वाक् 6 या 8 मीटर की दूरी पर सुनाई दे तो श्रवण व्यावहारिक तौर पर सामान्य होता है। यदि रोगी को फुसफुसाया वाक् एकदम न सुनायी दे पड़े तो बोलचाल के वाक् या जोर वाले वाक् से परीक्षणों का इस्तेमाल करना चाहिए। एकतरफा बधिरता की जाँच करने के लिए सामान्य कर्ण पर उंगली रख देना पर्याप्त नहीं है, उसके लिए इसमें जाने वाले सारे स्वरों को रोकना जरूरी होता है। इसलिए एक विशेष संखपेटी (चित्र 12) को सामान्य कान में रख दिया जाता है ताकि उससे आने वाले वाकों को पूरी तरह रोका जा सके।

सामान्य कर्ण में आवाज को बाहर रखने के अन्य तरीके, जैसे कर्णपाली को खुले हाथ के चपटे भाग से मलना या प्लग करने वाली उंगली को हिलाते रहना, कम विश्वसनीय हैं।

**स्वरक द्विशूल परीक्षण.** श्रवण-तीक्ष्णता फुसफुसाना परीक्षण के द्वारा अपेक्षाकृत सरलता व शीघ्रता से जाँची जा सकती है। पर चालन व बोध-बधिरताओं के बीच में विभेदक निदान साथ ही श्रवण-तीक्ष्णता के अधिक सही निर्धारण के लिए स्वरक द्विशूल के परीक्षणों का इस्तेमाल किया जाता है (चित्र 13)। स्वरक द्विशूल बिना मिलावट के शुद्ध तान पैदा करते हैं। मनुष्य के कर्ण के लिये श्रव्य स्वरों का परास 16 से 20000 चक्र प्रति सेकेंड है। मानव कर्ण द्वारा बोध्य उच्चतम व निम्नतम तान क्रमश: श्रवण की ऊपरी व निचली सीमाओं को इंगित करता है। जो स्वर श्रवण की ऊपरी व निचली सीमाओं के बीच सुनाई देते हैं, वे श्रव्य परास या रजिस्टर बनाते हैं। यह परास आयु बढ़ने के साथ काफी कम हो जाता है, खास कर श्रवण की ऊपरी सीमा के घटने से। 64 से 4096 चक्र प्रति सेकेंड वाले स्वरक द्विशूलों के एक सेट से विभिन्न तानों की श्रवण-तीक्ष्णता, साथ ही वायु व अस्थि-चालन का निर्धारण किया जा सकता है। वायु-चालन का अनुमान करने के लिए कंपन करते हुए स्वरक द्विशूल को कुहरी छिद्र के पास रखा जाता है। जब अस्थि-चालन जाँचा जाता है, तो कंपन करते हुए स्वरक द्विशूल को सिर या मैस्टाइड प्रवर्ध पर रखा जाता है। सामान्य श्रवण में वायु-चालन अस्थि-चालन से बेहतर होता है। चिकित्सा व्यवसाय में अस्थि- व वायु-चालन का परीक्षण दो प्रकार के स्वरक द्विशूलों– $C_{128}$ और $C_{2048}$ वाले–से ही किया जाता है। चालन व बोध प्रकार की बधिरताओं के विभेदक निदान में निम्नलिखित प्रयोग सहायक हो सकते हैं।
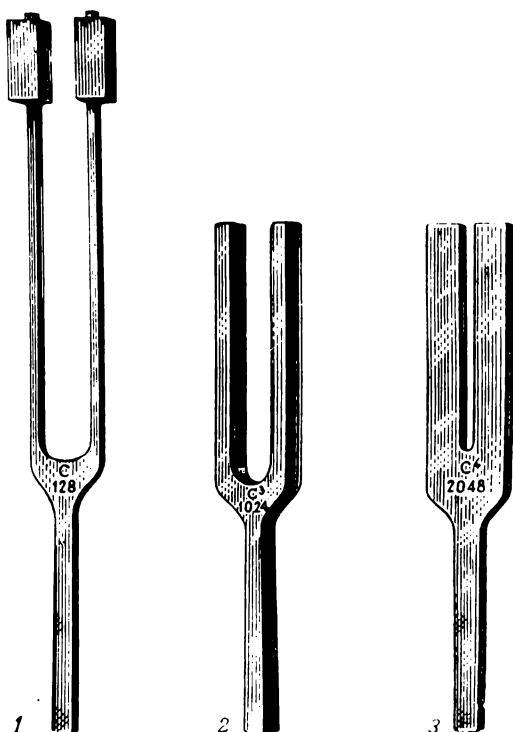
चित्र 13. विभिन्न प्रकार के ट्यूनिंग फोर्क (स्वरक द्विशूल)
(1) 128 चक्र प्रति सेकंड; (2) 1.024 चक्र प्रति सेकंड; (3) 2.048 चक्र प्रति सेकंड

ध्वनि-पार्श्वीकरण का **वेबर परीक्षग** (चित्र 14a)। $C_{128}$ वाले स्वरक द्विशूल से ध्वनि की जाती है और उसे शिरोबिन्दु पर रखा जाता है तथा रोगी से पूछा जाता है कि किस कान में ध्वनि ज्यादा अच्छी तरह सुनाई पड़ रही है। चालन-बधिरता की स्थिति में, जैसा कि कर्णकुहर में कर्णगूथ-अंतर्घट्टन तथा मध्यकर्ण-शोथ में होता है, आवाज रोगी कान में ज्यादा अच्छी तरह सुनाई पड़ती है। तंत्रिका-बधिरता की स्थिति में स्वरक द्विशूल सामान्य कान में ज्यादा सुनाई पड़ेगा।

**रीने परीक्षण** या अस्थि- एवं वायु-चालन में तुलना (चित्र 14b)। मैस्टाइड प्रवर्ध से सटा हुआ स्वरित $C_{128}$ द्विशूल जब सुनाई देना बंद हो जाता है, तब उसे कानों के सामने ले जाते हैं; तब पता चलता है

कि ध्वनि अस्थि-चालन के मुकाबले वायु-चालन में ज्यादा देर तक सुनाई पड़ती है। आम तौर पर वायु-चालन में 85 से 90 सेकेंड तक, जबकि अस्थि चालन की स्थिति में 45 सेकेंड तक ही। इस हालत में रीने परीक्षण धनात्मक ( रीने + ) समझा जाता है। धनात्मक रीने सामान्य श्रवण वाले तथा तंत्रिका-बधिरता वाले, दोनों ही रोगियों में पाया जाता है। चालन-बधिरता में अस्थि-चालन की अवधि वायु-चालन की अवधि के बराबर, अथवा यहाँ तक कि उसे कहीं ज्यादा भी, हो सकती है। ऐसी हालत में रीने परीक्षण ऋणात्मक ( रीने – ) समझा जाता है।

**स्वाबाक परीक्षण.** इसमें रोगी के शिरोबिन्दु या मैस्टाइड प्रवर्ध से अस्थि-चालन की अवधि की तुलना परीक्षक के सामन्य अस्थि-चालन से किया जाता है। चालन-बधिरता में अस्थि-चालन लम्बा हो जाता है जबकि तंत्रिका-बधिरता में यह छोटा हो जाता है।

उच्च तानों के लिए श्रवण की तीक्ष्णता, 2048 चक्र प्रति सेकेंड वाले एक $C_4$ स्वरक द्विशूल से निश्चित की जाती है। कुछ सीमा तक एक
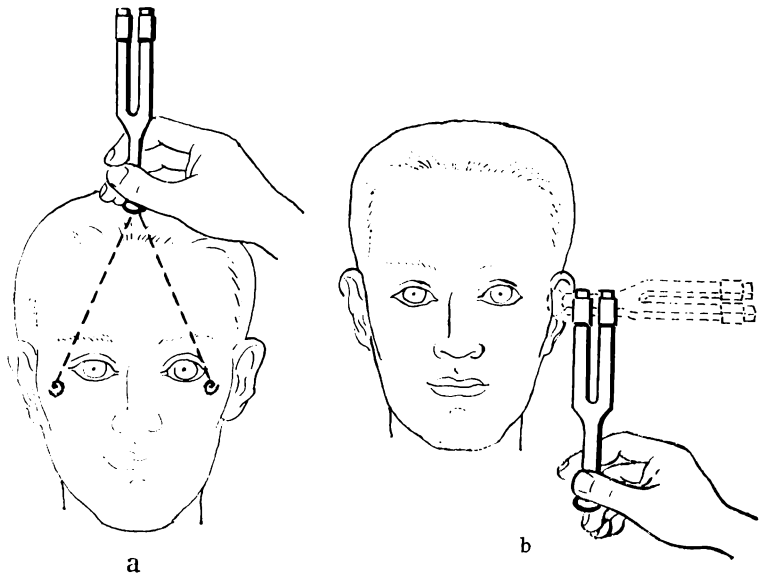
चित्र. 14. ट्यूनिंग फोर्क से श्रवण की परीक्षण
a वेबर परीक्षण;
b रीने परीक्षण

निश्चित उच्च तान के श्रवण में हानि बुढ़ापे की वजह से बधिरता या तंत्रिका-बधिरता में देखी जाती है।

श्रवण का ज्यादा सही या तेजी से परीक्षण एक विशेष उपकरण से, जिसे ऑडियोमीटर कहते हैं, किया जाता है। इसका प्रयोग, श्रवण के आकलन के लिये महत्वपूर्ण संपूर्ण तान-परास में श्रवण की तीक्ष्णता का आकलन करने के लिए किया जा सकता है।

## प्रघान-क्रिया का परीक्षण

प्रघाण-क्रिया की परीक्षा के पूर्व रोगी से कुछ सवाल किये जाते हैं तथा उसकी जाँच की जाती है। प्रघाण-विक्षोभ के रोगी आम तौर पर सिर चकराने, असंतुलित चाल, यदा-कदा वमन तथा रोग की शिकायत करते हैं। रोगी की परीक्षा करने पर आम तौर पर क्रियात्मक प्रघाण-विक्षोभ से सम्बन्धित निस्टेगमस पाया जा सकता है। बगल की तरफ देखते हुए रोगियों में और कभी-कभी तो सीधी दिशा में ताकते हुए रोगियों में भी प्रघाण निस्टेगमस पाया जा सकता है। समन्वय, स्थैतिक संतुलन एवं चलने में संतुलन के दोष भी पाये जा सकते हैं। प्रघाण-क्रिया की जाँच के लिए विशेष रोगलक्षण-परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। ये परीक्षण निस्टेगमस उत्पन्न करने के लिए प्रघाण-ग्राहकों के कृत्रिम उद्दीपन की विधियों पर आधारित होते हैं। इस प्रकार के तीन मूल परीक्षण होते हैं—घूर्णन, कैलोरिक तथा सम्पीड़न परीक्षण।
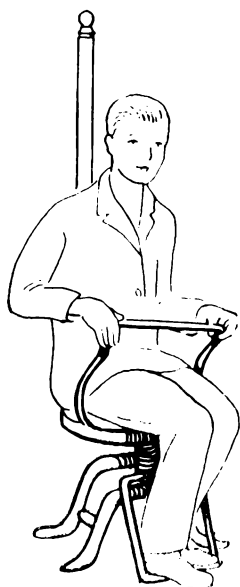
चित्र 15. घूर्णन कुर्सी

घूर्णन परीक्षण में रोगी के शरीर को लम्बे अक्ष पर घुमाते हैं जिससे अर्धवृत्तीय नलिकाओं में एन्डोलिम्फ की गति होती है जो ग्राहकों का उद्दीपन करती है तथा निस्टेगमस उत्पन्न होता है। रोगी कुर्सी में बैठा होता है (चित्र 15), जिसे क्षैतिज तल पर घुमाया जा सकता है और इसे 20 सेकेंड में 10 बार चक्कर लगवाने की गति से घुमाते हैं। इससे अर्धवृत्तीय नलिकाओं में एन्डोलिम्फ में हलचल पैदा होती है। जब कुर्सी को दायीं तरफ घूर्णन के बाद

अचानक रोका जाता है तो रोगी को बायीं तरफ का निस्टेगमस होता है, यदि प्रक्रिया को उलट दिया जाता है तो विपरीत दिशा का निस्टेग्मस होता है। निस्टेगमस के विषय में जानकारी हासिल करने के लिए रोगी को परीक्षक की उंगली पर देखने को कहा जाता है जिसे निस्टेगमस की अपेक्षित दिशा में 30 सें० मी० की दूरी पर रखा जाता है।

सामान्य प्रघाण-संवेदनशीलता वाले अधिकतर लोगों में घूर्णनोत्तर निस्टेगमस की अवधि 30 से 35 सेकेंड है। इस परीक्षण की एक कमी यह है कि यह दोनों लैबीरिन्थों का, हालांकि असमान बल के साथ, उद्दीपन कर देता है।

कैलोरिक परीक्षण अर्धवृत्तीय नलिकाओं में मौजूद एन्डोलिम्फ के कृत्रिम तरीकों से ठंडा करने व गर्म करने पर हो रही गति की घटना पर आधारित है।

इस परीक्षण में प्रत्येक लैबीरिन्थ का अलग से परीक्षण किया जाता है। प्रत्येक कान में पिचकारी से पानी का प्रवाह किया जाता है; 16° से 30° सेंटीग्रेड पर दिये गये ठंडे डूश से परीक्षण करने वाले कान के दूसरी ओर निस्टेगमस होता है और 38° से 41° सेंटीग्रेड पर गर्म डूश देने से यह विपरीत दिशा में होता है।

कैलोरिक परीक्षण में निस्टेगमस का अभाव प्रघाण संवेदनशीलता का अभाव दर्शा सकता है।

शुष्क वेधन के रोगियों में कैलोरिक परीक्षण नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे सपूय कर्ण-शोथ की आवृत्ति का भय रहता है।

लैबीरिन्थ की कुछ विकृत अवस्थाओं में श्रवण-नलिका में वायु के सम्पीडन या विरलन से निस्टेगमस पैदा होता है। यह सम्पीडन परीक्षण कहलाता है। यदि लैबीरिन्थ की भित्ति (वाह्य अर्धवृत्तीय नलिका) में नालव्रण या अस्थिदोष होता है तो श्रवण-कुहर में लगे कंद से रोगी कर्ण की तरफ निस्टेगमस होता है, जबकि चूषण में विपरीत दिशा में निस्टेग्मस होता है। यह घटना नालव्रण-लक्षण कहलाती है।

## परिचर्या के सामान्य तरीके व कर्ण रोगों का उपचार

कर्ण-रोगों को नाक, ग्रसनी व स्वरयंत्र के रोगों की तरह ही शरीर की सामान्य स्थिति से अलग करके नहीं देखा जाना चाहिए।

इसलिए इसके उपचार को रोगी के स्वास्थ्य की आम स्थिति को बेहतर बनाने वाले तरीकों के साथ मिला कर देखना चाहिए।

इनमें केन्द्रीय तंत्रिका-प्रणाली पर लाभदायक असर डालने वाली दवाइयां, जैसे पीड़ाहर व शामक दवाइयां, सल्फोनामाइड व प्रतिजीवी औषधियां, साथ ही शरीर के सामान्य प्रतिरोध को बढ़ाने के दूसरे तरीके सम्मिलित हैं।

आम तौर पर जब डॉक्टर के द्वारा दिया गया उपचार असफल रहता है, तो इसका मुख्य कारण उसका गलत ढंग से प्रयोग होता है। बहुत हद तक चिकित्सीय उपचार की सफलता कनिष्ठ स्टाफ द्वारा डॉक्टर के निर्देशों को सही और कुशलतापूर्वक पूरा करने पर निर्भर करती है। कान की बीमारियों में परिचर्या तथा उपचार के सरल तरीकों में आम तौर पर कठिन यंत्रों के प्रयोग तथा विशेष उपायों की जरूरत नहीं होती है तथा इन तरीकों का प्रयोग आसानी से अस्पताल तथा वहिरंग रोगी विभाग में किया जा सकता है। इन सरल विधियों में कान को स्वच्छ करना, श्रवण-नाल में औषधि डालना तथा गर्म सेंक करना आदि शामिल हैं।

## कान को साफ करने के तरीके

कर्ण-पटह की जाँच करने के पहले यह बहुधा जरूरी होता है कि वाह्य कर्ण-कुहर को विशल्कित कोशिकाओं तथा सूखे पूय द्वारा बने कर्णगूथ, पूय या पपड़ी आदि को हटा कर स्वच्छ कर लिया जाये। वाह्यकर्ण-कुहर को स्वच्छ करना उपचार का हिस्सा है तथा इसे आर्द्र और शुष्क विधियों से किया जा सकता है।

स्वच्छ करने की आर्द्र विधि या सिरिंजिंग का प्रयोग तीव्र या चिरकारी सपूय मध्यकर्ण-शोथ की स्थिति में किया जाता है, जबकि पूय का निःस्राव इतना अधिक होता है कि रोगी के द्वारा रूई से सुखा कर इसको हटाना संभव नहीं होता या जब अत्यंत योग्य परिचर्या की आवश्यकता होती है।

कान की सफाई एक कर्ण-सिरिंज या एक साधारण रबड़-कंद से की जा सकती है। अगर सिरिंजिंग साधारण व्यक्ति कर रहा हो तो रबड़-कंद से सफाई करना ऐसे में कम खतरनाक होता है। दो तरह के रबड़-कंद होते हैं—एक पूरा रबड़ वाला कंद, जिसका सिरा चौड़ा रहता है, जिसे श्रवण-नाल में घुसाने में कठिनाई होती है तथा दूसरा ऐसा कंद जिसमें अस्थि-सिरा होता है तथा जो ज्यादा उपयुक्त होता है। एक 3-4 सें० मी० लम्बी

एवं पतली रबर-नली को, जो तिर्यक ढंग से अंत में कटी हो, अस्थि-सिरा पर रख देना चाहिए, ताकि दुर्घटनावश कहीं वहिर्कर्ण कुहर की भित्तियों को चोट न पहुंचे। कान की सफाई के लिए उष्ण एंटीसेप्टिक लोशन, आम तौर पर 3 प्रतिशत बोरिक अम्ल का घोल, प्रयोग में लाते हैं। रोगी इस विधि में प्रयुक्त वृक्काकार बेसीन को गले के साथ (जिस तरफ आवश्यक हो) सटा कर पकड़े रहता है। वयस्कों में श्रवण-नाल को ज्यादा हद तक सीधा करने के लिए कर्णपाली को बायें हाथ से पीछे तथा ऊपर की तरफ खींचा जाता है, जबकि दाहिने हाथ से कंद के रबड़ वाले सिरे को कान में घुसाया जाता है, पर 1 सें० मी० से ज्यादा नहीं। एक के बाद एक 37° सें० तक गर्म द्रव्य के जेट (फुहार), निम्न दबाव पर, श्रवण-नाल की पश्च भित्ति पर निर्देशित किये जाते हैं। रबड़ के बल्ब (कंद) को द्रव्य से भरते समय उसे दबाते हैं ताकि यह निश्चित किया जा सके कि इसमें हवा नहीं है, अन्यथा द्रव्य के साथ मिले हुए हवा के बुलबुले रोगी के कानों में परेशानी पैदा करने वाले संख (शोर) उत्पन्न करते हैं। सिरिंजिंग के बाद रोगी के सिर को बगल की तरफ थोड़ा नीचा कर देते हैं ताकि द्रव्य कान से बाहर निकल सके। अवशिष्ट द्रव्य को श्रवण नाल के दूरस्थ किनारों से प्रोब के चारों ओर लपेटे गये रूई के टुकड़ों से निकालते हैं। सिरिंजिंग द्वारा कर्णगूथ हटाने का वर्णन, "कान में कर्णगूथ अंतर्घट्टन" नामक अध्याय में किया गया है।

कान स्वच्छ करने की शुष्क विधि सिरिंजिंग से ज्यादा बेहतर होती है, क्योंकि सिरिंजिंग कान में अनुषंगी संक्रमण ले जा सकती है। उन मामलों में जिन में कुहर-भित्ति के चर्म के उत्तेजित होने पर पूय आस्राव कम हो अथवा सिरिंजिंग प्रतिनिर्देशित हो, जैसे एक्जिमा या फोड़ा होने पर, पूय को हटाने के लिए श्रवण-नाल को रूई के टुकड़े से सुखाते व पोंछते हैं। रोग की पुनरावृत्ति से बचने के लिए कान को 70 प्रतिशत अल्कोहल में भिगोये हुए रूई के टुकड़ों से पोंछते और सुखाते हैं। कान के अन्दर पोंछने और सुखाने के लिए पतले प्रोब का, जिनके सिरे पेंचदार रहते हैं, प्रयोग किया जाता है। चिकने तथा नेत्रित प्रोब इसके लिए उपयुक्त नहीं होते। रूई प्रोब के चारों ओर ठीक से कसी होनी चाहिए तथा इसका तेज सिरा आच्छादित रहना चाहिए, जिससे कि कुहर-भित्तियों या मध्यकर्ण-कला को आघात नहीं पहुँच सके।

कान को स्वच्छ करने के पहले हाथों को साबुन से साफ कर लेना

चाहिए, रूई के फाहों को आर्द्रताग्राही तथा विसंक्रामित होना चाहिए। रूई से आच्छादित प्रोब को अल्कोहल लैम्प की ज्वाला में विसंक्रामित करना चाहिए।

कान को निम्न प्रकार से पोंछते हैं। बायें हाथ का प्रयोग कर्ण-स्पेकूलम को पकड़ने में तथा कर्णपाली को पीछे तथा ऊपर की तरफ (बच्चों के मामले में पीछे तथा नीचे की तरफ) खींचने के लिए करते हैं, तथा दाहिने हाथ से रूई से आच्छादित प्रोब के सिरे को सावधानी से श्रवण-नाल में घुसाते हैं और फिर प्रोब को हल्के घुमा कर उसे कर्णपटह तक साफ करते हैं। प्रोब की यह घूर्णित गति रूई द्वारा स्राव को सोखने में मदद करती है। इस विधि को तबतक दुहराते हैं जबतक कान से निकाली गयी रूई एकदम सूख न जाय; उसके बाद यदि आवश्यक हो, तो बूंद डालते हैं।

कर्ण-टैम्पोनेड की मदद से सपूय मध्य कर्ण से हानिकारक पदार्थों को निकालने के लिए किया जाता है और कुछ मामलों में सपूय कर्ण-शोथ के उपचार के प्रमुख तरीकों में से एक है। इसका प्रयोग सिरिंजिंग या बूंद डालने के बाद भी किया जा सकता है, मगर ऐसे मामलों में टैम्पन घुसाने के पहले श्रवण-नाल को सुखा लेना चाहिए। कर्ण-टैम्पन मोड़ी हुई संकीर्ण गाज-पट्टी होती है जो लंबाई में 5 से 7 सें० मी० से लम्बी नहीं होती।

चित्र 16. कोणीय फारसेप्स
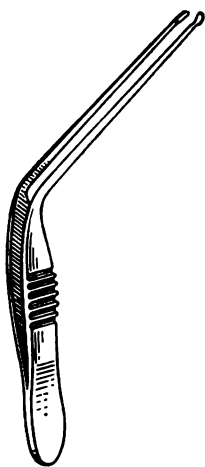
कर्ण-टैम्पोनेड निम्न तरीके से किया जाता है। कर्णपाली को बायें हाथ से पीछे तथा ऊपर की तरफ खींचा जाता है ताकि श्रवण-नाल सीधा तथा चौड़ा किया जा सके। कर्ण टैम्पन को एक कोणीय चिमटी से इसके अगले किनारे से थोड़ी दूरी पर पकड़ते हैं (चित्र 16) तथा इसे सावधानी से कर्ण-कुहर में डालते हैं। चिमटी के हटाने के बाद, गॉज-टैम्पन को पुनः इसके किनारे से 1 से 1.5 सें० मी० की दूरी पर पकड़ते हैं और काफी सावधानी से कुहर में और आगे डालते हैं, जबतक कि यह कर्णपटह के सम्पर्क में नहीं आ जाय। पूय के रक्ताधिक्य को रोकने के लिए कर्ण-टैम्पन को श्रवण-नाल में ढीले तौर पर पड़ा रहना चाहिए। अगर ज्यादा

पूय आस्राव हो तो टैम्पन को प्रतिदिन 5 से 6 बार बदलना चाहिए, जबकि कम आस्राव होने पर प्रतिदिन 1 या 2 बार। स्वाभाविक तौर पर ऊपर बतायी गयी कान का उपचार करने की सारी विधियां एंटिसेप्टिक नियमों का पूर्ण पालन करके होती हैं।

## औषध-प्रयोग

कान के रोगों में औषध-प्रयोग बूंद, मलहम तथा पाउडर के रूप में किया जाता है। कान के रोगों में सबसे आम उपचार-विधि कान में बूंद डालना है। अगर श्रवण-नाल में पूय हो तो बूंद तभी डालना चाहिए जब इसे बार-बार शुष्क विधि से रूई से पोंछ कर या सिरिंजिंग करके पूरी तरह साफ कर लिया गया हो। प्रघाण-उपकरण में उद्दीपन न हो इसके

चित्र 17. प्रधमनित्र

लिए बूंद को डालने के पहले दवा को शरीर के तापक्रम जितना गर्म कर लेना चाहिए। बूंद डालने के समय रोगी को अपने सिर को, जिस कान में बूंद डाली जा रही हैं, उसके दूसरी तरफ झुका लेना चाहिए। बायें हाथ से कर्णपाली को पीछे और ऊपर की तरफ खींच कर ड्रापर या चम्मच से 5 से 10 बूंद दवा श्रवण-नाल में डाल दी जाती है। बूंद को दिन में 2 या 3 बार डालना चाहिए, फिर उसे कान में एक बार 10-15 मिनट तक रहने देना चाहिए और फिर कान को नीचे की तरफ झुका कर इसे निकलने देना चाहिए। इसके बाद ऊपर बतायी गयी विधि से श्रवण-नाल को सुखा लिया जाता है तथा, अगर डाक्टर के द्वारा ऐसा कहा गया हो तो उसे एक ढीले गॉज टैम्पन से भर देते हैं।

मलहम का प्रयोग वाह्य श्रवण नाल तथा वहिर्कर्ण के रोगों, जैसे एक्जिमा तथा त्वक्शोथ, में किया जाता है। सबसे ज्यादा प्रयोग में आने वाले मलहम पीला और श्वेत पारद के मलहम तथा जस्ता और स्ट्रेप्टो-

पाउडर व मलहम हैं जिन्हें रूई लगे प्रोब या सलाई से कुहर-भित्तियों पर फैला दिया जाता है। कभी-कभी मलहम लगे टैम्पनों को श्रवण नाल में 15-30 मिनट तक छोड़ दिया जाता है। श्रवण-नाल को पूरी तरह मलहम से नहीं भरते क्योंकि यह कर्ण स्राव के निकास में बाधा पहुंचाता है।

पाउडर दवाई का प्रधमन डाक्टर के द्वारा किया जाता है। यह काम कनिष्ठ चिकित्साकर्मियों और कुछ मामलों में रोगी के संबंधियों को भी सौंपा जा सकता है। पाउडर प्रधमन के पहले कर्ण-कुहर को पूय तथा अन्य मलवा हटा कर पूरी तरह शुष्क या आर्द्र विधि से स्वच्छ कर लेते हैं। प्रधमन के लिए बोरिक एसिड, स्ट्रेप्टोसाइड या शुद्ध रूप में सल्फाडाइजीन के महीन पाउडर या उनके साथ अन्य दवाइयों को जैसे पेनिसीलीन और सिन्थोमाईसीन मिला कर, अधिकांशतः प्रयोग करते हैं। प्रधमन कई प्रकार के प्रधमनित्रों के द्वारा किया जाता है ( चित्र 17 ) और अगर ये उपलब्ध नहीं हों तो आसानी से बनाये जाने वाले कागज के कीप के द्वारा प्रधमन करते हैं या फिर कर्ण-स्पेकूलम की सहायता से करते हैं जिसका सिरा पाउडर में डाल देते हैं, जिससे वह थोड़ी मात्रा में पाउडर को उठा लेता है। स्पेकूलम का सिरा या कीप के अन्त को कान में घुसा कर एक रबड़ बल्ब की सहायता से पाउडर को अन्दर की तरफ फूंक देते हैं। प्रधमनित्रों के धातु-सिरा को उबलते पानी से विसंक्रामित करते हैं तथा रबड़ टिप को अल्कोहल या 4 प्रतिशत कार्बोलिक अम्ल में भिगोये हुए कपड़े से पोंछते हैं। प्रधमन की प्रक्रिया में श्रवण-नाल को सीधा रखने के लिए कर्णपाली को पीछे तथा ऊपर की तरफ खींचते हैं तथा पाउडर का एक समान पतला लेयर बनने देते हैं; पर ढेर नहीं, जिससे कि पूय का निकास अवरुद्ध हो जाय।

गर्म सम्पीड़ में तीन परतें होती हैं: (1) आर्द्र लेयर जो कि पानी या घोल में भिगोये हुए आर्द्रताग्राही कपड़े का एक टुकड़ा होता है, (2) वाटर प्रूफ पदार्थ जैसे तैलीय त्वचा या इसके बदले में वैक्स पेपर की एक परत, (3) ऐसे वस्त्र की परत जिसकी ऊष्मा चालकता बहुत कम हो, जैसे रूई, ऊनी वस्त्र या फलालैन। पहली परत को त्वचा पर लगाते हैं तथा उसके ऊपर दूसरी तथा तीसरी परतें रखते हैं जो पहले से बड़े होने चाहिए तथा उसको ढक लेना चाहिए। फिर एक सिर-पट्टी जिससे कान की रक्षा हो सके, लगा दी जाती है। इस तरह रखा हुआ सम्पीड़ त्वचा से ऊष्मा का उत्सर्जन कम कर देता है, यहां तक कि रोक देता है, अतः सबसे ऊपरी और सबसे निचली परत के बीच शरीर के तापक्रम पर वाष्प बन जाते

हैं। यह त्वचा तथा साथ ही अन्य भीतरी अंगों एवं ऊतकों में वाहिकाओं का सम्यक् तथा मंद विस्फारण करता है, इसके बाद चयापचय को तीव्र करता है, शोथ के अंत:संचरण का शमन तथा पूयता को सीमित करता है।

# वाह्य-कर्ण की बीमारियां

## वाह्यकर्ण में दग्ध और तुषाराघात

वहिर्कर्ण के दग्धों की तीन श्रेणियां होती हैं। हल्के, कठिन और अत्यंत कठिन। कठिन दग्धों के परिणामस्वरूप वहिर्कर्ण की उपास्थि का एक हिस्सा परिगलित हो जाता है जिससे उनका नाश हो जाता है तथा परिणामस्वरूप भद्दे कर्ण-विकार हो जाते हैं। दग्ध का उपचार आम शल्य-क्रिया की विधियों से करते हैं। वहिर्कर्ण का तुषार-चर्वण (तुषाराघात) दग्ध के मुकाबले में ज्यादा आम होता है। हल्का तुषार-चर्वण तीव्र ललाई पैदा करता है तथा त्वचा में हल्की सूजन हो जाती है जिसके बाद जोर का दर्द तथा ज्वलन होता है, खास कर उष्ण कमरे में प्रवेश करने पर। ज्यादा कठिन तुषार चर्वण त्वचा में बुलबुला उत्पन्न करते हैं तथा अत्यंत ज्यादा हिमीकरण त्वचा तथा उपास्थि का परिगलन करता है।

उपचार. हल्के तुषार-चर्वण का उपचार कान के धीरे-धीरे हिमद्रवण द्वारा, उसे अल्कोहल में भिगोये हुए कपड़े से पोंछ कर तथा उस पर किसी तरह का विसंक्रामित तेल का लेप कर के किया जाता है। खुजलाहट और जलन से आराम पहुंचाने के लिए कर्ण-त्वचा पर कैम्फर के मलहम के 5 प्रतिशत आयोडीन टिंक्चर का लेप करते हैं।

Rs. Camphorae tritae 0.2
Lanolini 10.0
Vaselini albi 15.0
M. f. ung.
Sig. प्रति दिन कुछ बार लगाते हैं।

बुलबुले को खोल देना चाहिए और उसे जस्ता या स्ट्रेप्टोसाइड मलहम लगी एक पट्टी से ढक देना चाहिए। परिगलित नर्म ऊतक तथा उपास्थि

को शल्यक्रिया द्वारा हटाने के बाद प्रतिजीवी दवाइयां तथा सल्फोनामाइड से उपचार करते हैं।

## एरिसिपेलस

त्वचा में खरोंच तथा वहिर्कर्ण के अन्य अवघातों में स्ट्रेप्टोकोक का प्रवेश हो जाता है। ऐरिसिपेलेटस शोथ बहुधा ऐसे व्यक्तियों में होते हैं जिन्हें मध्यकर्ण-शोथ, गीला एक्जिमा या वाह्य-श्रवण-नाल में त्वक्शोथ हुआ रहता है।

कई मामलों में वहिर्कर्ण का ऐरिसिपेलस चेहरे तथा सिर के रोमपूर्ण हिस्से से स्वपोसर्ग के परिणामस्वरूप होता है।

बड़ी सूजन तथा ऐरिसिपेलेटस ललाई जैसे स्थानीय रोग लक्षणों के होने के पहले बुखार, सिरदर्द तथा व्याकुलता की शुरूआत हो जाती है। सही ढंग से उपचार करने पर रोग 3 से 4 दिन में ठीक हो जाता है। पहले दिन मैस्टाइड प्रवर्ध की त्वचा की स्थानीय प्रतिक्रिया को देख कर कर्णमूल-शोथ का एक रोग लक्षण समझ लेने की गलती हो सकती है।

उपचार. स्ट्रेप्टोसाइड 3-4 ग्राम प्रति 24 घंटे में समान हिस्सों में बांट कर प्रत्येक 4 घंटे पर मुँह से, या पेनिसिलिन का अंतर्पेशी सूई 100000 इकाई की मात्रा में 24 घंटे में 5-6 बार, या लेवोमाईसेटिन 0.5 ग्राम की मात्रा में 24 घंटे में 4 बार मुँह के द्वारा, या बायोमायोसीन, पराबैं-गनी प्रकाश त्वगरक्तिमा की मात्रा में दे कर तथा त्वचा के ऊपर उदासीन मलहम का लेप लगा कर तनावपूर्ण दर्द कम करके उपचार किया जाता है।

Rp. Biomycini hydrochlorici 100.000 units
D. t. d. N. 20 in tabs.
Sig. 2 गोलियों की 24 घंटे में 5 मात्राएँ।

## वाह्य श्रवण-नाल की फुंसी

श्रवण-नाल का शोथ एक त्वचा-शोथ है जो मुख्य तौर पर कार्टिलेजिनस हिस्से तक सीमित रहता है तथा रोम-कूप और त्वग्वसीय ग्रंथि के शोथ के कारण पैदा होता है।

नाखून, सलाइयों या किसी और तेज चीज से श्रवण-नाल की त्वचा को चोट से रोम-कूपों में आसानी से स्टेफिलोकोक का प्रवेश हो जाता है। कुछ

मामलों में बाह्य श्रवण-नाल की फुंसी चयापचय-विक्षोभ या कुपोषण के कारण हुए आम फुंसी-रोग का एक रोग-लक्षण होती है। ज्यादा फोड़े श्रवण-नाल की अग्र-निम्न भित्ति पर होते हैं।

रोग-लक्षण. इसकी शुरूआत कान में बढ़ते हुए दर्द से होती है जो इतना तेज हो सकता है कि रोगी को नींद ही न आ सके। चबाने से दर्द बढ़ता है जो बढ़ कर दांतों, ललाट और सिर के पीछे भी पहुंच सकता है। शरीर का तापक्रम या तो सामान्य रहता है या अवज्वर होता है। श्रवण-नाल का कार्टिलेजिनस हिस्सा अपनी भित्तियों में से एक पर शंकु की आकृति के अंतर्संचरण की वजह से काफी संकीर्ण हो जाता है। श्रवण आम तौर पर सामान्य होता है। जब फोड़ा पक जाता है तो वह श्रवण-नाल में फूट जाता है और अगर यह दुबारा नहीं हो तो घाव भर जाता है।

उपचार. घने अंत:संचरण की अवस्था में गर्म संपीड लगाने की राय दी जाती है ताकि प्रक्रिया प्रौढ़ता की ओर पहुँच सके या वृद्धिरोध हो जाये। एक पतली गॉज पट्टी से, जो 10 प्रतिशत बरो विलयन या शुद्ध अल्कोहल में भिगोई हुई हो, श्रवण-नाल को पैक कर देते हैं। इन कर्ण टैम्पनों को प्रति 2 या 3 घंटे पर बदल देना चाहिए।

श्रवण-नाल को विसंक्रामित करने के अतिरिक्त उपचार का यह तरीका फोड़े को ज्यादा तेजी से पकाता है। इसके अतिरिक्त गर्म संपीड़ या सोल्यूक्स लैंप की ऊष्मा का प्रयोग दर्द से छुटकारा दिलाने के लिए किया जाता है तथा अब त्वगरक्तिमा-मात्रा में पराबैंगनी प्रकाश का भी प्रयोग एक या दो बार किया जाता है। सिर्फ ऐसे फोड़ों, जिनसे वृहत शोफ या ज्यादा दर्द हो रहा हो, को ही चीरा जाता है। कुछ अपवादों में प्रक्रिया कर्णकुहर से भी आगे बढ़ जाती है और कान के पीछे फोड़ा हो जाता है या यह और भी आगे सान्तोरिनी विदार से होते हुए कर्णपूर्व के क्षेत्र तक भी पहुंच जाती है। इन अवस्थाओं में शल्यछेदन के अलावा पेनिसिलिन तथा स्ट्रेप्टोसाइड को 0.3 ग्राम की मात्रा में 24 घंटे में 8 बार दे कर उपचार करते हैं।

आवृत्ति रोकने के लिए, कुहर की त्वचा को 70 प्रतिशत अल्कोहल में भिगोये हुए कपड़े से पोंछते हैं या उस पर 2 प्रतिशत पीला पारद मलहम का लेप लगाते हैं। इसके साथ ही साथ शरीर को आर्सेनिक, ब्रेवर यीस्ट तथा स्वरक्त चिकित्सा के द्वारा चुस्त-तंदुरुस्त बनाते हैं।

## विसरित वाह्यकर्ण-शोथ

विसरित वाह्यकर्ण-शोथ प्राथमिक रोग के तौर पर शायद ही कभी होता है। यह आम तौर पर तीव्र या चिरकारी सपूय मध्यकर्ण-शोथ होने के बाद कम या गलत उपचार होने के परिणामस्वरूप होता है।

त्वचा के शोथ से श्रवण-नाल में सूजन हो जाने से यह संकेन्द्रिक तरीके से संकीर्ण हो जाता है। नाल में विशल्कित वाह्य त्वचा-कोशिकाएं तथा सपूय निःस्राव भर जाता है। तीव्र अवस्था में दर्द एकदम अनुपस्थित भी रह सकता है। श्रवण को हानि सिर्फ मध्यकर्ण-शोथ की हालात में ही पहुंचती है।

उपचार. तीव्र अवस्था में कान की बोरिक अम्ल के उष्ण घोल से सिरिंजिंग करते हैं तथा फिर उसे प्रोब पर रूई लपेट कर तथा गॉज टैम्पन से सुखाते हैं। पहले और दूसरे दिन कान को 10 प्रतिशत बरो विलयन में भिगोये हुए टैम्पन से पैक कर देते हैं तथा उन्हें हर एक या दो घंटे पर बदल देते हैं, बाद में सूखे टैम्पन का प्रयोग भी किया जा सकता है। सूखे टैम्पन को निःस्राव से पूरी तरह संतृप्त होने से पहले ही नाल से हटा लेना चाहिए। उपरिस्थ त्वचा-व्रण के साथ चिरकारी शोथ में 3-5 प्रतिशत सिल्वर नाइट्रेट विलयन लगाते हैं, सल्फोनामाइड परिधमन करते हैं या सल्फोनाइड इमल्श्ना में भिगोये हुए कर्ण-टैम्पन का प्रयोग करते हैं। अगर साथ ही साथ सपूय मध्यकर्ण-शोथ हो तो नाल के पूय को संकीर्ण गॉज टैम्पन का सावधानी से एवं बहुधा प्रयोग करके सुखा देते हैं।

अगर वाह्यकर्ण-शोथ के साथ खुजली भी हो तो रोगी के खान-पान को ठीक करना आवश्यक होता है। ज्यादा मसालेदार, टीनबंद या धूम्रित खाना मना कर देते हैं तथा ऐसा खाना लेने की राय देते हैं जिसमें नमक कम हो तथा जिसमें निकोटिनिक अम्ल तथा विटामिन सी व बी$_2$ हो।

Rp. Ac. nicotinici 0.05
Sacch. lactici 0.2
D. t. d. N. 12
Sig. पाउडर की एक मात्रा प्रतिदिन 3-4 बार खाने के बाद।

खुजली बहुधा प्रतिहिस्तामिनिक दवाइयां (जैसे डाइमेड्रोल 0.025 से 0.05 ग्राम को 3 मात्राओं में रोज 7 से 10 दिन तक) देने पर ठीक हो जाती है।

## वाह्यकर्ण का एक्जिमा

एक्जिमा कई स्थानीय कारणों (जैसे कान से पूय-आस्राव के कारण त्वचा-क्षोभ ; यांत्रिक, तापीय व रासायनिक क्षोभ) से हो सकता है या सामान्य रोगों के कारण हो सकता है, जो अंतर्स्रावी ग्रंथियों की दुष्क्रिया, चयापचय क्षोभ आदि से संबंधित होते हैं अथवा निःस्रावी प्रवृत्ति, गाउट आदि के रूप में होते हैं। एक्जिमा की तीव्र अवस्था में खुजली, शोथ-सूजन, त्वगरक्तिमा तथा बुलबुला का बनना भी साथ-साथ होता है। ये फूट कर स्रावी विक्षति तथा विदार बनाते हैं, जो पपड़ी से आच्छादित रहते हैं।

एक्जिमा फैलने और चिरकारी होने की प्रवृत्ति रखता है और इस हालत में इसके साथ त्वचा-अंतःसंचरण तथा व्रण हो जाता है तथा वहिर्कर्ण सूज जाता है तथा कभी-कभी श्रवण-नाल संकीर्ण हो जाता है। ठीक होने के बाद भी एक्जिमा अत्यंत महत्वहीन कारणों से दुबारा हो सकता है। ऐसी आवृत्ति रोकने के लिए रोगी को कान खरोंचने से, उसे साबुन और पानी से धोने से या उसे रूई या किसी और चीज से पोंछने से रोकते हैं।

उपचार का प्राथमिक उद्देश्य खुजली रोकना है जिसके लिए नियमित अंतराल पर कान में स्टिप्टिक लोशन को 5 प्रतिशत बरो विलयन या लेड वाटर में भिगोये हुए टैम्पन के साथ पैक करते हैं। इसके अन्य उपचार हैं—लेसर पेस्ट तथा डस्ट Acidi salicylici 0.5, Amyli tritici, Zinci oxydati aa 10.0। 2 प्रतिशत सैलिसिलिक मलहम का प्रयोग पपड़ी को नर्म हटाने में करते हैं।

आर्द्र एक्जिमा का उपचार 2 प्रतिशत सिल्वर नाइट्रेट घोल या 1 प्रतिशत ब्रिलियेंट ग्रीन विलयन से करते हैं और बाद में भी इन्हीं मलहमों का प्रयोग करते हैं। 2 प्रतिशत बोरिक तार या 2 प्रतिशत बोरिक नेफ्थेलन पेस्ट भी काफी प्रभावशाली रहते हैं। अगर संभव हो तो कान में पट्टी नहीं बांधनी चाहिए क्योंकि इससे ठीक होने में बाधा पहुंचती है। कुछ केसों में पराबैंगनी प्रकाश भी सहायक होता है।

स्थानीय उपचार के अतिरिक्त सामान्य उपचार भी महत्वपूर्ण है, विशेष कर बच्चों में, जिनमें एक्जिमा बहुधा पोषण-विक्षोभ के कारण हो जाता है।

## कर्णगूथ का अंतर्घट्टन

कुछ अवस्थाओं में कान में कर्णगूथ के जमा होने से श्रवण-नाल अवरुद्ध हो जाता है। सामान्यतः कई ग्रंथियों द्वारा स्राव किया गया कर्णगूथ सूख कर भंगुर में परिणत हो कर फिर बाहर गिर पड़ता है।

कर्णगूथ के असामान्य अंतर्घट्टन के कई कारण हो सकते हैं – (अ) ग्रंथियों द्वारा अत्यन्त ज्यादा स्राव, जो स्थानीय त्वचा-क्षोभ के परिणाम-स्वरूप हो सकता है। यह त्वचा-क्षोभ कर्णगूथ निकालने के लिए प्रयुक्त सलाई या तौलिये की मरोड़ी हुई किनारी से हो सकता है। अत्यधिक कर्णगूथ-स्राव रोगी में सामान्यतः भी हो सकता है। (ब) वाह्यश्रवण-नाल का संकीर्ण होना, जो सामान्य कर्णगूथ-निष्कासन को रोकता है। (स) कर्णगूथ के असामान्य गुण: इसकी ज्यादा श्यानता तथा कुहरभित्ति से सटे रहने की प्रवृत्ति।

कर्णगूथ का अंतर्घट्टन काफी ज्यादा हो सकता है और फिर भी इसका खराब प्रभाव नहीं हो सकता है। अगर कर्णगूथ के ढेर और कुहर-भित्ति के बीच एक विदार हो, जो कितना भी संकरा क्यों न हो, तो श्रवण सामान्य बना रहता है। लेकिन इस स्थिति में थोड़ा भी पानी अगर कान में घुस जाये जैसा कि सिर धोने या गर्म पानी से स्नान करते वक्त होता है, तो श्रवण तेजी से कम हो जायेगा, क्योंकि पानी कर्णगूथ को फला देगा और मार्ग को पूरी तरह अवरुद्ध कर देगा। रोगी कर्णसंख या टिनिटस और अपनी ही आवाज को विकृत रूप में सुनने, जो बन्द कान में अनुनाद करती है, की शिकायत करते हैं। वेगस तंत्रिका के उद्दीपन के कारण बहुधा प्रतिवर्त खांसी भी हो जाती है।

निदान. कर्णगूथ का अंतर्घट्टन आसानी से ओटोस्कोपी के द्वारा पता लगाया जा सकता है, जिससे लाल-भूरा या गहरा-भूरा कर्णगूथ मार्ग को अवरुद्ध किये हुए दीखता है। यह निश्चित करने के लिए कि कर्णगूथ कड़ा है या नर्म, प्रोब का प्रयोग करते हैं।

उपचार. कान से कर्णगूथ को उष्ण पानी से सिरिंजिंग करके निकालते हैं। लेकिन इसके पहले पूय-निःस्राव की उपस्थिति जानने के लिए कान की जांच करते हैं क्योंकि इस मामले में कर्णपटह में सूखा छिद्र रहने की संभावना होती है। अगर ऐसा हो तो सिरिंजिंग से प्रक्रिया तेज हो जायेगी और पूय निःस्राव फिर होगा। इस हालत में कर्णगूथ को वलय क्युरेट या कर्णगूथ-अंकुश से हटाना बेहतर रहता है।

सिरिंजिंग 37° सें० तक के गर्म पानी से करनी चाहिए, ताकि घ्राण-उपकरण का उद्दीपन होने से रोका जा सके। इस उपकरण का उद्दीपन होने से रोगी को भ्रमि, मितली तथा वमन जैसी कष्टदायक संवेदनाएं होने लगती हैं। धातु के पिस्टन वाले सिरिंज ( चित्र 18 ) की क्षमता 100 मि० ली० होनी चाहिए। जल की धारा को अन्तरालों पर श्रवण नाल की पश्चभित्ति की ओर निर्दिष्ट करना चाहिए और कर्णपाली को ऊपर और पीछे की ओर खींच कर रखना चाहिए। ( चित्र 19 a, b )

चित्र 18. धातु पिस्टन कर्ण सिरिंज

कुहर-भित्ति या कर्णपाली पर सिरिंज सिरा से होने वाले आकस्मिक आघात के निरोध के लिए कर्णपाली को खींचने वाले बायें हाथ से उसी समय सिरिंज को सहारा भी देना चाहिए, ताकि सिरिंज का सिरा धक्के से कुहरी छिद्र के भीतर चोट न पहुंचा सके।

यदि बारम्बार सिरिंजिंग के पश्चात भी कर्ण-गूथ नहीं निकलता है तो क्षारीय बूंदों का दो-तीन बार बिन्दुपातन करके उसे नर्म करना चाहिए। ये बूंदें 37° सेन्टीग्रेड पर जालकर उन्हें 10-15 मिनट कान में रखनी चाहिए।
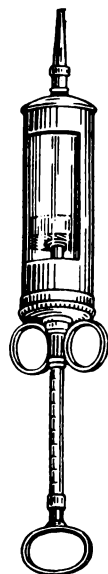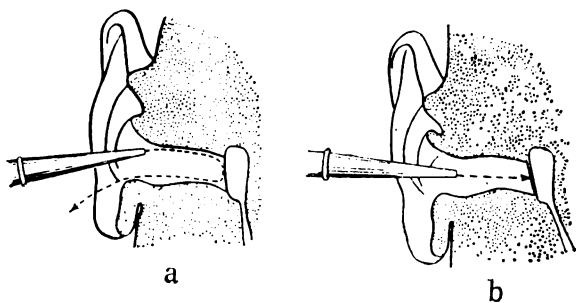
चित्र 19. सिरिंजिंग में धारा की दिशा
a पीछे ; b ऊपर

Rp. Natrii bicarbonici 0.5

Glycerini

Aq. destill. āā 5.0

Sig. 10 बूंदें गर्म करके तीन बार रोज डाली जायें।

रोगी को चेतावनी देनी चाहिए कि बिन्दुपातन के पश्चात कर्णगूथ के फूलने की वजह से बन्द कान की तरह की अनुभूति तीव्र हो सकती है।

वाह्य श्रवण-नाल के चर्म-रोगों के कारण वाह्य-त्वचा का व्यापक विशल्कन हो सका है जिसकी वजह से कुहरी भित्ति से सटने वाली कठोर गाढ़ा वाह्य त्वचाभ अंतर्घट्टन हो सकता है। इस अंतर्घट्टन को कुंठित अंकुश के द्वारा निकाला जाता है। प्रक्रिया के लिए अनुभव जरूरी है या फिर इसे सैलिसिलिक अल्कोहल बून्दों द्वारा मुलायम बनाकर फिर सिरिंजिंग द्वारा निकाला जाता है।

रोग-निरोध. कान में कर्णगूथ-अंतर्घट्टन को रोकने के लिए रोगी को हेयर-पिन व तौलिये के दोलित सिरे आदि से कर्णगूथ निकालने के विरुद्ध चेतावनी देनी चाहिए, क्योंकि इससे कर्णगूथ श्रवण-नाल में और भी भीतर चला जाता है। इसके अलावा, नुकीली वस्तुओं की मदद से कर्णगूथ पकड़ने पर कुहर-भित्ति व कर्णपाली को चोट लग सकती है।

## कान में आगंतुक शल्य

कान में आगंतुक-शल्य अधिकतर तीन से सात वर्षों की आयु वाले बच्चों को होते हैं।

बच्चे कानों में कोई छोटी वस्तु जैसे मटर, बटन, मोती, सूर्यमुखी के बीज, फल, पत्थर आदि को डाल सकते हैं।

वयस्कों में सबसे ज्यादा पाये जाने वाले आगन्तुक शल्य हैं माचिस के टुकड़े, अनाज के दाने, रूई, लकड़ी, धातु व कोयले के टुकड़े आदि।

कभी-कभी छोटे कीड़े, जैसे घुन या लिचट्टा आदि, कान में विसर्पन कर सकते हैं।

रोग लक्षण. सपाट चिकनी वस्तुएं, जो कुहरभित्तियों पर आघात नहीं करतीं, काफी समय तक नाल में बिना कोई लक्षण पैदा किये रह सकती हैं।

नुकीली, दांतदार, धारों वाली वस्तुएं या जीवित कीटाणु, जिनका कान में भ्रमण काफी क्षोभक होता है, कान में वेदना या संख (शोर) पैदा कर सकते हैं।

आगंतुक शल्य स्वयं इतने खतरनाक नहीं होते हैं, जितना खतरनाक होता है उन्हें निकालने का अकुशल प्रयास।

उपचार. आगुंतक शल्य को निकालने से पूर्व उसकी प्रवृत्ति जानने के लिए निरीक्षण जरूरी होता है। कर्णगूथ-अन्तर्घट्टन की तरह आगन्तुक शल्य को हटाने का भी सबसे विश्वसनीय तरीका है सिरिंजिंग। जल की धारा की दिशा कुहर-भित्ति और आगन्तुक शल्य के बीच के रेखा-छिद्र की ओर होनी चाहिए। यदि सिरिंजिंग सफल नहीं होती तो आगंतुक शल्य को छोटे कुंठित अंकुश द्वारा निकालना चाहिए (चित्र 20)। इस उपाय के लिए अधिक सावधानी की और रोगी के सिर के मजबूती से स्थिरीकरण की आवश्यकता होती है, इसलिए बच्चों को लघु सार्वदैहिक संवेदनाहारी प्रसाधन देना चाहिए। अंकुश प्रकाश-पूर्ण होना चाहिए, चपटी ओर से कुहर-भित्ति और आगंतूक शल्य के बीच से निवेशित होने पर भी सदैव दृष्टिगोचर रहना चाहिए। अंकुश के वस्तु के पीछे पहुंचने के पश्चात ही चित्र 21 में जैसे दिखाया गया है वैसे ही बीच की ओर मोड़ना और निकालना चाहिए। इस शल्य-क्रिया को हुनर-प्राप्त शल्य-चिकित्सक द्वारा किया जाना चाहिए। फुले हुए और पूरी तरह फंसे हुए आगंतुक शल्यों जैसे मटर, फली आदि पर पहले बार-बार शुद्ध अल्कोहल की बूंदों का बिन्दुपातन कर उन्हें सिकुड़ा दिया जाता है।

गोल आकार वाले शल्यों को निकालने के लिए चिमटी या सँड़सी को कभी काम में नहीं लाना चाहिए क्योंकि इससे ये नाल में और अन्दर घुस जायेंगे।

चित्र 20. कान में आगन्तुक शल्य को निकालने वाले नुकीले और कुंठित अंकुश
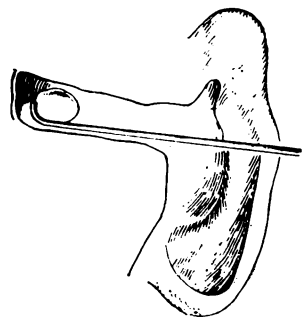
चित्र 21. कर्ण से आगन्तुक शन्य का निष्कासन

आगंतुक शल्यों का औजारों द्वारा निष्कर्षण जानकार विशेषज्ञों द्वारा ही किया जाना चाहिए। औजारों के हुनर-रहित प्रयोग से गहरे उपद्रव हो सकते हैं।

पूर्वलिखित उपायों का प्रयोग तभी किया जाता है जब कोई उपद्रव नहीं हो या कुहर-भित्ति में आगन्तुक शल्य के कारण या फिर उसके निष्कर्षण के असफल प्रयास से काफी क्षोभ या सूजन नहीं मौजूद हो। यदि रोगी की अवस्था इजाजत दे तो आगन्तुक शल्य को निकालना कुछ दिनों के लिए रोक देना चाहिए, जबतक कि शोथज लक्षण श्रवण-नाल में कम नहीं हो जायें और इसके लिए 10 प्रतिशत बरो के घोल, या फूले हुए आगन्तुक शल्य होने पर अल्कोहल बून्दों को डालना चाहिए।

यदि वस्तु को निकालने का उपाय असफल रहे और उसके पश्चात तीव्र शोथ और कुहर-भित्ति में सूजन हो जाये या कर्णपटह में छिद्र हो जाये और वस्तु नाल के अस्थि-भाग में फंसी हुई हो तो ऐसे गिने-चुने मामलों में ही आगंतुक शल्य को निकालने के लिए शल्य-क्रिया जरूरी होती है। यदि पूय-द्रवाधिक्य से तेज ज्वर, जबरदस्त सरदर्द, वमन, शिरो घूर्णन आदि हो या फिर अंतःकपाल उपद्रवों (जैसे कि पूयजन्य तानिकाशोथ) का खतरा हो तो यह आपरेशन और जरूरी हो जाता है। शल्य-क्रिया को पेनिसिलिन देकर किया जाता है। कर्णपाली के पीछे तीन से चार से० मी० का छेदन किया जाता है, जिसे हड्डी तक ले जाया जाता है; श्रवण-नाल को वियोजित किया जाता है और खातिका-प्रोब के साथ छिन्न किया जाता है।

इस तरह आगंतुक शल्यों का सीधा प्रेषण व निष्कासन संभव हो सकता है।

जीवित कीड़ों को पहले क्लोरोफार्म-जल या तेल की कुछ बूंदें डालकर डुबा दिया जाता है और फिर उन्हें धोवन-विधि (पानी की धार) या चिमटी द्वारा निकाल दिया जाता है।

## मध्य कर्ण के शोथ

### यूस्टेशियन नली का तीव्र केटार (प्रतिश्याय)

तीव्र कोरीजा (सिर में ठंड लगने से नासा-श्याय), इन्फ्लुएंजा, और अन्य रोगों की तरह ही नासा और नासाग्रसनी का शोथ भी मध्यकर्ण-

कुहर के साथ मिल कर अंधवर्ध बनाने वाली यूस्टेशियन नली तक फैल जा सकता है।

नली-भित्तियों की शोथीय सूजन मध्यकर्ण-गुहा की ओर जाने वाले वायु-मार्ग को रुद्ध कर देती है। नली-अवरोध निम्न शुक्तिका के पश्च सिरों की शोफयुक्त अतिवृद्धि ( नासाग्रसनी-अर्बुद ) में भी पाया जाता है। ऐडिनाईड अतिविकास वाले बच्चों में और कुछ अन्य रोगों में यूस्टेशियन नली का अवरोध काफी अक्सर होता है।

यूस्टेशियन नली के अवरोध के जो लक्षण ओटोस्कोपी द्वारा पाये जाते हैं, वे संभवतः मध्यकर्ण-गुहा में परिवर्तनों के पविणाम होते हैं। वायु सम्भरण के रुकने या अपर्याप्त संवातन के फलस्वरूप मध्यकर्ण-गुहा की वायु का आंशिक अवशोषण होता है जिससे मध्य-कर्ण का वायु-दाब समाप्त हो जाता है और कर्णपटह का आकुंचन हो जाता है।

स्वप्रत्ययी लक्षणों में शामिल हैं श्रवण-तीक्ष्णता का अभाव, कान भरा होने की भावना और निगरण के समय अपघटन ( कट-कट का ) स्वर सुनाई देना। रोगी कभी-कभी महसूस करता है कि वह अपने स्वर की प्रतिध्वनि सुन रहा है, इसे ओटोफोनी कहते हैं। जब मध्य-कर्ण से पारस्राव होता है तो रोगी कान में तरल होने की संवेदना की शिकायत करता है। देह का ताप सामान्य रहता है, कर्ण-वेदना हल्की होती है या नहीं रहती है।

ओटोस्कोपिक परीक्षण से पता चलता है कि मैलियस का हस्तक अधिक क्षैतिज स्थिति धारण किये रहता है और यह लघु प्रतीत होता है, लघु प्रवर्ध साफ निकला हुआ होता है और उससे निकलने वाले अग्र और पश्च पुटकों की विशिष्ट रूपरेखा होती है। प्रकाश-शंकु का आकार बदल जाता है और यह लघु होकर एक बिन्दु की तरह दिखता है या पूर्णतया विलुप्त हो जाता है। यूस्टेशियन नली में तीव्र अवरोध के पश्चात कई बार श्लेष्मा-कला में अतिरक्तता हो जाती है और मध्यकर्णगुहा में पारस्राव आ जाता है जिसका स्तर कभी-कभी ओटोस्कोपी द्वारा देखा जा सकता है।

उपचार. यह नली अवरोध के मूल कारण को समाप्त करने में निहित है। नासा-ग्रसनी और नाक में अर्बुद, अतिवृद्धियों और ऐडिनाइड अतिविकासों को आपरेशन द्वारा हटाया जाता है। नासा और नासाग्रसनी-श्लेष्मा के तीव्र शोथों का विभिन्न वाहिका-संकीर्णक और शोथ-विरोधी औषधियों द्वारा उपचार किया जाता है।

नाक में डालने के लिए कोकेन और एफीड्रीन बून्दों के बिन्दुपातन का नुस्खा दिया जाता है।

Rp. Cocaini muriatici
Ephedrini hydrochlorici aa 0.2
Sol. Acidi borici 3% 10.0

निर्देश : छः बून्दों की एक डोज प्रत्येक नथुने में दिन में तीन-चार बार।

पेनिसिलिन मरहम का भी प्रयोग किया जा सकता है और मौखिक तौर पर ऐस्पिरिन भी दी जा सकती है।

साथ ही ऊष्मा-सम्पीडों को कान में लगाकर और सोलूक्स-लैम्प से किरणन द्वारा स्थानीय तापोपचार दिया जाता है। इस उपचार से नासा-श्वसन का पुनर्स्थापन हो जाता है, नली-श्लेष्मा की सूजन कम हो जाती है और मध्य-कर्ण का पारस्राव समाप्त हो जाता है। नली-क्रिया के और मध्यकर्ण-गुहा में सामान्य दाब के पुनर्स्थापन में वात्प्रधमन से काफी सहायता मिलती है, इसलिए इनको नाक में तीव्र शोथ के कम होते ही प्रारम्भ करवा देना चाहिए।

## तीव्र मध्यकर्ण-शोथ

तीव्र मध्यकर्ण-शोथ, खासकर बच्चों में, सबसे ज्यादा पाया जाने वाला रोग है। इसके रोगलक्षण-प्रवाह के आधार पर इसके तीव्र केसों को सरल और वेधी भागों में विभाजित किया जाता है।

तीव्र मध्यकर्ण-शोथ के दोनों रूप एक ही प्रक्रिया की दो अवस्थाएं हैं। तथापि यह विभाजन व्यवहार में सही साबित हो चुका है क्योंकि यह शोथ-प्रक्रिया की गंभीरता और उसके प्रवाह के विषय में जानकारी देता है। इसके अलावा, जैसा कि आगे दिखाया जायेगा, यह विभाजन उपचार से भी मेल खाता है, जो कि दोनों रूपों में अलग-अलग होता है। सरल कर्ण-शोथ हालाँकि मध्य-कर्ण में निःस्राव पैदा करता है, वह कर्ण-वेधन और पूय-आस्राव नहीं करता, जैसा कि वेधी मध्यकर्ण-शोथ में होता है। इसलिए कर्ण-शोथ का पहला रूप, हालांकि अपर्याप्त कारणों से, प्रतिश्यायी कहलाता है और दूसरा सपूय।

हेतुकी. तीव्र मध्यकर्ण-शोथ मध्य-कर्ण-गुहा में घुसने वाले रोगजनक कीटाणुओं द्वारा होता है। अनेक सूक्ष्मजीव, जिनमें रोगजनक कीटाणु भी शामिल हैं, स्वस्थ नासाग्रसनी में भी हमेशा पाये जाते हैं। सामान्य कारणों से जैसे कि घटी हुई देह-प्रतिरोध शक्ति और स्थानीय वैकृतिक परिवर्तनों के कारण, संक्रमण आसानी से घुसकर मध्यकर्ण-गुहा में विकसित हो सकता है।

सामान्य कारणों में प्रतिश्याय भी है, जो कि पूरे शरीर की क्रिया अवस्था में परिवर्तन लाता है और इसमें तीव्र संक्रमण-रोग, जैसे इन्फ्लूएंजा, मीजिल्स, स्कारलेट ज्वर आदि भी हैं जो कि देह-प्रतिरोध को कम कर देते हैं। अन्य कारणों में हैं ऐसी तीव्र शोथ-प्रक्रियाएं जिनके लक्षण स्थानीय होते हैं; जैसे ऊर्ध्व श्वसन-नली का तीव्र प्रतिश्याय, तीव्र नासा शोथ, नासाग्रसनी का तीव्र प्रतिश्याय, टोंसिलशोथ आदि। नासा और नासाग्रसनी में होने वाले सभी प्रकार के वैकृतिक परिवर्तनों, जैसे निम्न शुक्तिका के पश्च अंतों की अतिवृद्धि, परानासा-शिरोनली के रोग, ओजीना, नासा-पालिप ऐडिनाइड, चिरकारी टांसिल-शोथ आदि तीव्र कर्णशोथ के विकास में सहायक हो सकते हैं। कभी-कभी तीव्र कर्णशोथ नासा-गुहा में, खासकर उसके सुदूर भाग में टेम्पोनैड के पश्चात और हुनर-रहित नासा-डूश या शल्य-हस्तक्षेप और नाक में कौटरीकरण (दागने) के बाद भी पाया जाता है।

संक्रामक कीटाणु यूस्टेशियन नली और मध्यकर्ण में खांसी, छींकने और तेजी से नाक छिनकने से पहुँच जाते हैं। संक्रमण का यह मार्ग, जिसे नाली-मार्ग के नाम से जाना जाता है सब से आम है। इससे रक्त-धारा द्वारा कीटाणु पहुंचने की कम आवृत्ति होती है जैसा कि संक्रामक रोगों में देखा जाता है। उनका चोटग्रस्त कर्णपटह द्वारा घुसना बहुत कम देखा जाता है।

महत्व के क्रम में तीव्र मध्यकर्ण-शोथ के रोगजनक वाहकों में हैं—सभी प्रकार के स्ट्रेप्टोकोक, स्टेफाइलोकाक और न्यूमोकोक। न्यूमोकोक बच्चों तक ही सीमित होता है।

कम तीव्र रोग की स्थिति में मध्य कर्ण में वैकृतिक परिवर्तन निम्न लक्षणों तक सीमित रहते हैं: श्लेष्मल कला में रक्ताधिक्य, थोड़ी सूजन और उसके शोफ तथा पहले सीरमी और फिर सपूय निःस्राव। तीव्र मध्यकर्ण-शोथ के अधिक गहरे रूपों में श्लेष्मा की वृहत सूजन होती है जो कि

15 से 20 गुना तक फूल जाती है, और कुछ स्थितियों में तो मध्यकर्ण-गुहा का पूर्ण अवरोध हो जाता है। सूक्ष्मदर्शन-परीक्षण में छोटी वाहिकाओं का और अवोपत्वचीय स्तर की कोशिकाओं का विस्फारण और सभी श्लेष्मल परतों का गोलाकार कोशिकाओं द्वारा व्यापक अंतःसंचरण देखे जाते हैं। शोथ-निःस्राव शीघ्र ही सपूय हो जाता है।

इस प्रक्रिया में शुरू से ही कर्णपटह पर भी असर होता है और यह फूल जाता है, संकुलित हो जाता है और इसकी रूपरेखा समाप्त हो जाती है।

रोग-लक्षण. मध्यकर्ण-शोथ के रोग-लक्षण अपनी तीव्रता तथा बढ़ने की दर में काफी अलग-अलग होते हैं।

रोगी को तीव्र पीड़ा महसूस होती है जो शीर्ष तथा पश्च कपाल तक फैल जाती है। पीड़ा या तो शुरू में हल्की होती है तथा फिर धीरे-धीरे बढ़ती है या फिर अचानक तेज हो जाती है। कान के भरे होने या बन्द होने का अहसास शुरू में होता है जो तेजी से विभिन्न स्तर की बधिरता में परिणत हो जाता है। इसके साथ-साथ टिनिटस (कान का बजना) भी होता है, जो बाद में अत्यन्त कष्टदायी धड़कन की तरह महसूस होता है।

तीव्र मध्यकर्ण-शोथ के निदान में ओटोस्कोपी से पता चले शारीरिक चिन्हों का बहुत महत्त्व होता है। शोथ प्रक्रिया की प्रत्येक अवस्था कर्णपटह पर उस तरह परावर्त्तित होती है जैसे यह कोई दर्पण हो। शोथज परिवर्तन की शुरूआत कर्णपटह में धीरे-धीरे बढ़ते रक्ताधिक्य से होती है। पहला चिन्ह मैलियस के हस्तक के साथ वाहिकाओं का विस्फारण है, जिसके बाद कर्णपटह के किनारों से केन्द्र की तरफ त्रिज्य अंतर्क्षेपण होता है (रंगीन तालिका I, चित्र 2a देखें) और तब सारी कर्णपटह-कला पूरे क्षेत्र में तेज लाल हो जाता है, आकृति खो बैठता है तथा कर्ण-कुहर में धीरे-धीरे उभरने लगता है (रंगीन तालिक I, चित्र 2b)। मध्यकर्णगुहा में निःस्राव की वृद्धि से कर्णपटह और अधिक उभर आता है, खास तौर पर इसके पश्च हिस्से में। मध्यकर्ण-कला धीरे-धीरे पतली होती जाती है; अपने सबसे उन्नत बिंदु पर, जो सपूय निःस्राव को प्रदर्शित करता है, पीली हो जाती है। इनमें अगर छेदन (पारवेधन, माइरिंगोटोमी) न किया गया हो तो निःस्राव के आस्राव के साथ कर्णपटह का स्वतःस्फूर्त वेधन हो जाता है। बाद में कर्णपटह की उपकला की परत अलग हो जाती है, जिसके कारण कर्णपटह धूसर रंग धारण कर लेता है जो कि बाह्य त्वचा

की दरारों से होकर अभी भी शोथग्रस्त कर्णपटह के रक्ताधिक्य वाले हिस्से को देखने के लिए पृष्ठभूमि का काम करती है। जमे हुए निःस्राव की वजह से कर्णपटह के वेधन के क्षण का निर्णायक महत्व है क्योंकि इससे सरल (प्रतिश्यायी) या वेधक (सपूय) प्रकार के तीव्र मध्यकर्ण-शोथ के बीच भेद करने में आसानी होती है। मध्यकर्ण-गुहा में सपूय निःस्राव होने पर भी यदि कर्णपटह अछूता रहे, तो शोथ को औपचारिकतः सरल या प्रतिश्यायी कहा जाता है।

पारवेधन या कर्ण पटह के स्वतःस्फूर्त वेधन के बाद श्रवण-नाल आस्राव से भर जाता है जो पहले तो सीरम-रक्तक होता है तथा फिर श्लेष्म-पूयी हो जाता है जो फिर सीधे पूय में बदलते हुए बराबर बढ़ती मात्रा में बहने लगता है।

मध्यकर्ण-गुहा में शोथीय परिवर्तनों के तेज होने के साथ-साथ व्याकुलता, बुखार, बधिरता तथा कान के अन्दर, आस-पास व मैस्टाइड क्षेत्र में दर्द होता है।

बच्चों में तीव्र मध्यकर्ण-शोथ की शुरूआत में आम तौर पर 39–40° सें० तक तेज बुखार होता है और जो कभी-कभी स्थानीय लक्षणों के होने के पहले ही वर्तमान होता है तथा आरंभमान रोग का एकमात्र चिन्ह होता है।

श्रवण की क्रियात्मक परीक्षा से चावन प्रकार की बधिरता पायी जाती है तथा अधिकांश मामलों में श्रवण में सुधार रोग से मुक्ति होने की प्रक्रिया को दर्शाता है।

रोग-प्रवाह. तीव्र मध्यकर्ण-शोथ का प्रवाह कई रूपों में संभव है। हल्का शोथ, जिसमें कर्णपटह-वेधन नहीं हुआ हो, उल्टा पथ अपना कर किसी भी अवस्था में आ कर अत्यन्त कम समय में एकदम ठीक हो जा सकता है। कर्णपटह-वेधन के साथ सपूय रूप में होने पर रोग हल्के-फुल्के मामलों में 2-3 सप्ताह में ठीक हो जाता है और मध्यम व जटिल मामलों में 4-6 हफ्ताह में ठीक होता है। कर्णपटह के वेधन या परिवर्धन के बाद सामान्यतः रोगी की आम अवस्था में सुधार होता है; कभी-कभी शारीरिक तापमान सामान्य हो जाता है, भयंकर दर्द में आम तौर पर कमी होती है तथा सामान्यतः रोगी अच्छा महसूस करता है। कर्णपटह-वेधन के बाद भी जारी बुखार तथा दर्द किसी उपद्रव का सूचक है। कान से आस्राव तरह-तरह का हो सकता है—यह अत्यन्त कम हो सकता है और कभी इतना ज्यादा हो

सकता है कि मैस्टाइड कोशिकीय व्यवस्था में किसी विक्षति का सूचक हो जाता है।

तीव्र मध्यकर्ण-शोथ में वेधन आम तौर पर अग्र निम्न चौथाई में स्थित एक चित्ती (फ्लेक) की तरह दिखता है और बहुधा दृष्टि से कर्णपटह की परतों की शोफीय सूजन के कारण छुपा रहता है। ऐसी हालत में यह छिद्र से झांकती एक पूय-बून्द पर एक प्रकाश प्रतिवर्त के द्वारा पहचाना जाता है।

शुरू में तीव्र मध्यकर्ण-शोथ मैस्टाइड-प्रवर्ध की अस्थि के ऊपर दाब-वेदना पैदा करता है जो कान के पीछे दबाने पर काफी दर्द पैदा करता है। मध्यकर्ण-शोथ के सीधे-सादे केसों में कर्णपटह के वेधन के बाद यह दर्द समाप्त हो जाता है। अगर बाद में भी रोग के तीसरे या चौथे सप्ताह में यह पुनः होता है, तो यह कर्णमूलशोथ के शुरू होने का लक्षण है।

परिणाम. सबसे सामान्य परिणाम रोग से पूर्ण मुक्ति है; पूय का आस्राव बन्द हो जाता है, छिद्र भर जाता है तथा श्रवण पूरी तरह वापस हो जाता है। अन्य मामलों में पूय का आस्राव बन्द होने के बाद भी छिद्र बना रह सकता है तथा पुनर्संक्रमण के बाद फिर मध्यकर्ण-शोथ हो सकता है। अन्त में ऐसा मध्यकर्ण-शोथ, जो संक्रामक रोगों के साथ पैदा होता है, आम तौर पर चिरकारी पथ अपनाता है तथा पूय-आस्राव जारी रहता है और छिद्र भी बना रहता है। तीव्र मध्यकर्ण-शोथ के कुछ केस कर्णमूल-शोथ की वजह से और कठिन बन जाते हैं। तीव्र शोथ के कुछ अंतर्कपालिक उपद्रवों (जैसे सीनुस थ्रोम्बोसिस तथा पूय-रक्तता, मस्तिष्क-विद्रधि तथा सपूय तानिका-शोथ आदि) को भी ध्यान में रखना जरूरी होता है।

अतः तीव्र मध्यकर्ण-शोथ में कोई भी पूर्वानुमान सावधानी से करना चाहिए।

निदान. तीव्र मध्यकर्ण-शोथ का निदान इसकी पहली अवस्था में (जब कर्णपटह का विदार नहीं हुआ रहता है) प्ररूपी इतिहास पर, जैसे कान भरा रहने का एहसास, तेज दर्द, बुखार, तथा साथ ही कर्णपटह के औटोस्कोपी पर आधारित होता है। ये लक्षण तथा पूय-आस्राव का होना तीव्र मध्यकर्ण-शोथ के निदान के लिए पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

जब मध्यकर्ण-शोथ के साथ-साथ वाह्य कर्ण-शोथ भी रहता है तथा कर्ण-कुहर संकीर्ण हो जाता है, तब कर्णपटह का आँखों से निरीक्षण लगभग

असंभव हो जाता है तथा तीव्र मध्यकर्ण-शोथ का निदान निम्न तथ्यों पर आधारित होता है।

वाह्यकर्ण-शोथ में श्रवण-हानि उतना ज्यादा नहीं होती जितनी कि मध्यकर्ण-शोथ में। वाह्य शोथ में सबसे ज्यादा दाब-वेदना ट्रैगस में होती है, न कि मैस्टाइड प्रवर्ध में, जैसा कि मध्यकर्ण-शोथ में होता है। पूय आस्राव में श्लेष्मा का होना निश्चित तौर पर मध्य-कर्ण-शोथ की उपस्थिति को दर्शाता है।

छोटे शिशुओं में निदान करना बहुधा कठिन होता है जिसका कारण नन्हे रोगी की तरफ से सहयोग का अभाव होता है। ओटोस्कोपी तथा सावधानी से की गयी सामान्य परीक्षा आम तौर पर समस्या का समाधान कर देती है।

उपचार. सामान्य उपचार के तौर पर रोगी को बिस्तर पर ही रख कर पूरा आराम सुनिश्चित किया जाता है, साथ ही उसको ऐस्पिरिन, पिरामिडोन तथा सल्फोनामाइड मुँह से देते हैं। तेज दर्द तथा अनिद्रा होने पर वेरोनल तथा मार्फिन जैसे निद्रायक देने की जरूरत पड़ सकती है। अत्यन्त दर्द होने पर तथा कर्णपटह के काफी लाल हो जाने पर फिनोल-ग्लिसेरोल कर्ण-बूंद का प्रयोग करते हैं।

Rp. Acidi carbolici 0.3-0.5
Glycerini puri 10.0

निर्देश: दस बून्दों की उष्ण मात्रा कान में प्रति दिन तीन बार डालना तथा एक समय 10 मिनट तक रहने देना।

इसके बाद बूंद को रूई से सुखा लेना चाहिए ताकि कुहर-चर्म में क्षोभ न होने लगे। रोग शुरू होने के दो-तीन दिन बाद तक फिनोल-ग्लिसेरोल का उपचार चल सकता है। अगर पूय आ गया हो तो इन बूंदों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि जब फिनोल-ग्लिसेरोल सपूय द्रव्य में घुलता है तो उससे कार्बोलिक अम्ल का मोचन होता है, जिससे दग्ध होने की संभावना रहती है। शोथ-प्रक्रिया के तेज होने पर विशेष तौर पर जब मैस्टाइड प्रवर्ध का क्षोभ होता है, ठंडा उपचार शोथ के शुरू के दिनों में दिया जाता है। एक दुहरे तौलिए से बर्फ की थैली को ढक कर मैस्टाइड प्रवर्ध पर थोड़ी-थोड़ी देर पर कुछ घंटों तक प्रति दिन रखते हैं।

ठंडक वाहिकाओं की परावर्तन ऐंठन कर देती है, तीव्र शोथ को सीमित

कर देती है और बहुधा मैस्टाइड प्रवर्ध में आरंभमान शोथ का वृद्धिरोध कर देती है। ठंड का वेदनाहर प्रभाव उष्ण सम्पीड से भी ज्यादा होता है। हालांकि बाद में या ठंड के प्रति असहिष्णुता की हालत में उपचार उष्णता के द्वारा होता है। इस उपचार में कान में सम्पीड के प्रयोग, या गर्म पानी के बोतल द्वारा या नीला या सोलूक्स लैंप के द्वारा उष्णता पहुंचायी जाती है। रोग के पहले ही दिन नाक में वाहिका-संकोचक तथा एन्टिसेप्टिक बूंद जैसे 3 प्रतिशत इफिड्रीन घोल या 1-2 प्रतिशत प्रोटारगोल घोल डालते हैं।

अगर इस उपचार के 2-3 रोज के बाद शोथ-लक्षण खत्म नहीं हों तथा बुखार तेज बना रहे तो कर्णपटह का छिद्रण करते हैं, ताकि पूय निकल सके और उपद्रव से बचा जा सके। पारवेधन के संकेत पर विचार करते समय रोगी की सामान्य अवस्था अत्यन्त महत्व की होती है, जबकि रोग की अवधि उससे कम महत्व की। ऐसी स्थिति में जब कान में लगातार और तेज दर्द बना हुआ हो तथा बुखार 38° सें० या उससे ज्यादा हो, पारवेधन तुरंत आवश्यक हो जाता है, भले ही कर्णपटह की अतिरक्तता उतनी स्पष्ट न हो। पारवेधन के स्पष्ट संकेतों के क्षेत्र को विस्तृत बनाया जाना चाहिए, ताकि ऐसी हालतों में भी, जब पहले पेनिसिलिन या अन्य प्रतिजीवी उपचार दिया जा चुका हो तथा अगर कर्ण-शोथ की धीरे-धीरे, पर लगातार चलने वाले पथ में काफी श्रवण हानि को नोट किया जा चुका हो, इसे सम्पन्न किया जा सके। यह ज्यादा अच्छा होगा अगर पारवेधन करने का जिम्मा किसी विशेषज्ञ को सौंपा जाये। पर यह काम कोई चिकित्सक या चिकित्सा सहयोगी, जिसे ओटोस्कोपी में पर्याप्त अनुभव हो, कर सकता है।

मीजिल्स, इन्फल्यूएंजा तथा स्कार्लेट ज्वर जैसे संक्रामक रोगों की उपस्थिति में होने वाले तीव्र मध्यकर्ण-शोथ में शुरू में ही पारवेधन की जरूरत पड़ती है तथा इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि रोग कब शुरू हुआ है। तानिका-क्षोभ के लक्षण, जो बहुधा छोटे बच्चों में दिखाई पड़ते हैं, तुरंत मैरिंजोटोमी के लिये निश्चित संकेत होते हैं। अच्छी तरह प्रकाशित करके और सीधे प्रेक्षण में रख कर कर्णपटह के उभार पर पारवेधक सूचिका से (चित्र 22 जिसे मैरिंजोटोमी छुरिका के नाम से भी जाना जाता है) छेदन करते हैं तथा नीचे की तरफ कर्णपटह की पश्च चौथाई में ले जाते हैं (चित्र 23-24)। आम तौर पर शस्त्रकर्म के तुरन्त या थोड़ी देर बाद सीरम-सपूय या सपूय
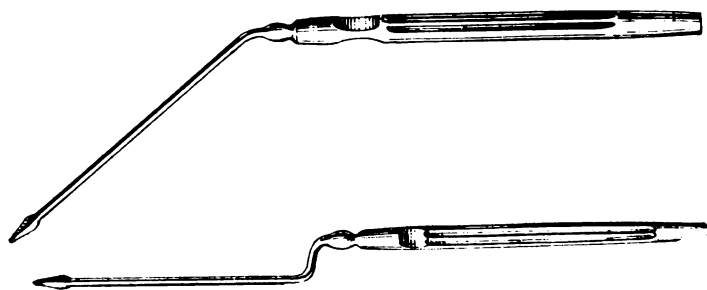
चित्र 22. मैरिंजोटोमी छुरिका

आस्राव होता है तथा कर्णपटह के उभार तथा तनाव में कमी होती है (रंगीन तालिका I चित्र 2b)। बाद की देखभाल में मध्यकर्ण की गुहाओं से पूय का अबाध निकास सुनिश्चित करना शामिल होता है। इसके लिए विसंक्रामित गाज की पट्टियां श्रवण-नाल में तबतक घुसाते हैं, जबतक वे कर्णपटह के संपर्क में न आ जायें (चित्र 25)। पहले इन कर्ण टैम्पोनों को दिन में 6-8 बार बदलते हैं, फिर जब पूय आस्राव में कमी होने लगती है, सिर्फ 3-4 बार।

घने श्यान या काफी अधिक निःस्राव को उष्ण 4 प्रतिशत बोरिक अम्ल घोल लेकर कर्ण-डूश के द्वारा साफ करते हैं। नलिका को तब रूई लगे हुए एक पतले प्रोब से सुखा दिया जाता है। कान को प्रतिदिन एक या दो बार उचित नियमों के साथ सिरिंज किया जा सकता है। घोल का
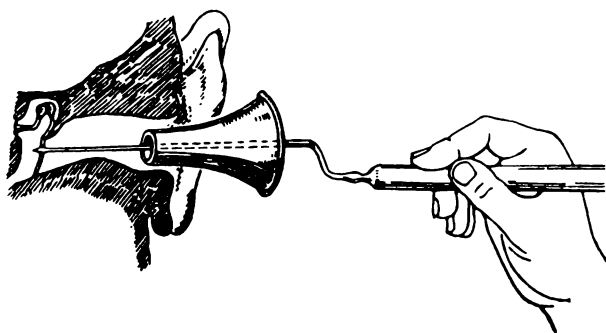
चित्र 23. कर्णपट्टह का पारवेधन

ताप तकरीबन 37° सेंटीग्रेड होना चाहिए। कर्णपाली को ऊपर व पीछे की ग्रोर खींच कर डूश को रबड़ कंद के साथ निम्न दाब पर दिया जाता है ग्रौर इसकी धारा को श्रवण-कुहर की पश्च भित्ति की ग्रोर रखा जाता है।

चित्र 24. कर्णपटह के छेदन का स्थान

वहिर्श्रवण-कुहर में पूय रक्ताधिक्य से इसके त्वचा के ग्रस्तर में शोथ व सूजन हो सकती है जिससे मध्य-कर्ण के पूय-ग्रास्राव में ग्रवरोध पैदा हो सकता है।
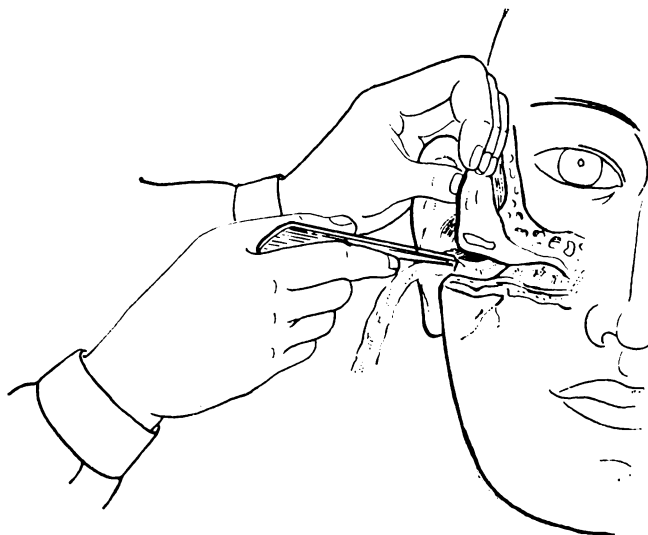
चित्र 25. कुहर में जाली पट्टी का निवेशन

पारवेधन के बाद शरीर का तापक्रम या तो एकदम गिरता है या धीरे-धीरे, जैसे कि इन्फ्लूऐन्जल कर्ण-शोथ में होता है, और रोगी की सामान्य स्थिति में सुधार के साथ-साथ दर्द भी ठीक हो जाता है।

आस्राव, जो पहले प्रचुर व सपूय होता है, धीरे-धीरे कम होकर सीरम-सपूय हो जाता है और फिर श्लेष्मावस्था में आकर विलुप्त हो जाता है। कर्णपटह का वेधन तिरोहित हो जाता है, श्रवण बेहतर होकर सामान्यावस्था में आ जाता है। कर्णपटह के तिरोहित होने के बाद कुछ रोगियों में श्रवण को बेहतर बनाने के लिए यूस्टेशियन नली की स्फीति की जाती है।

तीव्र मध्यकर्ण-शोथ में काफी देर तक वेधन रहने के या इसके चिरकारी होने के दोनों मामले अब पहले से काफी कम पाये जाते हैं और ये ज्यादातर संक्रामक रोगों के बाद होने वाले मध्यकर्ण-शोथों में होते हैं। इसके अलावा, जनसंख्या के स्वास्थ्य में सुधार के लिये निरोधक उपायों और नयी सल्फोनामाइड व प्रतिजीवी दवाइयों की वजह से तीव्र प्रकार के गंभीर कर्ण-शोथ की दर में काफी कमी आयी है।

ऊपर वर्णित उपचार युवा व मध्य आयु के रोगियों को मंद लक्षणों वाले तीव्र कर्ण-शोथ से स्वस्थ करने के लिए पर्याप्त है।

इसके साथ अन्य रोगों वाले मरीजों, छोटे बच्चों व ऐसे रोगियों का, जिनको संक्रामक रोगों के साथ तीव्र कर्ण-शोथ हो, उपचार सल्फोनामाइड व प्रतिजीवी औषधियों के साथ करना चाहिए, ताकि संभावित उपद्रवों को रोका जा सके। स्ट्रेप्टोसाइड व सल्फाडिमेजिन को वयस्कों में 0.5 से 1.0 ग्राम की मात्रा में चौबीस घंटों में पांच से छः बार मुँह में पांच या छः दिन तक दिया जाना चाहिए जबतक कि तीव्र कर्ण-शोथ के लक्षणों के रुकने के चिन्ह नहीं मिल जायें।

पेनिसिलिन व स्ट्रेप्टोमाइसीन को कर्ण-बिन्दुओं के रूप में या अंतर्पेशी सूइयों के रूप में दिया जाना चाहिए। श्रवण-कुहर के पूय को साफ कर इसे 10 000 से 50 0C0 यूनिट प्रति मि० लि० की मात्रा वाली पेनिसिलीन या स्ट्रेप्टोमाइसिन के घोल से भरा जाना चाहिए। तुंगिका पर पर्याप्त दाब रख कर घोल को मध्यकर्ण-गुहा व यूस्टेशियन नली में डालना चाहिए।

प्रतिजीवी दवाइयों के स्थानीय व अंतर्पेशीय औषधि-प्रयोगों का संयुक्त उपयोग अधिक प्रभावकारी सिद्ध हुआ है। वयस्क रोगियों को पेनिसिलिन के अंतर्पेशी इंजेक्शनों को 100 000 से 200 000 यूनिटों की मात्रा

में 5 या 6 बार चौबीस घंटों में क्रमिक अन्तराल पर दिया जाता है। छः, आठ या दस दिनों का ऐसा उपचार इस प्रक्रिया के विकासरोध के लिए पर्याप्त होता है। इस रोग से स्वस्थ होने के लक्षण हैं—रोगी की सामान्य अवस्था में सुधार, पूय के आस्राव का उचित उपचार के साथ दूसरे या तीसरे दिन रुकना, कर्णपटह का तीसरे या चौथे दिन तिरोहित होना व श्रवण का पुनर्स्थापन होना। लाभदायक परिणाम, खासकर श्रवण का पुनर्स्थापन, डिंबवाहिनी की स्फीति से सुगम होता है इसलिए शोथ-लक्षणों और पूय-आस्राव की रोकथाम के तुरन्त बाद इसको करना चाहिए। यदि जरूरी हो, तो इसके पहले रक्ताधिक्यहरण व नासा-गुहा की सफाई की जानी चाहिए। प्रतिजीवी औषधियों के अभिभावी असर को भी ध्यान में रखना जरूरी है।

जिन रोगियों को पेनिसिलीन व स्ट्रेप्टोमाइसीन दिये गये हों उन्हें तीव्र मध्यकर्ण-शोथ के सभी लक्षण समाप्त होने के बाद भी चिकित्सा-प्रेक्षण में रखना चाहिए। श्रवण-हानि के अलावा सभी लक्षणों के तकरीबन समाप्त हो जाने, और रोगी की संतोषजनक सामान्यावस्था को, जो तीन-चार दिन के प्रतिजीवी औषधियों के उपचार के बाद देखा जाता है, कई बार गलती से उपचार रोकने का संकेत समझ लिया जाता है; इससे कभी-कभी गंभीर उपद्रवों के साथ पुनरावृति का खतरा रहता है।

रोग-निरोध. तीव्र मध्यकर्ण-शोथ की रोकथाम में संक्रामक रोगों व नासा और नासाग्रसनी के तीव्र और चिरकारी रोगों को नियंत्रित करना शामिल है। नासा और नासाग्रसनी की तीव्र विक्षतियों के जल्द उपचार के साथ पूरे शरीर को मजबूत बनाने से मध्यकर्ण के शोथों की संवृति कम हो जाती है।

## शिशुओं और छोटे बच्चों में तीव्र मध्यकर्ण-शोथ

शैशव में और प्रारंभिक बचपन में तीव्र कर्ण-शोथ की दर वयस्क आयु से काफी ज्यादा होती है। वयस्कों के विपरीत बच्चों में, खासकर जीवन के प्रारंभिक महीनों में, केन्द्रीय तंत्रिका-प्रणाली की क्रियात्मक और प्राकृतिक विशेषताओं की वजह से बाहरी वातावरण में बदलावों के साथ अपर्याप्त अनुकूलनशीलता होती है। इस पूर्व-प्रवृत्ति के पीछे सामान्य शारीरिक प्रतिरोध को कम करने वाले सभी रोग हैं। गोद में रहने वाले शिशुओं

में ये पोषण और चयापचयी विक्षोभ हैं जबकि बड़े बच्चों में संक्रामक रोग, जैसे स्कार्लेट ज्वर, मिजिल्स और इन्फ्ल्यूएंजा अधिकतर शिशुओं में मध्य-कर्ण-रोगों के अतिआघटन का संबंध उनकी मध्यकर्ण की गुहा में पाये जाने वाले भ्रूण-श्लेष्माभ ऊतकों के अवशेषों से होता है, जो वयस्कों से छोटी व चौड़ी यूस्टेशियन नली से घुसने वाले संक्रामक कीटाणुओं के द्वारा शोथित होता है। बच्चे का पीठ के बल लेटे रहना और कफोत्सारण प्रतिवर्त, जो उसकी तीव्र नासा और नासाग्रसनी के रोगों में गला साफ करने में सहायता करता है, का अभाव कीटाणुओं के यूस्टेशियन नली में प्रवेश को सरल बना देता है। ऐडिनाइड अतिविकसन और ग्रसनी टोंसिल के शोथ (ऐडिनाइडाइटिस) बड़े बच्चों में आवर्ती कर्ण-शोथ के कारण बन जाते हैं।

रोग-लक्षण. शिशुओं में तीव्र कर्ण-शोथ कई बार तबतक बिना पता चले विकसित होता रहता है, जबतक कि कान में पूय-आस्राव पैदा नहीं हो जाता। हल्के रोग में बच्चा बिना किसी स्पष्ट कारण के बेचैन रहता है, ज्यादा गहरे रूप में, खासकर सपूय रूप में वह रोता और चिल्लाता है और उसकी निद्रा भंग होती रहती है। बच्चा सिर घुमाता रहता है, रोगी कर्ण को तकिये पर रगड़ता रहता है, कान खींचता है और स्तनपान से इन्कार कर देता है या लेकर छोड़ देता है क्योंकि चूषण व निगरण से उसे अधिक दर्द होता है। बच्चा रोगी कान की ओर सोने पर कम बेचैन रहता है, क्योंकि वह इस स्थिति में गर्म हो जाता है।

मध्यकर्ण के शरीर-विज्ञानी और आकृति के नक्शे ऐसे हैं कि कर्णपटह-कला में सपूय शोथ होने पर भी थोड़ा ही परिवर्तन होता है। इसके प्रथम चिन्ह हैं: प्रकाश प्रतिवर्त का विलुप्त होना, वाह्य त्वचा के मसृणन की वजह से कर्णपटह का चमक खो देना, मैलियस के हस्तक के साथ अति-रक्तता। बाद में कर्णपटह की रूपरेखा समाप्त हो जाती है और एक उभार पैदा हो जाता है। यह ध्यान में रखना जरूरी है कि बच्चों में अतिर-क्तता उनके जोर से चिल्लाने से भी हो सकती है। इसलिए शोथ के अन्य चिन्हों के बिना यह लक्षण हमेशा मध्यकर्ण के रोगों का संकेत नहीं होता।

एक प्रमुख लक्षण है तुंगिका पर दाब से वेदना पैदा होना और तीव्रता से प्रारंभ होने वाला 40 डिग्री सेन्टीग्रेड या उससे ऊपर का ज्वर। अल्प-वृद्धि, रिकेट्स और अन्य गंभीर रोगों वाले बच्चों में तीव्र कर्ण-शोथ हल्के ज्वर या बिना ज्वर के भी हो सकता है। गंभीर रोगियों में तानिका-लक्षण, जैसे कड़ी ग्रीवा, वमन, कोमा और आक्षेप भी पाये जाते हैं जो

सामूहिक रूप से मस्तिष्कावरण के क्षोभ कहलाते हैं। ये पारवेधन या स्वतः कर्णपटह-वेधन के पश्चात शीघ्र कम हो जाते हैं। स्तनपोषित बच्चों में तीव्र कर्ण-शोथ ग्रांत्र-मादकता की तरह लगातार वमन, प्रवाहिका ग्रौर वजन में कमी ग्रादि पैदा करता है। ये वास्तविक कारण कर्ण-शोथ से ध्यान हटा सकते हैं। बाद में कर्णपटह के वेधन, कान पूय-ग्रास्राव के प्रकट होने ग्रौर बच्चे की सामान्यावस्था में ग्रागामी परिवर्तन से मादकता का वास्तविक कारण स्पष्ट होता है।

रोग-प्रवाह. वास्तव में कर्ण-शोथ का मार्ग बच्चे की सामान्यावस्था पर निर्भर है। जिन बच्चों में ग्रल्प वृद्धि, रिकेट्स ग्रौर निस्रावी-प्रवृत्ति की वजह से ग्राकारिक विक्षोभ हो सकते हैं, उनमें रोग लम्बा हो जाता है ग्रौर ग्रावृत्तियां व उपद्रव हो सकते हैं। हल्के लक्षण वाले रोगियों में 7 से 10 दिन में सुधार हो जाता है। बच्चों में गंभीर मामलों में कर्ण-शोथ में वही ग्रवस्थाएँ देखी जाती हैं जो कि वयस्कों में। स्वतः पूय-ग्रास्राव ग्रपेक्षाकृत देरी से होता है। संक्रामक रोगों, जैसे कि स्कार्लेट ज्वर, मिजिल्स ग्रौर इन्फ्ल्यूएंजा के पश्चात होने वाले कर्ण-शोथ का पथ गंभीर होता है ग्रौर उसमें शीघ्र ही कर्ण-पटह का व्यापक नाश हो सकता है।

चूंकि तीव्र कर्ण-शोथ शिशुग्रों में कभी-कभी पर्याप्त लक्षण नहीं प्रकट करता, इसलिए कभी-कभी इसका निदान कठिन हो जाता है। यदि बच्चे को तेज ज्वर हो या उसकी सामान्य ग्रवस्था गंभीर हो तो सामान्य रोग के लक्षणों के ग्रभाव में भी ग्रोटोस्कोपी करनी चाहिए।

उपचार. बच्चों में तीव्र मध्यकर्ण-शोथ का उपचार वयस्कों की तरह ही किया जाता है। यह ध्यान में रखना ग्रावश्यक है कि बालकों में स्वतः पूय-ग्रास्राव देरी से हो सकता है, जबकि ऐसा हो सकता है कि स्वप्रत्यय लक्षण कान की विकार-ग्रवस्था से मेल न खायें। इसलिए पारवेधन के संकेतों के विषय में निर्णय रोगी की सामान्य ग्रवस्था को ध्यान में रख कर लिया जाना चाहिए। यह ध्यान में रखते हुए कि कर्णपटह-कला में थोड़े से परिवर्तन भी कई बार सपूय शोथ के द्योतक होते हैं।

तरल पेट्रोलेटम के गर्म सम्पीड कर्ण-शोथ वाले छोटे बच्चों के कान पर लगाने चाहिए, चूंकि ग्रल्कोहल-सम्पीड त्वचा में क्षोभ लाते हैं। भौतिक चिकित्सा की भी सलाह दी जाती है, जैसे नीले या "सोलूक्स" लैम्प से ताप का प्रयोग। नाक में 3 प्रतिशत ब्रोरिक ग्रम्ल घोल को एड्रेनालिन (1 बूंद एड्रेनालिन प्रति मि० लि० घोल) बूंदों का बिन्दुपातन किया

जाना चाहिए। कर्णपटह वेधन के पश्चात 0.5 प्रतिशत जिन्क घोल की बूंदों का रोगी कान में प्रयोग करना चाहिए।

वाह्य श्रवण-नाल की बारम्बार सावधानीपूर्वक सफाई वाह्य कर्ण-शोथ के निरोध के लिए आवश्यक होती है। रोग की गंभीर स्थितियों में सबसे असरदार उपाय है–पेनिसिलीन का अंतर्पेशी इंजेक्शन 100 000 यूनिट की मात्रा में पांच या छः दिन तक देना। इसे नियमित अन्तरालों पर चौबीस घंटों में छः से आठ बार दिया जाना चाहिए।

रोग-निरोध. तीव्र कर्ण-शोथ के निरोध में सम्मिलित हैं: पूरी देह को मजबूत बनाना और देह की प्रतिरोध क्षमता में वृद्धि करना। नाक और नासाग्रसनी की शोथ-प्रक्रियाओं के उपचार और संक्रामक रोगों के निरोध पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

## संक्रामक रोगों में तीव्र मध्यकर्ण-शोथ

कई तीव्र संक्रामक रोगों का सबसे अधिक सामान्य उपद्रव है: मध्यकर्ण का तीव्र और कभी-कभी सपूय शोथ। हाल ही तक तीव्र संक्रामक रोगों में मध्यकर्ण-शोथों की दर, खासकर बच्चों में, काफी अधिक थी। इन रोगों में स्कारलेट ज्वर, मीजिल्स, इन्फ्लूएंजा, टाइफाइड और डिफथिरिया शामिल हैं। उदाहरण के तौर पर स्कारलेट ज्वर के फैलने पर सपूय कर्ण-शोथ की संवृति 17 से 27 प्रतिशत तक थी। आज स्कारलेट ज्वर के पश्चात होने वाले कर्ण-शोथों की संवृति बच्चों के अस्पतालों में घटकर एक प्रतिशत का अंश हो गया है। यह कई रोग-निरोधी उपायों, जैसे सभी छुतहे रोगियों को अस्पताल में रखने, विशेषज्ञों द्वारा रोग-निरोधी परीक्षण करने और समय पर प्रतिजीवी उपचार करने से संभव हो पाया है।

तथापि, अभी भी तीव्र सपूय कर्ण-शोथ के अलग-थलग मामले दुर्बल देह-प्रतिरोध वाले या साथ में संक्रामक रोगों वाले रोगियों में पाये जाते हैं जिनमें से कई अपना गंभीर प्रवाह भी अपनाते हैं।

संक्रामक रोगों के कारण होने वाला तीव्र कर्ण-शोथ द्वितीयक कहलाता है, जबकि स्वस्थ रोगियों में होने वाला कर्ण-शोथ–प्रारंभिक। जब तीव्र कर्ण-शोथ किसी संक्रामक रोग के शुरू में ही पाया जाता है तो उसे रक्तजन्य मार्ग या रक्त के द्वारा फैलने वाले आकारिक विक्षोभ का स्थानीय लक्षण समझना चाहिए। दूसरी ओर, ग्रसनी में प्रचुर शोथ के पश्चात, जैसे

परिगलित ऐन्जाइना में होने वाला तीव्र कर्ण-शोथ, निस्संदेह यूस्टेशियन नली द्वारा घुसने वाले रोगजनक कीटाणु से होता है।

हाल तक, संक्रामक रोगों के फलस्वरूप, विक्षोभी देह-प्रतिरोध से होने वाले कर्ण-शोथ का मार्ग सामान्य कर्ण-शोथ की अपेक्षा अधिक गंभीर होता था; अधिकतर पूर्ण सुधार नहीं होता था और कर्ण रोग चिरकारी रूप धारण कर लेता था तथा कर्णपटह-वेधन के हठी अविकसन, लगातार पूय-आस्राव और श्रवण हानि देखे जाते थे।

इस प्रकार के कर्ण-शोथ के दो रूप हैं—एक, जो कि सामान्य कर्ण-शोथ से मिलता-जुलता है और दूसरा, अधिक गंभीर रूप है जिसमें संक्रामक रोगों वाले लक्षण देखे जाते हैं।

स्कारलेट ज्वर के कारण अक्सर होने वाले परिगलित कर्ण-शोथ का प्रवाह गंभीर होने पर इसके लक्षण स्कारलेट ज्वर शुरू होने के कुछ पहले ही दिखने लगते हैं। परिगलित कर्ण-शोथ के साथ ग्रसनी और नासाग्रसनी में परिगलित शोथ-प्रक्रिया भी पायी जाती है। ज्वर और गंभीर सामान्य अवस्था के कारण स्कारलेट ज्वर का प्रारम्भ बिना ध्यान में आये रह जाता है और कभी-कभी पूय-आस्राव ही उपद्रव का संकेत करता है। श्लेष्मा में रक्तमय घनास्रता से होने वाले शोथ-लक्षणों के साथ कर्णपटह और अस्थि का बढ़ता हुआ व्यापक नाश भी होता है और कभी-कभी मध्यकर्ण-गुहा की अस्थि-भित्तियों में परिगलन और बाद में पृथकभवन भी देखा जाता है। कभी-कभी पृथकभवन के फलस्वरूप सपूयता आंतर कर्ण में पहुंचकर भ्रमि, उत्क्लेश और वमन के गहन रोग-लक्षण और अंततः पूर्ण बधिरता भी ला सकती है। रोग के प्रारम्भ में ही पूय-आस्राव दुर्गन्धपूर्ण होता है। परिगलन के फैलोपी नलिका में फैलने से आनन अंगघात हो सकता है।

तीव्र कर्ण-शोथ संक्रामक रोगों में कई बार कर्ण-मूल शोथ पैदा करता है और यह चिरकारी सपूय कर्ण-शोथ का सामान्य कारण है। परिगलित कर्ण-शोथ में सुधार और श्रवण के पुनर्स्थापन के केस नहीं के बराबर होते हैं। आज स्कारलेट ज्वर के प्रतिजीवी उपचारों के कारण उसके उपद्रवों, जिनमें कर्ण-शोथ भी सम्मिलित हैं, की आवृत्ति और गंभीरता में काफी कमी आयी है।

मीजिल्स में तीव्र कर्ण-शोथ काफी पाया जाता है और इसका प्रवाह नियमतः स्कारलेट ज्वर जैसा गंभीर नहीं होता।

पर कृश व्यक्तियों तथा जिन्हें सहवर्ती संक्रमण वाले लोगों को परि-

गलित प्रकार के मीजिल्स कर्ण-शोथ हो सकते हैं जिनके गंभीर लक्षण होते हैं।

कर्ण-शोथ के इन्फ्ल्यूएंजा वाले रूपों में कर्णपटह और कर्ण-कुहर के अस्थि भाग पर रक्तस्रावी निस्राव पाया जाता है और इसे अक्सर रक्तमय अंशों से भरे छोटे उभारों के रूप में देखा जा सकता है। कर्ण-पटह के वेधन के पश्चात सरक्त आस्राव कुछ ही दिनों में पूय में परिवर्तित हो जाता है। कान में और उस ओर वाले सिर के आधे भाग में गंभीर तंत्रिकार्ति वेदना कर्णपटह-वेधन के पश्चात भी तत्काल समाप्त नहीं हो जाती।

लेबीरिंथ में और श्रवण-तंत्रिका के प्रकाण्ड में रक्तस्राव हो सकता है जो कि कर्णपटह-कला में पाये जाने वाले बिन्दुकित रक्तस्रावों के समान होता है। ध्वनिक तंत्रिका में विषालु प्रभाव से गहरी श्रवण-हानि हो सकती है।

उपचार. संक्रामक रोगों से उत्पन्न कर्ण-शोथ का उपचार अधिकांश रोगियों में पर्याप्त मात्रा में अंतर्पेशी पेनिसिलीन इन्जेक्शन से किया जाता है। सुधार के प्रथम चिन्हों के प्रकट होने के बाद भी इस उपचार को चालू रखना चाहिए। कर्णपटह-वेधन और पूय-आस्राव होने पर स्थानीय उपचार सामान्य कर्ण-शोथ की तरह ही किया जाता है। पेनिसिलीन-उपचार से पूर्व इस प्रकार के कर्ण-शोथों में कई बार कर्णमूल-शोथ होकर उपद्रव हो जाते थे, जिसके लिए फिर शल्यक्रिया के हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ती थी।

आज स्कारलेट ज्वर और मीजिल्स में पेनिसिलीन के व्यापक प्रयोग से सपूय कर्णशोथीय उपद्रवों की दर घट कर एक प्रतिशत से कम हो गयी है।

रोग-निरोध. तीव्र संक्रामक रोगों के रोग-निरोधी उपायों में रोग के प्रारंभ में ही पार्थक्य के अलावा सावधानीपूर्ण सामान्य उपचर्या और प्रतिरोधी गरारों के साथ नाक में पेनिसिलीन बून्दें डालना आदि, नाक और गले के निरोधी उपचार आते हैं।

## कर्णमूल-शोथ

कर्णमूलकोशिकीय तन्त्र का तीव्र शोथ तीव्र कर्ण-शोथ के सबसे ज्यादा पाये जाने वाले उपद्रवों में से है। मध्यकर्ण-गुहा का कोई भी तीव्र शोथ कम या ज्यादा लक्षणों के साथ सामान्यत: मैस्टाइड प्रवर्ध में पहुँच जाता

है। यह मध्यकर्ण-गुहा के कोटर से निकट सम्बन्ध और उसके द्वारा मैस्टाइड प्रवर्ध की वायवी कोशिकाओं के साथ निकट सम्बन्ध के कारण संभव है। देह की प्रतिक्रिया के कारण मध्यकर्ण-गुहा और मैस्टाइड कोशिकाओं, दोनों में इस प्रक्रिया का उत्क्रमण हो सकता है और पूर्ण सुधार संभव है।

अन्य संक्रामक मूल की वैकृत-प्रक्रियाओं की तरह ही कर्णमूल-शोथ का विकास संक्रमण की उग्रता पर इतना निर्भर नहीं करता जितना कि देह की उसके साथ प्रतिक्रिया पर, यानी देह की सामान्य अवस्था और प्रतिक्रियाशीलता पर।

तीव्र संक्रामक रोगों के बाद होने वाले कर्ण-शोथों, साथ ही घटे हुए देह-प्रतिरोध के कारण विकारी प्रक्रिया उत्क्रमी मार्ग नहीं भी अपना सकती और तब रोगी की स्थिति में सुधार नहीं होगा। इसके अलावा, शोथ-प्रक्रिया अस्थि ऊतक पर भी आघात कर सकती है, मैस्टाइड प्रवर्ध की वायवी कोशिकाओं के बीच पतली भित्तियों को तोड़ सकती है और पूय और कणांकुरों से पूर्ण एक बड़ी गुहा बना सकती है। आन्तरिक कोशिकीय तंत्र के और नाश से मैस्टाइड प्रवर्ध के वाह्य तल पर नालव्रण या अवपर्यास्थि-कला की विद्रधि हो सकते हैं। मैस्टाइड कोशिकाओं की आन्तरिक और ऊर्ध्व अस्थि-भित्तियों के नाश से अंतर्कपाल उपद्रव, जैसे अवग्रह शिरानाल की घनास्रता, मस्तिष्क या अनुमस्तिष्क में विद्रधि और तानिका-शोथ हो सकते हैं।

कर्ण-मूलशोथ ज्यादातर तीव्र कर्ण-शोथ के बाद तीसरे सप्ताह के अन्त में देखा जाता है। ये अवधियां, हालांकि निश्चित नहीं हैं और किसी भी दिशा में भिन्न हो सकती हैं।

रोग लक्षण और प्रवाह. कर्णमूल-शोथ का एक विशिष्ट चिन्ह है मैस्टाइड क्षेत्र में वेदना, जो तीव्र कर्ण-शोथ के आरम्भ के तीन चार सप्ताह बाद महसूस होती है। ज्यादातर स्वतः उत्पन्न होने वाली यह वेदना कई बार रोगी को रात्रि में तंग करती है और मैस्टाइड सिरा तथा तल पर दाब से बढ़ जाती है। कर्णमूल-शोथ का महत्वपूर्ण चिन्ह है वाह्य कर्ण-कुहर का सिकुड़ जाना, जिसका कारण है इसके अस्थि भाग की पश्च-ऊर्ध्व भित्ति का फूल जाना, साथ के मैस्टाइड प्रवर्ध के ऊपर की त्वचा और ऊतक में शोफ होना और अवपर्यास्थिकला विद्रधि का बनना। इस विद्रधि के बनने से पूर्व मैस्टाइड त्वचा में शोथीय अंतःसंचरण व त्वग्रक्तिमा होती है और पेस्टी कोमलता आ जाती है। पश्च उत्कोष्ठ की विद्रधि का संकेत
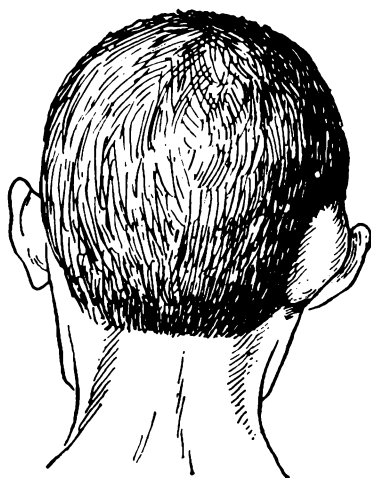
चित्र 26. प्ररूपी कर्णमूल-शोथ में कान के पीछे सूजन

स्पर्शतरंग और उत्कोष्ठ के पीछे के त्वचा पूटक के अभाव, और उसके आगे नीचे विस्थापित होने से मिलता है (चित्र 26)।

अवपर्यास्थिकला की विद्रधि के फटने से त्वचा में नालव्रण होता है जो कोटर की ओर जाता है। बचपन में, जब शंखास्थि के अलग-अलग भागों में सम्बन्ध अपूर्ण होता है, तब सूजन और पश्च उत्कोष्ठ विद्रधि की ज्यादा संभावना रहती है। वयस्कों और वृद्ध रोगियों में, जिनमें प्रान्तस्था-स्तर ज्यादा कड़ा रहता है, इस विद्रधि को बहुत कम देखा जाता है। विशेष प्रकार के कर्णमूल-शोथ का भी विकास हो सकता है, जो मैस्टाइड वायवीकरण और कोशिकाओं के विशेष समूह की अभिरुचि-सपूयता पर निर्भर करता है। शीर्ष-कोशिकाओं की सपूयता में पूय मैस्टाइड सिरा की आन्तरिक भित्ति को तोड़ कर नीचे उरोजत्रुक कर्णमूलिका-पेशी में फैल जाती है। तब एक भारी वेदनापूर्ण सूजन मैस्टाइड प्रवर्ध के शिखर से ग्रीवा के पार्श्व में नीचे आती है। (शिखर या बेजोल्ड कर्णमूल-शोथ)। गण्ड-प्रवर्ध के मूल में कोशिकाओं के एक समूह की सपूयता से उत्कोष्ठ के आगे और ऊपर पहले सूजन और फिर विद्रधि हो सकती है; इसे गंड-कर्णमूल-शोथ कहते हैं।

रोगी को रोग महसूस होता है और वह सिरदर्द, अनिद्रा और भूख न लगने आदि की शिकायत करता है। ताप, जो वेधन के पश्चात घट जाता

है, कई बार फिर बढ़ कर 38.5° सेंटीग्रेड तक पहुँच जाता है ग्रौर कई रोगी ग्रवज्वर से ग्रस्त रहते हैं। कर्णपटह काफी समय तक रक्ताधिक्ययुक्त ग्रौर फूला हुग्रा रहता है, कान से होने वाले ग्रास्राव में वृद्धि होती जाती है ग्रौर यह स्थूल प्रचुर पूय में परिवर्तित हो जाता है।

निदान. वाह्य लक्षणों, जैसे ग्रवपर्यास्थिकला की विद्रधि, के रहने पर कर्णमूल-शोथ का निदान ग्रपेक्षाकृत ग्रासान होता है। सबसे महत्वपूर्ण निदान-चिन्ह है कर्ण-कुहर की पश्च-ऊर्ध्व भित्ति का झोलदार होना। यही भित्ति मैस्टाइड कोटर की ग्रग्र-निम्न भित्ति भी होती है। व्यापक वायवीकरण में यह भित्ति पतली रहती है ग्रौर मैस्टाइड प्रवर्ध में सपूयता से यह पर्यास्थिकला में जल्दी फूल जाती है। कर्ण-कुहर के पीछे (कोटर-प्रक्षेपण के स्थान पर) मैस्टाइड प्रवर्ध पर दाब से तीव्र दाब-वेदना होना भी कर्ण-मूल-शोथ का द्योतक चिन्ह है। ज्यादातर चालनबधिरता पायी जाती है।

कर्णमूल-शोथ में प्रगति के साथ कभी-कभी कुछ मामूली लक्षण पाये जाते हैं। कर्णमूल-शोथ के ये ग्रसामान्य या गुप्त रूप देह के सामान्य ताप पर विकसित होते हैं; कर्णपटह ग्रछूता रहता है, पर हर हालत में इसमें श्रवण-तीक्ष्णता कम हो जाती है। हल्के लक्षणों के बावजूद इसमें काफी ग्रस्थि-विक्षतियां हो सकती हैं, खासकर कपाल गुहा को परिसीमित करने वाले गहरे क्षेत्रों में। इस प्रकार कर्णमूल-शोथों में कई बार ग्रंतर्कपालिक उपद्रव हो जाते हैं। रोगी की सभी शिकायतों ग्रौर विकारी प्रक्रिया की गतिशीलता के सावधानीपूर्वक विश्लेषण, साथ ही सहायक उपायों से पूर्ण शारीरिक परीक्षण से समय पर निदान स्थापित करने में काफी सहायता मिलती है। इन उपायों में एक्सरे-परीक्षण सम्मिलित है, जिससे कोशिकीय तंत्र के प्रकार, क्षेत्र ग्रौर मैस्टाइड प्रवर्ध में ग्रस्थिनाश के विषय में जानकारी हासिल की जा सकती है।

ग्रन्य तीव्र पूय-रोगों की तरह कर्णमूल-शोथों में रक्त में परिवर्तन ग्रक्सर प्रचुर श्वेतकोशिका बहुलता (10 000 से 12 000 प्रति घन मिलिमीटर), श्वेतकोशिका-गणन में बायीं तरफ रुझान, इयोसिनोफिल की संख्या में कमी या इसके पूर्णतः विलोप, उच्च लोहित कोशिका ग्रवसादन ग्रादि द्वारा लंछित होते हैं।

रोग-निरोध. कर्णमूल-शोथ का निरोध तीव्र सपूय मध्यकर्ण-शोथ के सही ग्रौर यथासमय उपचार में निहित है।

उपचार. कर्णमूल-शोथ का पहले संरक्षी उपचार (रोग ग्रागे न बढ़े,

स्वाभाविक रूप से ठीक हो जाये, इसके लिये उपचार) करना चाहिये। इसके असफल होने पर निदान की पुष्टि करके ही शल्य-क्रिया द्वारा हस्तक्षेप करना चाहिए।

संरक्षी उपचार में तीव्र कर्ण-शोथ के उपचार को देर तक देना सम्मिलित है। रोग के प्रारम्भ में पूय के स्वच्छेद निकास की व्यवस्था, ठंडा (बर्फ से) सेंक करने, पेनिसिलिन और मौखिक सल्फोनामाइड देने से विकारी प्रक्रिया पर अनुकूल प्रभाव पड़ सकता है। हालाँकि, इस सबके बावजूद शल्य-क्रिया से उपचार अक्सर जरूरी हो जाता है। नियमतः आपरेशन की तिथि निश्चित करना मुश्किल होता है। यदि तीव्र कर्ण-शोथ के प्रारम्भ के छः सप्ताह के पश्चात भी पूय-आस्राव होता रहे, जबकि कर्णमूल-शोथ के लक्षण बने रहें और यहाँ तक कि उग्र होते जायें तो शल्य-क्रिया आवश्यक हो जाती है। यदि अंततः कपाल-उपद्रव के लक्षण दिखायी देते हैं तो कर्ण-शोथ के प्रारम्भ के कुछ ही दिनों बाद आपरेशन जरूरी हो जाता है।

आज कर्ण-शोथ के प्रतिजीवी उपचारों के व्यापक प्रयोग से कर्णमूल-शोथ बहुत कम देखने में आता है। इसके अलावा, कर्णमूल-शोथ के कई रोगी, जिनके लिए पहले शल्य-क्रिया से हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ती थी, अब बड़ी मात्रा में पेनिसिलिन के अंतर्पेशी इंजेक्शन 100 000 यूनिट की मात्रा में 24 घंटे में छः-आठ बार 10, 12, या 14 दिनों तक दिये जाते हैं। बेहतर सामान्य अवस्था, पूय-आस्राव का रुक जाना, कर्णपटह-वेधन का भरना, या श्रवण के पुनर्स्थापन में प्रगति होना सुधार के लक्षण हैं। नली का वात्प्रधमन जल्दी से जल्दी किया जाना चाहिए। सुधार होना आवृत्ति न होने की गारंटी नहीं है। इसलिए रोगी को एक या दो महीने तक प्रेक्षण में रखना चाहिए और कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर एक्सरे करवा लेना चाहिए।

मैस्टाइड प्रवर्ध की शल्य-क्रिया, जिसे कर्णमूल-उच्छेदन के नाम से जाना जाता है, अधिकतर स्थानीय और कभी-कभी सार्वदेहिक संज्ञाहरण द्वारा की जाती है। उत्कोष्ठ के मूल में एक सेन्टीमीटर वक्रित छेद किया जाता है। यह छेदन कर्णपाली की ऊपरी कोर के स्तर के बिन्दु से मैस्टाइड सिरा तक जाता है। चोट की कोरों को रिट्रेक्टरों द्वारा हटा कर रखा जाता है ताकि मैस्टाइड की सतह परीक्षण में दिखायी दे। यदि स्याह नालव्रण दिखायी दे या अस्थि का कोमल भाग सामने आये तो आपरेशन उसी स्थान से प्रारम्भ करना चाहिए। एक नेत्र वाले प्रोब को नालव्रण

में निवेशित किया जाता है ताकि अस्थि में किस दिशा से प्रवेश किया जाये उसका संकेत मिल सके, क्योंकि तकरीबन सभी रोगियों में यह नालव्रण मैस्टाइड-कोटर तक चला जाता है। यदि नालव्रण नहीं हो, तो शल्य-क्रिया को निर्दिष्ट बिन्दुओं को देखकर प्ररूपी स्थान पर प्रारम्भ कर देना चाहिए। शल्य-क्रिया के क्षेत्र की ऊपरी सीमा है शंख-रेखा जो गण्ड-प्रवर्ध की ऊपरी कोर का पीछे की ओर प्रसार है। इस रेखा के ऊपर मध्य-कपाल-घात का फर्श है। अग्र सीमा है—वाह्य कर्णकुहर के ऊपर का कंट और इसकी पश्च भित्ति, जिसको कि छूना नहीं चाहिए, नहीं तो बाद में कर्ण-कुहर संकीर्ण हो जाता है। छेदन के शुरू में मैस्टाइड तल पर अस्थि के ठीक पीछे कंट पर आघात किया जाता है। प्रवर्ध को खोलने पर पूय काफी मात्रा में प्रवाहित हो सकता है और ढीले कणांकुर से भरी गुहा दर्शा सकता है; इनको आसानी से कोटर तक खुरच करके हटाया जा सकता है।

सभी क्षरणग्रस्त कोमल अस्थियों को सावधानीपूर्वक हटा देना चाहिए जबतक कि कोटर पूरी तरह अनावरित न हो जाये। कोटर की पूरी तरह प्रोबिंग करने से हवा के बुलबुले दिखते हैं जो इस बात का पता लगाने में सहायक होते हैं कि कोटर को पूरी तरह खोल दिया गया है या नहीं। एक पतला वक्रित प्रोब आसानी से कोटर होकर आगे की तरफ गुजर कर अधिमध्य कर्ण की दरी तक पहुंच जाता है; इसके साथ थोड़ा दर्द होता है। तब एक छोटे खुरचनी की सहायता से कोटर को थोड़ा चौड़ा कर देते हैं तथा बड़ी सावधानी से कणांकुर को पूरी तरह खुरच लेते हैं। अंत में शल्यकर्म की गुहा का पूरी तरह परीक्षण कर लेना आवश्यक होता है (चित्र 27), तथा गौज और फारसेप्स की सहायता से सभी उभरे हुए तथा खुरदरे अस्थिहिस्सों को ठीक-ठाक करके बचे हुए बाकी कणांकुरों तथा क्षरणग्रस्त और कोमल अस्थि के परिगलित भागों को हटा कर सामान्य अस्थि, जो कि अपनी कड़ेपन के कारण आसानी से पहचानी जा सकती है, तक पहुँचा जाता है।

इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि मैस्टाइड प्रवर्ध खोलते समय अवग्रस शिरा-खातिका, ड्यूरामाटेर, मध्यकपाल-खात, आनन-तंत्रिका तथा वाह्य अर्धवृत्तीय नलिका को कोई आघात न पहुंचे।

शस्त्रकर्मोत्तर उपचार. शस्त्रकर्म आम तौर पर घाव को सल्फोनामाइड या प्रतिजीवी पाउडर (पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन) से भर कर तथा
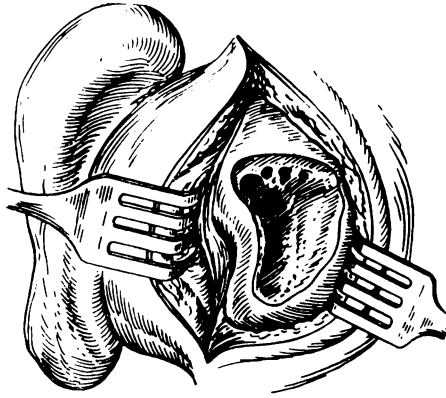
चित्र 27. मैस्टाइड प्रवर्ध को खोलना (एंट्रोटोमी)

टैम्पोन से हल्के से पैक कर के समाप्त करते हैं। अगर घाव में दर्द या बुखार नहीं हो तो सूखी ड्रैसिंग तथा पैकिंग को पहली बार कम से कम 6-7 रोज पर बदलते हैं। बाद में हर दिन या हर दूसरे दिन ड्रैसिंग तबतक की जाती है जबतक कणांकुर से गुहा फिर भर न जाये तथा एक मोटा क्षत-चिन्ह न बन जाये। शस्त्रकर्म के थोड़े दिनों बाद पूय का आस्राव बंद हो जाता है। पटह का छेद भर जाता है और श्रवण सामान्य हो जाता है।

हाल ही में छेदन से बने घाव को टाँकों से बन्द करने का तरीका प्रयोग में लाया गया है, जिसमें कोटर में एक पतला निकास छोड़ देते हैं। निकास के खुले अन्त का, जो ड्रैसिंग के ऊपर से होकर निकलता है, प्रयोग घाव में 2 मी० ली० की मात्रा में पेनिसिलीन घोल (प्रति मी० ली० 5000 इकाई) प्रति दिन दो बार डालने के लिए करते हैं। छेदन से बना घाव आम तौर पर 7-10 दिन में भर जाता है जिससे रोगी के अस्पताल में आवास की अवधि कम हो जाती है तथा उसकी कार्य क्षमता जल्दी वापस आ जाती है।

शस्त्रकर्मोत्तर देखभाल. शल्य क्रिया वाले रोगी को पूरा आराम देना तथा शस्त्रकर्म-पूर्व तथा शस्त्रकर्मोत्तर अवधि में उसकी चिकित्सीय देख-भाल करना अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। अतः कान की बीमारियों तथा उसके उपद्रवों वाले रोगियों की इस देख-भाल में चिकित्सालय-परिचारिकाओं की भूमिका को कम करके नहीं आंका जा सकता है। परिचारिका को

चाहिए कि वह रोगी के लिये पूर्ण विश्राम, शांति तथा आराम सुनिश्चित करे तथा यह देखे कि वह नियमित तौर पर खाना खाये और शौच सही हो। उसे यह देखना चाहिए कि रोगी शांति से सोये और डाक्टर के आदेश पर आवश्यकतानुसार उसे वेदनाहारी, निद्रापक तथा शामक औषधि दे, जो केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र पर अनुकूल प्रभाव डालते हैं।

अगर तेज सिर-दर्द, शरीर के तापक्रम में तेज वृद्धि, कपकपी, नाड़ी-दर में बढ़ाव या घटाव, मतली या वमन जैसे लक्षण दिखाई दें, तो परिचारिका का यह कर्त्तव्य है कि वह तत्काल मुख्य चिकित्सक को सूचित करे।

## मध्य-कर्ण का चिरकारी सपूय शोथ

चिरकारी सपूय मध्यकर्ण-शोथ के निम्नलिखित तीन स्थायी लक्षण हैं: कर्णपटह का वेधन, कान से लगातार या बीच-बीच में होते रहने वाला आस्राव, तथा विभिन्न स्तर की बधिरता।

तीव्र सपूय मध्यकर्ण-शोथ के चिरकारी पथ लेने के कारण सामान्य तथा स्थानीय मूल के हो सकते हैं।

सामान्य कारणों में तीव्र संक्रामक रोग आते हैं, जो मध्य-कर्ण में, जिसमें तीव्र कर्ण-शोथ की शुरूआत हो चुकी होती है, गहरे परिगलनकारी परिवर्तन पैदा करते हैं। इनमें स्कारलेट ज्वर, मीजिल्स तथा डिफ्थीरिया के साथ होने वाला परिगलनकारी किस्म का कर्ण-शोथ शामिल है। यक्ष्मा, मधुमेह तथा तीव्र पोषण-विक्षोभ आदि जैसे गंभीर सामान्य रोगों के साथ अरक्तता वाले तथा कृष्टता वाले रोगियों में कर्ण-शोथ बहुधा चिरकारी हो जाता है।

स्थानीय कारणों में नाक तथा नासा-ग्रसनी के सभी चिरकारी शोथ (जैसे एडिनाइड, चिरकारी प्रतिश्याय, परानासा विवरों के सपूय शोथ) शामिल हैं, जो यूस्टेशियन नलिका के द्वारा लगातार संक्रमण के फलस्वरूप मध्य-कर्ण की गुहा में पूयता कायम रखते हैं। कभी-कभी तीव्र मध्यकर्ण-शोथ का गलत तथा असंतोषजनक इलाज भी उसी चिरकारी रूप में बदल सकता है।

चिरकारी सपूय मध्यकर्ण-शोथ कई दशकों तक रोगी को बिना विशेष कष्ट दिये बना रह सकता है, क्योंकि उपद्रवों की अनुपस्थिति में यह कोई

दर्द या बुखार नहीं पैदा करता, तथा एक कान से सुनने वाले रोगी को एक हद तक श्रवण-हानि का पता भी नहीं चलता।

रोगी चिकित्सकीय सहायता के लिए आम तौर पर पूय आस्राव में वृद्धि की (जो चिरकारी पथ के अग्र हो जाने से होती है), साथ ही कान से दुर्गन्ध आने की, या अंतर्कपालिक उपद्रवों के चिन्हों की शिकायत लेकर आता है। दोनों कानों से ठीक सुनने वाले व्यक्ति में मुख्य शिकायत श्रवण में बाधा की होती है।

क्लीनीकल पथ तथा पूर्वानुमान के आधार पर चिरकारी सपूय शोथ को 2 प्रकारों में बाँटते हैं: कर्णपटह में केंद्रीय छेद के साथ कर्ण-शोथ और कर्णपटह में किनारी की ओर बने छेद के साथ कर्णशोथ।

केंद्रीय छिद्र एक विदार है जो चारों तरफ से कर्णपटह के अछूते किनारों से घिरा होता है। छिद्र को किनारे वाला तब कहते हैं जब वह श्रवण-कुहर के अस्थिय हिस्से तक जाता है या श्रापनेल की कला में स्थित होता है। छिद्र गोलाकार, दीर्घवृत्तीय मटर की आकृति का हो सकता है तथा विभिन्न आकारों का होता है।

चूंकि केन्द्रीय छिद्र वाली शोथ-प्रक्रिया में सिर्फ श्लेष्मा ही शामिल रहती है (दे० रंगीन तालिका II चित्र 1, 2, 3), अतः इसे सुदम्य या उपद्रवहीन भी कहते हैं। किनारी के वेधन के साथ का कर्ण-शोथ, जिसमें श्लेष्मा के साथ-साथ अस्थिय भित्तियां भी प्रभावित होती हैं, खतरनाक और उपद्रवपूर्ण प्रकार का माना जाता है।

किनारी के वेधन के साथ चिरकारी सपूय कर्ण-शोथ निश्चय ही ज्यादा खतरनाक रोग होता है। किनारी के वेधन आम तौर पर कर्णपटह की पश्च-अग्र चौथाई में या श्रापनेल के शिथिल भाग में होते हैं।

वेधन श्रापनेल-कला के ऊपर के छिद्रों में हो सकता है या इतना ज्यादा हो सकता है कि कर्ण-पटह का पता न चले। जैसा कि कर्णपटह के वेधन से पता चलता है, शोथ मुख्यतः मध्यकर्ण-गुहा के ऊपरी हिस्सों पर आक्रमण करता है, जिससे अधिमध्य कर्ण की दरी की वाह्य भित्ति का क्षरण के कारण नाश हो जाता है। अतः कर्ण-शोथ के इस प्रकार को अधिमध्य कर्ण का शोथ भी कहते हैं, जो उपद्रवहीन कर्ण-शोथ से, जिसे मध्यकर्ण-शोथ भी कहते हैं, अलग प्रकार का होता है।

क्षरणग्रस्त प्रक्रिया आम तौर पर कणांकुर, पालिप तथा कोलिस्टेटोमा जैसे उपद्रव पैदा करती है (रंगीन तालिका II, चित्र 4)।

कोलिस्टेटोमा अधिमध्य कर्ण वाले प्रकार के चिरकारी सपूय कर्ण-शोथ से पैदा होता है। यह किनारे के कर्णपटह-वेधन की स्थिति में प्रकट होता है। कर्णपटह के किनारे में विक्षति के द्वारा वहिर्कर्ण नलिका की वाह्य त्वचा अधिमध्य कर्ण की दरी तथा मैस्टाइड कोटर में अतिवृद्धि बनाती है। शृंगीकोशिकाओं के लगातार विशल्कन तथा मध्यकर्ण-गुहाओं में उनके जमा होने से एक सुगठित उजले रंग की लुगदी, जिसे कोलिस्टेटोमा कहते हैं, बनती है। यह लुगदी बढ़ती ही जाती है और इसका दबाव चारों ओर की अस्थिय भित्तियों को तोड़ सकता है। यह नाश ऊपर की तरफ मैस्टाइड प्रवर्ध की तरफ बढ़ सकता है तथा अन्दर की तरफ कपाल-गुहा में ड्यूरा माटेर, मध्य तथा पश्च कपाल-खात, अवग्रह साइनस तथा साथ ही वाह्य अर्धवृत्तीय नलिका तथा आनन-तंत्रिका तक पहुंच सकता है। मध्यकर्ण-शोथ के अचानक बढ़ने की स्थिति में कोलिस्टेटोमा का पूतीभवन होने की संभावना रहती है तथा यह अंत कर्पालिक उपद्रव का सबसे आम कारण है।

निदान. ओटोस्कोपी तथा प्रोबिंग चिरकारी सपूय मध्यकर्ण-शोथ को जानने का तथा यह पता लगाने का सर्वाधिक आम साधन होते हैं कि शोथ सरल प्रकार का है या कठिन प्रकार का। कान का परीक्षण करने के पूर्व श्रवण-नाल को अत्यन्त सावधानी से डूश या सूखी विधि से साफ करके उसका पूय हटा देते हैं। यह बहुत महत्वपूर्ण है कि कर्णपटह-वेध का स्थान सुनिश्चित कर लिया जाये तथा यह भी पता लगा लिया जाये कि यह केन्द्रीय है या किनारे वाला। कभी-कभी श्रापनेल कला में छोटे वेधन का पता चलाना कठिन होता है, क्योंकि यह सूखे पूय की पपड़ी के नीचे छिपा हो सकता है। दूसरी तरफ, कर्णपटह के बहुत ज्यादा या पूर्ण नाश की अवस्था में मध्य-कर्ण की श्लेष्मा में परिवर्तन देखा जाता है, जो आम तौर पर सूजी हुई और लाल होती है तथा कणांकुरों से आच्छादित हो जाती है, जो थोड़ी लालिमा लिए अन्नकणों की तरह दिखते हैं और जिन्हें प्रोब से छूते ही खून का प्रवाह होने लगता है। प्रोब परीक्षण में आम तौर पर खुरदरी सतह के साथ खुली हड्डी को महसूस किया जाता है।

प्रक्रिया की गंभीरता का अनुमान लगाने के लिए पूय-आस्राव की मात्रा और उसके गुण भी आवश्यक साबित हो सकते हैं। बिना गंध का गाढ़ा स्पष्ट पूय का निस्राव सिर्फ मध्यकर्ण-श्लेष्मा के रोग ( मध्यकर्ण-शोथ ) का ही सूचक होता है। श्लेष्मिक धागों का समूह शोथ-प्रक्रिया में यूस्टेशियन

नलिका के शामिल होने को निर्देशित करता है (ट्यूबोमेसोटिम्पोनाइटीस)। अगर आस्राव कम तथा खून मिला हुआ और दुर्गंधपूर्ण हो, जो उपचार के बावजूद भी कायम रहे, तो यह मध्य-कर्ण में अस्थि-परिगलन की प्रच्छन्न (छिपी) प्रक्रिया का प्रमाण है (अधिमध्य कर्ण का शोथ)।

रोगी कान की अपूर्ण चिकित्सा से मध्यकर्ण की गुहा में पूय का आधिक्य व उसका सड़वर्धी (लातीनी: साप्रोफीतुम; शरीर में सड़े पदार्थों में पनपने वाले पादपी कीटाणु, जो रोगकारी नहीं होते) जीवों द्वारा विघटन होता है, जिससे सरल कर्ण-शोथ में भी बड़ी खराब गन्ध निकलती है। इन हालतों में गंध उपचार के 2-3 सप्ताह में समाप्त हो जाती है, जो कि परिगलन की प्रक्रिया में संभावित नहीं है। सभी प्रकार के कर्ण-शोथ में चालन प्रकार की बधिरता होती है। अधिमध्य कर्ण-शोथ, जो लैबीरिन्थ पर विषालु प्रभाव से पैदा होता है, मिश्रित श्रवण-हानि भी कर सकते हैं, जिसमें तंत्रिका बधिरता भी शामिल है।

उपचार. सपूय कर्ण-शोथ, जिसमें केन्द्रीय छिद्र रहता है, का इलाज संरक्षी तरीके से होता है।

चिरकारी सपूय कर्ण-शोथ का उपचार करते समय इस बात के लिए विशेष प्रयास करना चाहिए कि बीमारी के उन सामान्य कारणों को दूर कर दिया जाये, जिन से शोथ ने चिरकारी पथ अपना लिया है। इसके बाद पूरी तरह से और समय-समय पर कान से पूय को दूर करके तथा एन्टीसेप्टीक औषधियों के, जो मध्यकर्ण श्लेष्मा पर असर डालती हैं, बिन्दुपातन के जरिये स्थानीय उपचार किया जाता है। सपूय कर्ण-शोथ के उपचार में नाक तथा नासाग्रसनी के शोथ को दूर करना महत्वपूर्ण होता है। परानासा-विवर के रोगों के लिए शस्त्रकर्म (एडिनाइड उच्छेदन) और साथ ही अतः शुक्तिका के अतिवर्द्धित पश्च अन्त को हटाने से कई बार सपूयता नहीं हो पाती तथा रोग से मुक्ति सुनिश्चित हो जाती है।

इच्छित स्तंभन और एन्टीसेप्टीक प्रभाव 4 प्रतिशत बोरिक अम्ल घोल या 3 प्रतिशत बुरो घोल की बूंदों से प्राप्त किया जाता है।

Rp. Sol. Zinci sulfurici 1% 10.0
निर्देश: आठ बून्द कान में प्रति दिन तीन बार।

निम्न बूंद भी सहायक होती है:

Rp. Acidi borici 0.8
Hydrogenii hyperoxydati
Spiritus vini rectificati āā 10.0

निर्देश: आठ बून्द कान में तीन बार प्रति दिन।

फूरासीलीन भी एक महत्वपूर्ण प्रतिजीवी औषधि है।

Rp. Sol. Furacilini
in Spiritus vini 1:1.500 20.0

निर्देश: आठ बून्दों की डोज़ कान में तीन बार प्रति दिन।

मध्य-कर्ण की श्लेष्मा की शोथीय सूजन का 40 प्रतिशत से 96 प्रतिशत बोरिक अल्कोहल से उपचार करते हैं या फिर सप्ताह में एक या दो बार 3 प्रतिशत सिलवर नाइट्रेट का लेप लगाते हैं।

रोग से पूर्ण मुक्ति, जिसमें कर्णपटह का वेधन भर जाये तथा श्रवण पूरी तरह वापस हो जाये, शायद ही कभी होता है। बहुधा पूय-आस्राव बन्द हो जाता है, कर्णपटह का वेधन रह जाता है, क्षतचिन्ह बना रहता है, श्रवण-अस्थिकाओं का संधिग्रह तथा श्रवण में कमी रह जाती है।

किनारे के वेधन के साथ सपूय कर्ण-शोथ का उपचार ज्यादा कठिन होता है। किनारे के वेधन की मात्र उपस्थिति जरूरी नहीं कि शस्त्रकर्म का संकेत हो; फिर भी अगर संरक्षी उपचार असफल हो जाता है तो इसकी आवश्यकता पड़ सकती है। अगर एटिक तथा कोटर तक स्वतंत्र पहुंच हो तथा पालिप, क्षणांकुर तथा घने क्षतांकज आसंजन अनुपस्थित हों, तो संरक्षी उपचार करने की, अगर एक छोटा कोलिस्टेटोमा मौजूद हो, तब भी कोशिश करनी चाहिए। जहाँ तक पहुंचना संभव हो वहाँ तक सभी मध्यकर्ण-गुहाओं को सावधानी से साफ कर के कान को बोरिक या सेलिसिलीक अल्कोहल से भर देना चाहिए।

Rp. Acidi Salicylici 0.2
Spiritus vini rectificati 20.0

निर्देश: आठ बून्दों का डोज कान में प्रति दिन तीन बार डालना और बून्दों को कान में 15-20 मिनट रहने देना।

चित्र 28. ग्रौरल स्नेयर
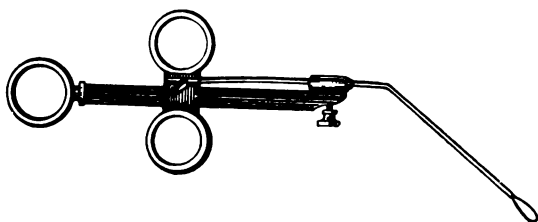
कुछ रोगियों में ग्रल्कोहल कान में दर्द तथा जलन पैदा कर देता है, ग्रतः इस स्थिति में ज्यादा नर्म घोल का, जैसे 40 प्रतिशत ग्रल्कोहल का, प्रयोग करना चाहिए। पालिप को ग्रौरल स्नेयर की मदद से हटाना चाहिए (चित्र 28 तथा 29), कणांकुरों को 10 प्रतिशत सिल्वर नाइट्रेट घोल या ट्राइक्लोरएसटिक ग्रम्ल से जला देते हैं। किनारी के वेधन में सपूयता ग्रधिमध्य कर्ण की दरी तक ही सीमित रहती है। ऐसी हालत में ग्राम कर्ण-सीरिंजिंग से इच्छित परिणाम प्राप्त नहीं होता। ग्रतः बार-बार बोरिक एसिड के ऐटिक डूश का प्रयोग तथाकथित एटिक कैनूला के द्वारा करते हैं जिसमें वक्रित चोंच होता है तथा जिसे कर्णपटह के ऊपरी भाग में छिद्र के द्वारा घुसाते हैं (चित्र 30)।

इस उपचार के साथ पूय को सावधानी से हटाने तथा मध्यकर्ण श्लेष्मा पर ग्रत्यन्त महीन बोरिक ग्रम्ल पाउडर या सल्फोनामाइड योग का प्रयोग
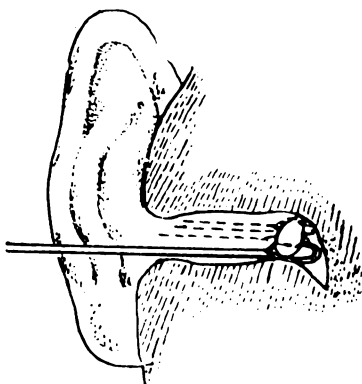
चित्र 29. पालिप को हटाना
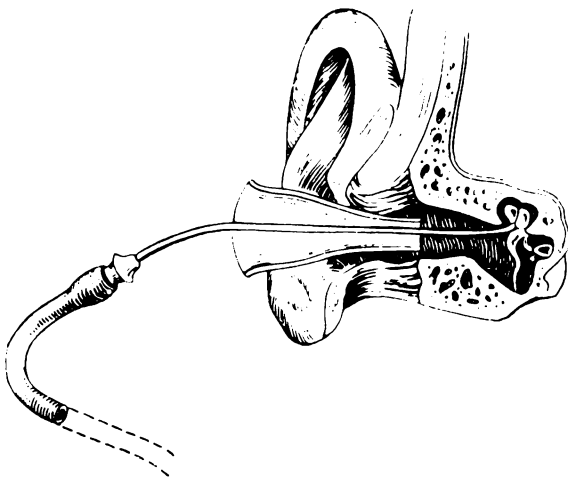
चित्र 30. एटिक डूश एटिक कैनूला के द्वारा

करने से सतही क्षरणग्रस्त अस्थियां हट जाती हैं, पूय-आस्राव खत्म हो जाता है, जिसके बाद मध्यकर्ण-गुहाओं का घाव-भरन तथा वाह्य त्वचीकरण होता है।

अगर संरक्षी उपचार असफल हो जाये जैसा कि कालिस्टेटोमा या विस्तृत तथा गहराई तक पैठी क्षरणग्रस्त प्रक्रिया में हो सकता है या अगर लगातार सरदर्द रहता हो, भ्रमि का आक्रमण हो जाता हो या बुखार हो तो मध्यकर्ण का समूल शस्त्रकर्म जरूरी हो जाता है।

कालिस्टेटोमा और आनन-तंत्रिका पर के लकवा मध्यकर्ण में समूल शस्त्रकर्म की आवश्यकता बनाते हैं। अगर अंतर्कपालिक उपद्रव, जैसे साइनस थ्रोम्बोसीस, पूयजन्य तानिका-शोथ, मस्तिष्क या सेलिरब्रेम में घाव का जरा भी संदेह हो तो यह तत्काल शस्त्रकर्म की आवश्यकता का संकेत है।

समूल शस्त्रकर्म के अन्तर्गत वास्तव में मध्यकर्ण-कुहर, अधिमध्य कर्ण की दरी, बची हुई मैस्टाइड कोशिकाओं सहित कोटर तथा वाह्य कर्ण-कुहर को एक चौड़ी नलिका में परिवर्तित करना, सम्मिलित है। इसी लिए इस शस्त्रकर्म को समूल मैस्टाइडेक्टोमी कहते हैं। क्षरणग्रस्त अस्थि तथा कालिस्टेटोमा को पूय-रूप में हटा देने से श्रवण-नाल से मुक्त पूय-निकास सुनिश्चित होता है तथा संभावित अन्तर्कपाल-उपद्रवों से बचाव होता है।

शस्त्रकर्म की शुरूआत कोटर को खोलने से होती है जैसा कि मैस्टाइडेक्टोमी में होता है; इसके बाद वाह्य कर्ण-कुहर की पश्च अस्थि-भित्ति के ऊपरी हिस्से तथा एटिक की वाह्य भित्ति को हटा दिया जाता है। यहाँ शस्त्रकर्म गुहा की गहराई में बड़ी सावधानी बरती जानी चाहिए, ताकि आनन-तंत्रिका को कोई चोट न पहुंचे, क्योंकि आनन-तंत्रिका नाल का नीचे की तरफ आता हुआ जानु (मोड़) कर्ण-कुहर की पश्च अस्थिय भित्ति की गहराई में स्थित होता है। शस्त्रकर्म का समापन कार्य परिगलित श्रवण-अस्थि तथा स्टेपिस को हटा देना है। पालिप, कणांकुरों तथा क्षरणग्रस्त अस्थियों को खुरचनी से सावधानी से हटा देते हैं। शस्त्रकर्म को पूरी तरह समाप्त करते हुए प्लास्टिक मरम्मत करते हैं, ताकि शस्त्रकर्म से गुहा-भित्तियों पर वाह्यत्वचा विकसित हो सके। इस उद्देश्य से वाह्य कर्ण-कुहर की पश्च भित्ति और छत की त्वचा से एक या दो फ्लैप निकाल कर घाव के ऊपरी तथा निचले हिस्से पर प्रतिरोपित कर देते हैं। फ्लैप पूरे छेद्रित क्षेत्र के लिए वाह्य त्वचा का स्रोत होता है। घाव की या तो सीवन कर देते हैं या, अगर तानिकाएं खुली हुई हों, तो खुला रखते हैं। शस्त्रकर्म के क्षेत्र को आयोडोफोर्म या पेनिसिलीन घोल (10 000 इकाई प्रति मि० ली०) में भिगोये हुए टैम्पोन से पैक कर देते हैं। अगर बुखार नहीं हो तथा घाव में दर्द नहीं हो तो पहली बार छठे, आठवें दिन सूखी ड्रैसिंग लगाते हैं। शस्त्रकर्मोत्तर उपचार तुलनात्मक तौर पर कठिन होता है और आम तौर पर 6-8 सप्ताह तक चलता है। कुछ मामलों में, अगर मध्यकर्ण में रोग नहीं हो तथा अन्तर्कपाल उपद्रव के चिन्ह नहीं हों, तो टिम्पेनोप्लास्टी किया जाता है। इस शस्त्रकर्म का उद्देश्य सिर्फ मध्यकर्ण से विकृतिजनक ऊतकों को निकालना ही नहीं है, बल्कि कर्णपटह की मरम्मत करना भी है।

कई मामलों में शस्त्रकर्म के परिणामस्वरूप श्रवण भी बेहतर हो जाता है।

रोग-निरोध. चिरकारी सपूय मध्यकर्ण-शोथ को, सही तथा उचित समय पर तीव्र कर्ण-शोथ का उपचार करके, नाक तथा नासा-ग्रसनी के रोग-निरोध तथा शारीरिक प्रतिरोध को बढ़ाने के लिए सामान्य कदम उठाकर, रोका जा सकता है।

सामान्य तथा स्थानीय उपचार दोनों का प्रयोग तीव्र तथा अवतीव्र मध्यकर्ण-शोथ के रोगियों का उपचार करने के लिए तबतक करते हैं, जबतक श्रवण पूरी तरह वापस न हो जाये। तीव्र कर्ण-शोथ के जल्दी ठीक

हो जाने के लिए आवश्यक है कि पेनिसिलीन तथा स्ट्रैप्टोमाइसीन से सही और उचित समय पर प्रतिजीवी उपचार किया जाये। मीसिल्स तथा स्कारलेट ज्वर जैसे संक्रामक रोगों के उपद्रव के तौर पर बच्चों में हुए तीव्र कर्ण-शोथ के उपचार में प्रतिजीवी औषधि के जल्द प्रयोग का विशेष महत्व होता है, क्योंकि इस प्रकार का कर्ण-शोथ मध्यकर्ण में अस्थि-परिगलन पैदा करता है तथा बहुधा चिरकारी हो जाता है।

स्थानीय उपचार में रोगी कान पर सावधानी से ध्यान देने की जरूरत पर जोर दिया जाना चाहिए। इसमें एसेप्टिक नियमों का श्रवण-नाल साफ करते समय दृढ़ता से पालन करना तथा एन्टीसेप्टिक घोल को समय पर डालना आदि शामिल है। (देखें पृष्ठ 43, "परिचर्या के सामान्य तरीके व कर्ण-रोगों का उपचार")।

नाक तथा नासा-ग्रसनी की कुछ बीमारियों में जिनमें नाक से श्वास लेने में बाधा उपस्थित हो जाती है, तीव्र कर्णशोथ बहुधा चिरकारी हो जाता है। इनमें नासा-शुक्तिका के पश्च अन्त का अतिविकसन, नासा-पालिप, नासा-पट की विरूपता, परानासा-विवर का शोथ, एडिनाइड का अतिविकसन आदि शामिल हैं। कर्णनासाकंठ विशेषज्ञ द्वारा इन रोगों का उपचार करने से नासा-श्वसन वापस हो जाता है, यूस्टेशियन नली की बाधा खत्म हो जाती है तथा यह मध्यकर्ण के तीव्र शोथ को जल्दी खत्म करने में सहायक होता है। शारीरिक प्रतिरोध-क्षमता में कमी चाहे जिस कारण से भी हो, यह तीव्र कर्ण-शोथ को चिरकारी बनाने को सुगम करती है, जो यह दर्शाता है कि संक्रमण को खत्म करने के स्थानीय कदमों के साथ-साथ सामान्य उपचार करना कितना महत्त्वपूर्ण है।

चिरकारी सपूय मध्यकर्ण-शोथ के रोगियों में प्रकोपनों को रोकने के लिए आवश्यक है कि स्नान करते समय या सिर धोते समय पानी को कान में प्रवेश न करने दिया जाये। इस उद्देश्य से रूई के टुकड़े को बोरिक पेट्रोलेटम या किसी दूसरे तेल से चिकना करके श्रवण-नाल में घुसा देते हैं। खराब मौसम में, जब तेज आंधी चल रही हो या धूल उड़ रही हो, रोगी को बाहर जाते समय श्रवण-नाल में साफ रूई डाल कर उसकी रक्षा करनी चाहिए। रोगी को सावधान कर देना चाहिए कि दोनों नासा-द्वारों से तेजी से और बहुत ज्यादा नाक न छिड़के, खास तौर पर तीव्र और तेज हुए चिरकारी प्रतिश्याय के दौरान, क्योंकि इससे दुबारा संक्रमण हो सकता है और कान में शोथ वापस हो जा सकता है।

चिरकारी सपूय कर्ण-शोथ के अन्तर्कपाल उपद्रवों की रोकथाम, पालिप जैसे अधिमध्यकर्ण रोगों के वहिरंग रोगियों का क्लीनिकल प्रेक्षण करते हैं ताकि समय रहते उनको कर्णनासाकंठ-अस्पताल में मध्यकर्ण पर समूल शस्त्रकर्म के लिए भेजा जा सके।

चिकित्सक का सहायक वहिरंग रोगियों की नैदानिक देखभाल में सक्रिय सहयोग देता है तथा उन रोगियों को चुनता है जिन्हें आगे और चिकित्सीय परीक्षण की जरूरत है।

## आंतर कर्ण का शोथ

आंतर-कर्ण का शोथ सपूय कर्ण-शोथ का एक अत्यन्त गंभीर उपद्रव है, जिसमें संतुलन में हमेशा विक्षोभ हो जाता है, श्रवण में बाधा होती है और कभी-कभी तो प्रभावित कान में श्रवण पूरी तरह खत्म हो जाता है। संक्रमण का मार्ग मध्यकर्ण से लैबीरिंथ तक अंडाकार तथा गोलाकार गवाक्ष के द्वारा तथा लैबीरिन्थाइन अस्थि-भित्ति के सीधे नाश के द्वारा हो सकता है। बाद वाला मार्ग मध्यकर्ण में कालिस्टेटोमा से कठिन हो गये चिरकारी पूयता में, जिसके परिणामस्वरूप वाह्य अर्धवृत्त नलिका में नाल-व्रण बन जाता है, आच्छादित करने वाली अस्थि एवं कलाओं के सुरक्षित होने की स्थिति में भी संक्रामक टाक्सिन लैबीरिन्थ तक पहुंच सकते हैं। इस प्रकार के रोग को आंतर कर्ण का प्रेरित शोथ कहते हैं। क्लीनिकल चित्र के अनुसार आंतरकर्ण-शोथ को सपूय और सीरमी दो प्रकारों में बांटते हैं।

सपूय प्रकार ज्यादा चिरकारी सपूय कर्ण-शोथ में तथा कभी-कभी तीव्र स्कारलेट ज्वर एवं इन्फ्लूएंजाजनित कर्ण-शोथ में होता है। कालिस्टेटोमा का विनाशकारी प्रभाव आंतरकर्ण-शोथ का बहुधा होने वाला कारण है। सपूय आंतरकर्ण-शोथ परिसीमित या विसरित रूप में हो सकता है।

लक्षण. आंतरकर्ण-शोथ के प्ररूपी चिन्ह होते हैं। रोग तथाकथित लैबीरिन्थाइन आक्रमण से अचानक शुरू होता है, बहुत तेजी से सिर चकराता है, संतुलन में विक्षोभ होता है तथा इसके बाद मितली के दौरे तथा वमन रह-रह कर कई दिन तक होते रहते हैं। तापक्रम आम तौर पर सामान्य रहता है लेकिन अगर लैबीरिन्थाइन आक्रमण के समय यह अच्छा-खासा बढ़ जाये तो यह तानिकाओं के आरंभमान-शोथ को सूचित करता है।

सीरमी प्रकार के आंतरकर्ण-शोथ में श्रवण तथा घ्राण की क्रिया में तीव्र गिरावट आती है तथा विसरित सपूय आंतरकर्ण-शोथ में दोनों क्रियाएं

पूरी तरह बन्द हो जाती हैं। लेकिन परिसीमित आंतरकर्ण-शोथ में पूर्ण बधिरता नहीं होती। रोग के शुरू में ही हुआ निस्टेग्मस पहले तो प्रभावित कान की तरफ होता है, तथा लैबीरिन्थाइन क्रिया के पूर्णतः असफल रहने पर यह विपरीत, अप्रभावित तरफ परिवर्तित हो जाता है। अगर तानिकाशोथ शुरू नहीं हो तो संतुलन में विक्षोभ तथा अन्य लक्षण 3-4 सप्ताह में धीरे-धीरे खत्म हो जाते हैं। विसरित सपूय आंतरकर्ण-शोथ का परिणाम है श्रवण की स्थायी हानि।

अधिकांश मामलों में सीरमी प्रकार का आंतरकर्ण-शोथ गोलाकार और अंडाकार गवाक्षों को आच्छादित करने वाली सुरक्षित कलाओं के द्वारा लैबीरिन्थ पर टौक्सीन के प्रभाव से प्रेरित होता है। ये प्रकार मध्यकर्ण के तीव्र शोथ में होते हैं या कभी-कभी समूल मैस्टाइडेक्टोमी के दौरान चोट लगने से भी हो सकते हैं।

सीरमी आंतरकर्ण-शोथ के क्लीनिकल चिन्ह सपूय प्रकार के होते हैं। सीरमी आंतरकर्ण-शोथ से स्वस्थ होने के बाद श्रवण की आंशिक वापसी होती है। सबसे ज्यादा होने वाला और सबसे हल्के किस्म का आंतरकर्ण-शोथ स्पष्टतः परिसीमित प्रकार का है। अधिकांश मामलों में, यह प्रकार ऐसे चिरकारी सपूय कर्ण-शोथ में पाया जाता है जो कोलिस्टेटोमा से कठिन हो गया हो, तथा इसके साथ लैबीरिन्थ के अस्थिय कैप्सूल में (बहुधा वाह्य अर्धवृत्तीय नलिका के क्षेत्र में) नालव्रण भी हो।

परिसीमित आंतरकर्ण-शोथ का निदान तथाकथित सम्पीडन निस्टेगमस से सुगमित हो जाता है जो रोगी में प्रभावित कान के श्रवण-नाल में हवा के सम्पीडन तथा विरलन के एकान्तरण से उत्पन्न हो जाता है। जब हवा का सम्पीडन होता है तो निस्टेगमस प्रभावित हिस्से की तरफ होगा तथा विरलन की स्थिति में निस्टेग्मस उलट कर विपरीत दिशा में चला जायेगा। इस तरह का निस्टेग्मस वाह्य अर्धवृत्तीय नलिका में नालव्रण को इंगित करता है (नालव्रण लक्षण)।

उपचार. अगर कोई अन्तर्कपाल उपद्रव नहीं हो तो आंतरकर्ण-शोथ का उपचार संरक्षी होना चाहिए। रोगी को बिस्तर पर रहना चाहिए और उसे शांत रखा जाना चाहिए। पेनिसिलीन तथा स्ट्रेप्टोमाइसीन के साथ प्रतिजीवी उपचार 2-3 सप्ताह तक चालू रखना चाहिए। पेनिसिलीन को अन्तर्पेशी इन्जेक्शन के रूप में 100 000 से 200 000 इकाई प्रति तीन घंटे पर या 24 घंटे में 6-8 बार औसतन देना चाहिए। खुराक रोग की गंभीरता

पर निर्भर करती है। अगर कान का शस्त्रकर्म किये जाने का संकेत मिलता हो तो उसे तब किया जाना चाहिए जब तेज लैबीरिन्थाइन लक्षण कम हो गये हों, आम तौर पर लैबीरिन्थाइन आक्रमण के 2-3 सप्ताह के बाद।

मैस्टाइडाइटीस, सपूय कालिस्टेटोमा या अन्तर्कपाल उपद्रवों की उपस्थिति होने पर तत्काल शस्त्रकर्म करते हैं। शल्य-क्रिया की विधि वर्तमान उपद्रवों तथा शस्त्रकर्म में पाये गये वैकृत परिवर्तनों पर निर्भर करेगी।

## सपूय कर्ण-शोथ के अन्तर्कपाल उपद्रव

अन्तर्कपाल उपद्रव तीव्र तथा चिरकारी दोनों प्रकार के सपूय मध्यकर्ण-शोथ में हो सकते हैं, हालांकि वे चिरकारी प्रकार में ज्यादा होते हैं।

दो प्रकार के संक्रमण होते हैं – (1) सम्पर्क से, जब मध्यकर्ण-गुहा, मैस्टाइड प्रवर्ध या लैबीरिन्थ के अस्थि-भित्तियों के अपरदन के परिणाम-स्वरूप तानिकाएं शोथ-फोकस से अरक्षित हो जाती हैं। (2) रक्त वाहिकाओं द्वारा जब संक्रमण उनके जरिये कपाल-गुहा में प्रवेश कर जाता है।

अन्तर्कपाल उपद्रव निम्नलिखित रूपों में घटित होते हैं।

### दृढ़तानिकेतर विद्रधि

दृढ़तानिकेतर विद्रधि, जो कि कपाल-अस्थि तथा उससे संलग्न ड्यूरामाटेर के बीच पूय का जमाव है, सबसे अधिक होने वाला अन्तर्कपाल उपद्रव है। अगर यह अवग्रही शिरा-नाल के ऊपर होता है तो इसे परिशिरा-नाल की विद्रधि कहते हैं।

ड्यूरामाटेर और कपाल अस्थि के बीच प्रफुलित होते हुए दृढ़तानिकेतर विद्रधि काफी बड़ी हो सकती है।

शोथ के कारण ड्यूरामाटेर मोटा एवं कणांकुरों से आच्छादित हो जाता है और अगर मध्यकर्ण से स्वतंत्र पूय-निकास हो, तो यह वेधन को काफी समय तक रोक सकता है।

दृढ़तानिकेतर विद्रधि के कोई शास्त्रीय लक्षण नहीं होते और अधिकांश मामलों में तीव्र तथा चिरकारी कर्ण-शोथ के उपद्रवों के लिए किये जा रहे शस्त्रकर्म के समय इनका निदान होता है: शस्त्रकर्म के समय ड्यूरामाटेर का पूरा प्रभावित क्षेत्र विस्तृत तौर पर अनावृत हुआ रहता है जिससे अनुकूल परिणाम निकलने की संभावना रहती है।

बहुधा पाया जाने वाला दूसरे प्रकार का अन्तर्कपाल उपद्रव है। अवग्रही शिरा-नाल का घनास्रशिरा शोथ, जिसे आम तौर पर पार्श्व शिरा-नाल की घनास्रता के नाम से जाना जाता है। बहुधा मैस्टाइडीटीस में मैस्टाइड कोशिकाओं का अपरदन तथा सिग्माइड साइनस भित्तियों पर पूय का जमाव अवग्रही शिरा-नाल की भित्तियों में शोथ (फ्लेबाइजिस) का सबसे तात्कालिक कारण होता है जिसके बाद थाम्बस (घनास्र या थक्के) का निर्माण होता है (घनास्रशिरा शोथ)। कुछ समय बाद थक्के में सेप्टिक कोमलता होता है और इसके संक्रामक कण अभ्यन्तर ग्रैव शिरा के द्वारा दिल के दाहिने हिस्से में पहुंच जाते हैं। फुफ्फुस परिसंचरण में विक्षेप से विद्रधि न्यूमोनिया हो जाता है जबकि सार्वदेहिक परिसंचरण के जरिये संक्रमण पेशियों, जोड़ों तथा आंतरिक अंगों में विक्षेपी फोड़े पैदा करते हैं।

रोग का क्लीनीकल पथ दो बड़ी विभिन्नताएँ प्रस्तुत करता है—ओटोजीनस (कर्णज) सेप्टीसीमिया (पूतिरक्तता) तथा ओटोजीनस पूय रक्तता; कई बार मिश्रित चरित्र का भी हो सकता है।

ओटोजीनस पूय रक्तता को भयानक आकस्मिक हमले के द्वारा पहचाना जाता है, जो आम तौर पर तीव्र कर्ण-शोथ तथा मैस्टाइडाइटीस अथवा कान में गन्दा पानी घुस जाने या इन्फ्लूएंजा, आदि के बाद हुए चिरकारी सपूय कर्ण-शोथ के प्रकोपन के कारण होता है। तेज जाड़े या कंपकंपी के साथ बुखार जल्द ही 41° सें० तक पहुंच जाता है और थोड़ी देर बाद नीचे सामान्य से भी कम तक उतर जाता है। तापक्रम नीचे उतरते समय काफी स्वेदन होता है। ये आक्रमण हर दो दिन पर या रोज, कभी-कभी दिन में 2-3 बार और कभी-कभी नियमित अन्तराल पर मलेरिया के आक्रमण की तरह होते हैं। इसके प्रारंभिक लक्षण बहुधा वमन और सिर दर्द होते हैं। पूयरक्तता के कारण ज्वर तथा कँपकँपी के लगातार आक्रमण से रोगी धीरे-धीरे शक्ति खोता जाता है, उसका चेहरा सूख जाता है; नाड़ी की दर तेज और कमजोर हो जाती है; वह आंत्र विकार से पीड़ित हो जाता है, उसकी जिह्वा समल हो जाती है तथा सांस से दुर्गन्ध आती है।

विक्षेप से रोधगलन हो जाता है; तथा फेफड़ों में तथा अन्य अंगों में विद्रधि हो जाते हैं जिससे रोगी की हालत और भी गंभीर हो जाती है।

सेप्टीसीमिया या पूति विषाक्तता में ज्वर ज्यादा रहता है तथा सीमित

दायरे में कम ज्यादा होता रहता है, जबकि शीतकंप उतने तीव्र नहीं होते। गंभीर सामान्य विशालुकता की अवस्था मुख्य तौर पर केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र के क्रियात्मक विक्षोभ में ही परिलक्षित होती है। अंतरांगों (जैसे हृदय, वृक्क, जिगर, आंत्र आदि) के सेप्टिक रोगों का भी काफी महत्व होता है। रोगी की सामान्य अवस्था अत्यन्त खराब हो जाती है: उसकी नाड़ी तेज तथा सूत्री (स्पर्शों में धागे की तरह पतली और अत्यंत क्षीण) होती है; अन्तरांगों में, त्वचा के नीचे तथा श्लेष्मा कलाओं में रक्तस्राव शुरू हो जाता है। त्वचा आम तौर पर पीली हो जाती है।

उपचार. अनजान हेतुकी के सेप्टीसीमिया में कान, नाक तथा गले का पूरा परीक्षण करना चाहिए। निदान होने के बाद तत्काल शस्त्रकर्म आवश्यक होता है; तीव्र सपूय कर्ण-शोथ में साधारण ट्रेफिनेशन (छेदन) काफी होता है, जबकि चिरकारी प्रकार में एक समूल शस्त्रकर्म की आवश्यकता पड़ती है। प्रभावित साइनस (कोटर) को खोलने के बाद इसकी भित्ति को छिन्न करके क्लौट (थक्के) को निकाल देते हैं। प्रभावित अस्थियों को तबतक निकालते जाना चाहिए, जबतक स्वस्थ अस्थि न मिल जाये। शस्त्रकर्मोत्तर उपचार में रोगी का सावधानी से ख्याल रखते हैं, त्वचा की देख-भाल जरूरी है, दाँतों तथा जिह्वा को साफ करना चाहिए, शौच नियमित होना चाहिए, आदि। हृदय की गतिविधि पर नजर रखना जरूरी होता है तथा 100 000 इकाई मात्रा में 10-12 दिन पेनिसिलीन देनी चाहिए। पेनिसिलीन तथा स्ट्रेप्टोमाइसीन का सम्मिलित प्रयोग और भी प्रभावकारी होता है। रोगी का आहार मात्रा में पूरा तथा विटामिन से परिपूर्ण होना चाहिए। समय पर शल्य-क्रिया का प्रयोग, रक्ताधान तथा प्रतिजीवी उपचार ने इस गंभीर रोग से ठीक होने की संभावनाएं काफी बढ़ा दी हैं। आजकल रोग के लगभग सभी मामलों का ठीक होना निश्चित है।

## प्रमस्तिष्क विद्रधि

कर्णशोथज प्रमस्तिष्क-विद्रधि आम तौर पर मध्यकर्ण में संक्रमण के मुख्य फोकस के निकट ही स्थित होती है। कोटर तथा मध्यकर्ण के छत में विक्षति अधिकांशत: शंख-खण्ड में विद्रधि बनाती है।

गहन पूयता के बाद या साथ-साथ हुई पार्श्व शिरा-नाल की घनास्रता

से अनुमस्तिष्क में आंतरकर्ण के कुहर के जरिये संक्रमण के आक्रमण के कारण विद्रधि हो सकती है।

लक्षण. शुरू में प्रमस्तिष्क विद्रधि के चिन्ह बहुत स्पष्ट नहीं होते और इसलिए अक्सर उन्हें दूसरे रोगों के कारण हुआ समझा जाता है। प्रकारिक लक्षण हैं–शरीर के सामान्य तापक्रम पर जोरदार सिर-दर्द, बार-बार वमन होना और नाड़ी-दर का कम होना। रोगी सवालों का जवाब अनिच्छा से देता है और थोड़ी देर के बाद उनींदावस्था में हो जाता है तथा अपने चारों ओर के वातावरण से उदास हो जाता है। बायीं शंखास्थि में विद्रधि से रोगी में स्मृतिलोप-जनित वाचाघात हो जाता है, जिसमें रोगी सामान्य वस्तुओं के नाम याद नहीं कर सकता, हालांकि वह उनके प्रयोग बतला सकता है। आधे मामलों में नेत्र-तल परिवर्तित हो जाता है, अक्षि-बिम्ब रुद्ध हो जाता है।

निदान. प्रमस्तिष्क विद्रधि का निदान बहुधा कठिनाइयां प्रस्तुत करता है। आम चरित्र के सबसे प्रकारिक प्रमस्तिष्कीय लक्षण–सिर दर्द, वमन तथा धीमी नाड़ी –शुरू में नहीं भी पाये जा सकते हैं और रोग के अन्त में ही स्पष्ट हो सकते हैं जिससे रोग का पूर्वानुमान बहुत कठिन हो जाता है। अनुमस्तिष्क में विद्रधि से अनुमस्तिष्कीय गति-विभ्रम तथा निस्टेग्मस होता है जो प्रभावित हिस्से की तरफ आँख में बढ़ने की प्रवृत्ति रखता है।

उपचार. प्रमस्तिष्क-विद्रधि का उपचार शल्य-क्रिया के द्वारा होता है। मध्यकर्ण के सरल या समूल शस्त्रकर्म के बाद तथा संक्रमण के मुख्य थोकस को हटाने के बाद, ड्यूरामाटेर का विस्तृत अनावरण करते हैं। विद्रधि के निश्चित स्थान की खोज को, जिसे मस्तिष्क के टेन्टेटीव पंक्चर से किया जाता है, ड्यूरामाटेर के वैकृतिक परिवर्तन वाले क्षेत्र तक ही सीमित रखना चाहिए। विद्रधि के स्थान का निश्चित पता लगाने के बाद इसे ड्यूरा-माटेर का एक प्रारंभिक छेदन कर के खोलना चाहिए। इसके बाद का उपचार विद्रधि को निकालना, सूखी ड्रेसिंग को प्रतिदिन बदलना तथा पेनिसिलीन और स्ट्रेप्टोमाइसीन अलग-अलग या साथ-साथ देना है। दूसरा तरीका है–बार-बार पंक्चर कर के पूय का चूषण तथा विद्रधि का प्रतिजीवी डूश।

रोगी को पूर्ण शांत एवं आरामदेह परिचर्या मिलनी चाहिए। 10 में 6 से 8 मामलों में रोगी को स्वस्थ होते देखा गया है। अनुमस्तिष्क के विद्रधि के रोग में ठीक होने की दर कम है।

हाल तक पीयामाटेर (शिरोमस्तिष्क के मृदु आवरण) का सपूय शोथ एक ऐसी बीमारी थी जिसमें मृत्यु निश्चित होती थी।

लक्षण. पूयजन्य तानिका-शोथ की शुरूआत तेज सिर-दर्द और तेज ज्वर से होती है। प्रग्लक्षण, जैसे एक तरफ का हल्का सिर दर्द, भ्रमि के दौर, कभी-कभी हल्का ज्वर, आदि बहुधा कुछ दिनों के लिए देखे जाते हैं। मतली और वमन बहुधा रोग के प्रारंभ से ही, खास तौर पर बच्चों में, पाये जाते हैं। नाड़ी दर तेज और अनियमित होती है। इसके सबसे प्रकारात्मक लक्षण हैं—तानिका के क्षेत्र के लक्षण, जैसे सख्त ग्रीवा, यानी ग्रीवा-पेशियों का सख्त होना, जिससे चिबुक का छाती तक आकुंचन नहीं हो पाता, तथा कर्निग चिन्ह का धनात्मक होना, यानी उस संधि पर समकोण पर आकुंचित हुआ पैर घुटने पर सीधा नहीं किया जा सकता। तानिका-शोथ के निदान में सबसे महत्वपूर्ण है मस्तिष्कमेरु-तरल का परीक्षण। यह तरल कटि-वेध के द्वारा निकाला जाता है, जिसे एक चिकित्सक को करना चाहिए। तानिका-शोथ में तरल आविल होता है, बहुत कोशिकाएं होती हैं, कभी-कभी जीवाणु भी होते हैं तथा तरल दबाव के अधीन बाहर बह जाता है। तानिका-शोथ के विकास के साथ प्रगामी जड़िमा होती है तथा रोगी की सामान्य अवस्था में तेजी से अवनति होती है, साथ ही श्वसन विकार, पेशाब और पाखाने में असंयति हो जाती है। रोग की अवधि तथाकथित लाइटनीग (तड़ित) प्रकार में एक से दो दिन और अन्य केसों में 7 से 10 दिन तक होती है।

उपचार. मध्यकर्ण में संक्रमण के मुख्य या प्राथमिक फोकस को हटाने के लिए सरल या समूल शस्त्रकर्म तत्काल किया जाना चाहिए। इसके बाद तीव्र रसायन-चिकित्सा देनी चाहिए, जिसमें 24 घंटे में 10 ग्राम तक की सल्फोनामाइड की बड़ी खुराक तथा पेनिसिलीन के अन्तर्पेशी इन्जेक्शन 100 000 इकाई की मात्रा में प्रत्येक 2-3 घंटे पर दिया जाना शामिल है, ताकि प्रति दिन की खुराक 10 लाख इकाई हो सके। इन दोनों औषधियों को एक साथ देने या पेनिसिलीन को स्ट्रेप्टोमाइसीन के साथ देने से और भी बेहतर परिणाम प्राप्त हुए हैं। सल्फोनामाइड की प्रति दिन की मात्रा 8-10 ग्राम होनी चाहिए। अन्तर्कपालिक-दबाव को कम करने के लिए अगर जरूरी हो तो कई बार कटिबेध करके थोड़ा मस्तिष्कमेरु-तरल

को निकाल लेते हैं। इसी प्रकार रोग से स्वस्थ होने के लिए पेनिसिलीन की 50 000 इकाई मेरुदण्ड में आधान कर सकते हैं।

अन्तर्कपालिक उपद्रव के रोगी की परिचर्या एक महत्त्वपूर्ण काम है, क्योंकि इसमें हालत अत्यन्त चिन्ताजनक होती है तथा विशेष ध्यान देने की ज़रूरत होती है। इसके साथ-साथ डाक्टर के निर्देशों का समय पर और पूरी तरह कुशल परिचारिका द्वारा पालन उपचार की सफलता को सुनिश्चित करेगा और रोगी की प्राण-रक्षा करेगा।

# मध्य तथा आंतर कर्ण के अपूय रोग

## मध्य कर्ण का चिरकारी प्रतिश्याय

चिरकारी प्रतिश्यायी मध्यकर्ण-शोथ नाक और नासा-ग्रसनी में बहुत सी विकार-प्रक्रियाओं से पैदा होता है, जो यूस्टेशियन नली तक फैल जाती हैं, तथा इसके मार्ग को संकीर्ण बना देती हैं और इस तरह मध्यकर्ण के संवातन को अवरुद्ध कर देती हैं। मध्यकर्ण में बार-बार होने वाले तीव्र केटार इसकी श्लेष्मा को मोटा कर देते हैं और कर्णपटह को कम लचीला बना देते हैं। काफी दिनों तक यूस्टेशियन नली में बाध बने रहने से कर्णपटह का स्पष्ट और स्थिर (स्थायी) आकुंचन हो जाता है जिसके बाद अस्थिका-शृंखला का संधिग्रह हो जाता है। बहुधा कर्णपटह और मध्यकर्ण-गुहा की भित्तियों के बीच वर्ण-चिन्हित ऊतक के अनुप्रस्थी और अनुतीरी रेशे बन जाते हैं। इस अवस्था को चिरकारी केटार कहते हैं। रोगी प्रगामी बधिरता तथा टिनिटस की शिकायत करता है। ऐसा बहुधा होता है कि कभी-कभी श्रवण में सुधार हो जाता है खास कर सूखे मौसम में; तथा जब मौसम सील-नवाला हो जाता है या प्रतिश्याय होता है, श्रवण में पुनः अवनति हो जाती है।

निदान. इस अवस्था का निदान कर्णपटह के परीक्षण और श्रवण के क्रियात्मक परीक्षण पर निर्भर करता है। कर्णपटह कमोबेश निश्चित रूप से अन्दर की तरफ खिंचा रहता है (चित्र 31) तथा यह मंद तथा क्रीम सफेद रंग का होता है। बहुधा विविध रूपों के तीक्ष्ण रूपरेखा वाले सफेद बिन्दु दिखाई पड़ते हैं जो कर्णपटह-ऊतक की गहराई में कैल्सियमी निक्षेप होते हैं। सपूय कर्ण-शोथ द्वारा छोड़े गये क्षत-चिन्ह, साथ ही कर्णपटह के

शोप क्षेत्र धूमिल दिखते हैं और कई बार इन्हें गलती से कर्णपटह में छिद्र समझ लिया जाता है। शोष में कर्णपटह मध्यकर्ण की आन्तरिक भित्ति से निकट से जुड़ा होता है जिससे कभी-कभी यह भान होता है कि कर्णपटह है ही नहीं।

चित्र 31. कर्णपटह आंकुचन

श्रवण किस अंश तक है, इस पर कर्णपटह में हुए परिवर्तन की सीमा का कोई निर्णायिक प्रभाव नहीं होता है। अतः निदान का श्रवण-आकलन और, कई स्थितियों में, श्रवण-नाल के परीक्षणहेतु प्रसारण द्वारा संपुष्टन कर लिया जाना चाहिए। सबसे ज्यादा प्रकारात्मक परिणाम स्वरक द्विशूल की परीक्षा से प्राप्त होंगे, जब $c_{2.048}$ द्विशूल से उत्पन्न उच्च तान के लिए लगभग सामान्य श्रवण के साथ गंभीर निम्नतान हानि पायी जाती है, जैसा कि $c_{128}$ द्विशूल का प्रयोग करने से प्रमाणित होता है। अस्थि चालन आम तौर पर दीर्घ हो जाता है।

श्रवण-नाल का परीक्षणहेतु प्रसार बहुधा श्रवण में तुरंत सुधार लाता है।

<u>पूर्वानुमान</u>. अगर रोग छोटी अवधि का है और नली के प्रसार के बाद श्रवण में सुधार हो गया है, तो यह अनुकूल होता है।

<u>उपचार</u>. सबसे पहला काम होता है यूस्टेशियन नली के आरंभिक रूप को वापस करना, यानी नाक और नासा-ग्रसनी से विकार अवस्था को समाप्त करना। इस हालत में कण्डशालूक का उच्छेदन, विशेषकर बच्चों में, एक बहुत प्रयोग में आने वाली विधि है, जब कि प्रौढ़ व्यक्तियों में अधिकांशतः नासापट में विरूपता; निम्न नासा-शुक्तिका के अतिवर्धित पश्च अन्त को हटाने, आदि के लिए शस्त्रकर्म करते हैं।
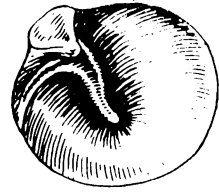
चित्र 32. नलीय प्रसार के लिए रबड़ बल्ब

कभी-कभी एकमात्र ये कदम ही नाल में बाधा दूर करने के लिए तथा बहुत हद तक श्रवण की वापसी के लिए काफी होते हैं। लेकिन अगर नाक के रोग को दूर करने से श्रवण में ज्यादा स्थायी सुधार नहीं हो पाये तो नली के प्रसार की जरूरत पड़ती है।

नली का प्रसार एक रबड़ बल्ब की सहायता से (चित्र 32) वर्तुलाकार रचना के सिरे या कर्ण कैथेटर के द्वारा करते हैं। पहली प्रक्रिया इस तथ्य पर आधारित होती है कि निगलने के समय या कुछ स्वरों या सन्नादों का उच्चारण करते समय कोमल तालु ऊपर उठता है और नासा-ग्रसनी के प्रवेश द्वार को पूरी तरह बन्द कर देता है; इस समय बल्ब को दबाने से नासा गुहाओं में हवा सम्पीडित हो जाती है और दोनों यूस्टेशियन नलियों में चली जाती है। प्रसारण एक नासा-द्वार में रचना-सिरा घुसा कर करते हैं तथा दोनों नासा द्वारों को एक साथ बायें हाथ की अंगुलियों से दबाते हैं। रोगी को थोड़ा पानी मुंह में लेने के लिए तथा तीन की गिनती पर निगलने के लिए कहा जाता है। इस क्षण बल्ब को संपीडित किया जाता है तथा हवा का एक विस्फोट यूस्टेशियन नलियों में एक खास आवाज के साथ घुस जाता है।

नली का प्रसार बिना पानी के प्रयोग के भी किया जा सकता है। रोगी को गिनती गिनने के लिए कहते हैं, तथा तीन की गिनती पर बल्ब को दबा कर हवा का कान में विस्फोट करते हैं। प्रसार सफल हुआ है या नहीं इस की जाँच करने के लिए ओटोस्कोप का प्रयोग किया जाता है (चित्र 33a तथा 33b)। यह एक पतली रबड़ नली है जिसके दोनों छोरों पर रचनात्मक कर्ण-सिरे होते हैं, जिन्हें प्रसाराधीन कान और परीक्षक के कान में लगाते हैं जैसा कि चित्र 33b में दिखाया गया है।

ऐसी हालत में जब उचित प्रसार के लिए रबड़ बल्ब और रचनात्मक सिरा उपयुक्त न हो या जब एकतरफा प्रसार करना हो, तब नली को एक कैथेटर के द्वारा, अगर जरूरी हुआ तो, अल्पावधिक नासा-संवेदनाहरण करके, प्रसार (प्रधमन द्वारा) करते हैं। कर्ण-कैथेटर (चित्र 34) एक 15-17 सें० मी० लम्बी धातु की पतली नली होता है जो एक सिरे पर कीप की आकृति की होती है। कैथेटर के आधार में चोंच वाले तल पर कोर के पास एक छोटा वलय लगा होता है। प्रयोग करने के पहले कैथेटर को उबलते पानी में विसंक्रामित कर लेते हैं। कैथेटर को नासा-तल के साथ अन्दर घुसा कर नीचे नासा-ग्रसनी तक ले जाते हैं तथा इसकी चोंच नीचे
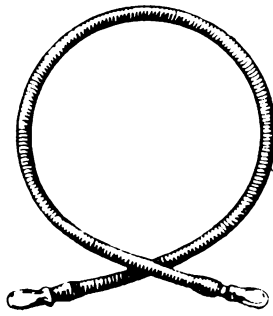
चित्र 33a. ओटोस्कोप
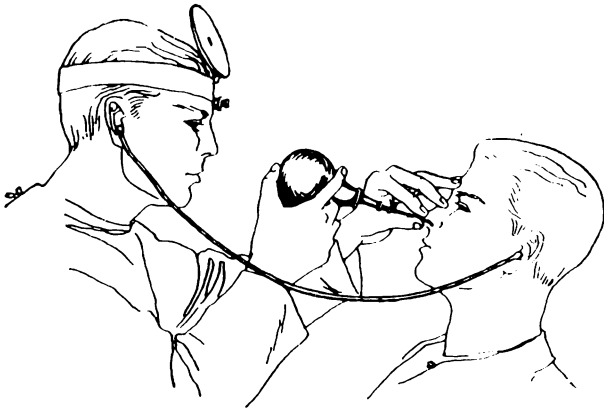
चित्र 33b. परीक्षक और रोगी के कान में घुसा हुआ ओटोस्कोप

चित्र 34. कर्ण-कैथेटर
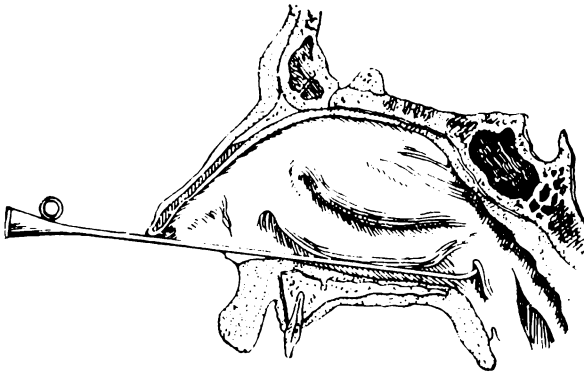
चित्र 35. कैथेटर के द्वारा नलीय प्रसार

की ओर निर्देशित होती है, फिर इसे बीच में लाते हैं और कैथेटर को पीछे की ओर तबतक खींचते हैं जबतक कि चोंच वोमर के पिछले किनारे को छू न ले। यहाँ नासा-ग्रसनी की पार्श्व भित्ति पर यूस्टेशियन नली का मुँह होता है। चोंच को बाहर की तरफ 180° मोड़ कर इसे यूस्टेशियन नली के मुंह में डाल देते हैं। इसके बाद प्रसार किया जाता है (चित्र 35)। कैथेटर को अत्यन्त सावधानी से और बिना किसी दबाव के घुसाना चाहिए। जरूरी होने पर चोंच के वक्र में परिवर्तन किया जा सकता है।

जब कैथेटर से हवा को धौंकते हैं, तो ओटोस्कोप से होकर एक खास ध्वनि सुनाई देती है। यह यूस्टेशियन नली के स्वाभाविक रूप तथा इसकी संभावित श्लेष्मीय अन्तर्वस्तुओं पर निर्भर करती है। एक हल्की धौंकती हुई ध्वनि नली के स्वाभाविक रूप का चिन्ह है, तथा जोरदार उच्च तान वाली ध्वनि नली में अवरोध का सूचक होती है, और निस्राव की उपस्थिति खास तरह की बुलबुलाती ध्वनि उत्पन्न करती है। कैथेटर को असावधानी से घुसाने पर वह श्लेष्मा-कला को चोट पहुँचा सकता है तथा नासा से रक्तस्राव हो जा सकता है। फटे हुए ऊतकों में वायु को धौंकने से वात-स्फीति हो सकती है।

कर्णपटह के ज्यादा शोष की स्थिति में प्रसार अत्यन्त सावधानी से दिया जाना चाहिए और कभी-कभी, कर्णपटह के फटने का डर होने पर, उसे नहीं किया जाना चाहिए।

प्रसार से श्रवण में कुछ घंटों से लेकर कुछ दिनों तक सुधार रह सकता

है। अतः प्रत्येक एक, दो या तीन दिन पर प्रसार करने तथा कुल मिला कर 5, 10 या 15 प्रसार करने की जरूरत पड़ सकती है। नासा-ग्रसनी को साथ ही 1 प्रतिशत सिल्वर नाइट्रेट घोल से या 0.25 प्रतिशत लूगोल घोल से पेन्ट करते हैं। आगे बढ़े मामलों में विभिन्न प्रकार के तापोपचार, डाएथर्मी (कम वोल्टता वाली उच्चावृत्तिक विद्युत-धारा से शरीर के आंतरिक भागों को गर्मी देने की विधि), पंकोपचार आदि प्रयुक्त होते हैं, जिससे परियोजक टूटते हैं और अस्थिकाओं का लचीलापन बढ़ता है; इलाज में सहायता मिलती है। प्रसार के साथ-साथ कर्णपटह की वायवी मालिश भी कर सकते हैं। अगर कोई विशेष उपकरण उपलब्ध न हो तो मालिश एक वायवी स्पेकूलम को श्रवण-नाल में ठीक से दबाये रख कर प्रति मिनट 60-100 बार हल्के प्रयास से सम्पीडित करके करते हैं, जिससे कर्णपटह-कला पर एकान्तरित ढंग से चूषण तथा दबाव पैदा होता है। यह कर्णपटह को अन्दर और बाहर गतिशील करेगा तथा संपूर्ण अस्थिका-शृंखला को गतिमान कर देगा। हाल के समय में, घृतकुमारी (एलोय) के योग के इंजेक्शन तथा फिलातोव-विधि से त्वचा-निरोप का प्रयोग किया गया है, और इसके अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं।

रोग निरोध. मध्यकर्ण-केटार को रोकने का सर्वोत्तम तरीका सामान्य नासा-श्वसन को सुनिश्चित करना है। उर्ध्व श्वसन पथ के तीव्र केटार के यथाशीघ्र उपचार और नाक तथा नासा-ग्रसनी के चिरकारी रोगों के सामयिक उपचार से गंभीर बधिरता की दर कम रखने में बेशक मदद मिल सकती है।

स्कूल पूर्व के तथा स्कूली बच्चों में एम्ब्लाइकोसिया (क्षीण श्रवण) के रोग-निरोध पर विशेष ध्यान देना जरूरी होता है। इस उम्र के बच्चों की समय-समय पर परीक्षा से ऐसे बच्चों का पता चलता है जिन्हें उपचार की आवश्यकता है। एडिनाइड की उपस्थिति से श्रवण बुरी तरह प्रभावित होता है और उनको समय पर निकाल देने से कई मामलों में श्रवण-हानि को बचाया जा सकता है।

## ओटोस्क्लेरोसिस

ओटोस्क्लेरोसिस लैबीरिंथ के अस्थि-कैप्सूल की एक विचित्र बीमारी है जो कम उम्र के लोगों में पायी जाती है तथा इसमें प्रगामी बधिरता तथा टिनिटस होता है।

हेतुकी. इस रोग का कारण पता नहीं है। यह आम तौर पर 15 से 25 वर्ष तक की महिलाओं में होता है; गर्भावस्था तथा प्रसव श्रवण पर अनुपयुक्त प्रभाव डालते हैं।

ओटोस्क्लेरोसिस में वैकृतिक परिवर्तनों के अन्तर्गत लैबीरिन्थ के चारों ओर की कठोर अस्थि एक स्पंजी अस्थिवत ऊतक में आंशिकतः रूपांतरित हो जाती है, जिसमें चौड़े मज्जा-क्षेत्र तथा शाखित वाहिकामय जाल के साथ ढीले संयोजी ऊतकों वाली हैवर्सियन नलिकाएं होती हैं। स्पंजी अस्थि आम तौर पर अंडाकार गवाक्ष के चारों ओर मध्यकर्ण की आन्तरिक भित्ति के प्रोत्तुंग के चारों ओर तथा फिर काक्लियर-शिखर पर और आंतरकर्ण-कुहर की परिधि के चारों ओर बिछ जाती है। विकार-प्रक्रिया, जो अंडाकार गवाक्ष में शुरू होती है, स्टेपिस पर भी आक्रमण कर देती है और कुछ समय में इसे पूर्णतया अलचीला बना देती है और अंडाकार गवाक्ष में छेद कर देती है।

रोगी श्रवण में प्रगामी हानि तथा टिनिटस की शिकायत करता है जो कि कभी-कभी बहुत ही कष्टदायी होता है। शारीरिक परीक्षण करने पर कर्णपटह और श्रवण-नाल सामान्य पाये जाते हैं। पहले बधिरता स्टेपिस के संधिग्रह के कारण चालन प्रकार की होती है, जबतक कि रोग इतना आगे न बढ़ जाये कि काक्लिया को भी समेट ले और साथ ही तंत्रिका-बधिरता पैदा हो जाये। विरोधाभासी श्रवण बहुधा ओटोस्क्लेरोसिस में पाया जाता है, जब कि रोगी अच्छा शोरगुल के वातावरण में ही सुनता है। कुछ लोगों का विश्वास है कि यह ऊंची आवाजों द्वारा उत्पन्न स्टेपिस-संघटन के कारण होता है जिसका अस्थिभवन शुरू ही हुआ होता है। ओटो-स्क्लेरोसिस का विभेदी निदान कठिन काम है क्योंकि यह मध्यकर्ण के चिरकारी केटार और श्रवण-तंत्रिका के तंत्रिका-शोथ के बीच में पड़ता है।

प्रवाह. श्रवण की प्रगामी हानि के बीच छोटी विसर्ग की अवधि भी होती है, लेकिन अधिकांश मामलों में किसी प्रकार के प्रतिकूल कारणों, जैसे प्रसव, संक्रामक रोग तथा मानसिक आघात के बाद की अवस्था में तेजी से अवनति होती है। प्रक्रिया आम तौर पर द्विपार्श्वीय होती है, हालांकि कभी-कभी एक कान में श्रवण हानि दूसरे के मुकाबले ज्यादा तेज होती है।

उपचार. ओटोस्क्लेरोसिस की हेतुकी अभी तक अज्ञात है। अतः इस रोग के उपचार में सामान्य रोग-निरोधक कदम विशेष महत्त्व के होते हैं। रोगी खुद नोट करता है कि कठिन शारीरिक श्रम करने पर तथा अधिक

तनाव होने पर श्रवण में कुछ कमी आ जाती है। इस तथ्य को व्यक्तिगत जीवन और काम के समय याद रखना चाहिए। कुछ मामलों में ओटोस्क्लेरोसिस में मौजूद चिरकारी प्रतिश्यायी कर्ण-शोथ का उपचार करने से रोगी की अवस्था में सुधार होता है तथा उपचार असफल रहने पर ओटोस्क्लेरोसिस के निदान की समीक्षा करने में मदद मिलती है। इसका स्वीकृत इलाज प्रभाजी डोज में लम्बी अवधि तक आयोडीन, फोस्फोरस, फाइतीन तथा ब्रोमीन औषधियां देना है। कुछ स्थितियों में इनका प्रयोग रोग के तेजी से बढ़ाव को रोक सकता है तथा आंशिक तौर पर श्रवण को वापस कर दे सकता है।

श्रवण-व्यायाम तथा ओष्ठ-पठन आम तौर पर ओटोस्क्लेरोसिस तथा कुछ प्रकारों के तंत्रिका-शोथ के उपचार में सफल साबित होते हैं।

ब्रोमीन औषधियां जब लूमीनल के साथ दी जाती हैं तो ये केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र की बढ़ी हुई उत्तेजना को कम कर देती हैं तथा टिनिटस को घटा देती हैं। टिनिटस रोगी की सामान्य अवस्था पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

हाल में ओटोस्क्लेरोसिस का इलाज शल्यक्रिया के द्वारा किया गया है। शस्त्रकर्म के अन्तर्गत वाह्य अस्थिय अर्धवृत्तीय नलिका में एक कृत्रिम छिद्र या गवाक्ष बनाते हैं (गवाक्षीकरण), ताकि ध्वनि तरंगों को लैबीरिन्थ तक मार्ग मिल सके।

गवाक्षीकरण के अतिरिक्त रोजेन के स्टेपिस मोबिलाइजेशन का प्रयोग ओटोस्क्लेरोसिस के परिणामस्वरूप संधिग्रहित हुए स्टेपिस की गतिशीलता को वापस लाने के लिए करते हैं। अगर यह तरीका असफल रहता है तो स्टेपिस की पाद पट्टिका में कुछ छिद्र बना देते हैं जिसे स्टेपिस की पाद पिट्टका का गवाक्षीकरण कहते हैं। इन्हें पूरी तरह से हटा भी सकते हैं।

## श्रवण-तंत्रिका का तंत्रिका-शोथ

श्रवण-तंत्रिका का व्यपजनन तथा शोथ पैदा करने वाली बीमारियों को एक आम नाम, श्रवण-तंत्रिका शोथ के अन्तर्गत रखा जाता है।

यह अवस्था मादकता, संक्रमण, चयापचयी तथा परिसंचरण विक्षोभ के कारण उत्पन्न हो सकती है।

श्रवण-तंत्रिका के स्कन्धों एवं तंत्रिकांतों का व्यपजनन तथा शोष धीरे-धीरे परन्तु सदा के लिए श्रवण-हानि पैदा करता है जिसका पता उच्च तान सीमा के कम होने तथा उच्च तान परिसर के काफी छोटा हो जाने से चलता है ( $C_4$ टयूनिंग फोर्क द्वारा ) अस्थि चालन में भी काफी कमी को भी इसी समय नोट किया जा सकता है।

बातचीत का श्रवण काफी समय तक कम या ज्यादा संतोषप्रद बना रह सकता है।

**1. टोक्सिक तंत्रिका-शोथ.** इस प्रकार के कठिन तंत्रिका-शोथ कुनैन, सैलीसीलीक अम्ल (ऐस्पीरीन), स्ट्रेप्टोमाइसिन, पारद-योग, आर्सेनिक तथा कुछ अन्य औषधियों के अत्यधिक सेवन के कारण हो सकते हैं।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि अतिसुग्राही रोगियों द्वारा स्ट्रेप्टोमाइसिन के ज्यादा दिन तथा अत्यधिक मात्रा में प्रयोग के परिणामस्वरूप श्रवण की बड़ी या पूर्ण हानि हो जा सकती है। फिर भी लैबीरिंथ का प्रघाण-भाग भारी लैबिरिंथाइन विक्षोभ के प्रभाव में आ जाता है।

चिरकारी मादकता अल्कोहल या तम्बाकू के व्यसन या बहुत से औद्योगिक रसायनों के लगातार प्रभाव के कारण हो सकती है। विक्षति आम तौर पर द्विपार्श्वी होती है तथा मुख्य तौर पर श्रवण-तंत्रिका के परिसरीय अंतों को अपनी लपेट में ले लेती है और बाद में, लेकिन बहुत ही कम, प्रघाण-तंत्रिका तक फैल जाती है।

अत्यन्त कठिन मादकता में प्रर्वानुमान ज्यादा आशापूर्ण होता है क्योंकि श्रवण की पूरी वापसी की संभावना रहती है; पर चिरकारी केसों में मध्य कर्ण के काफी उन्नत व्यपजनन पर उपचार का असर नहीं हो पाता है।

**2. संक्रामक तंत्रिका-शोथ.** लगभग सभी संक्रामक रोग आंतर-कर्ण में विकार उत्पन्न कर सकते हैं लेकिन ऐसे उपद्रवों की ऊंची दर मस्तिष्कमेरु के ततंत्रिका-शोथ, स्कारलेट ज्वर, मम्प्स, मीजिल्स, इन्फ्लूएंजा तथा टाइफायड में देखा जाता है। जन्मजात तथा उपार्जित सिफिलिस में भी आंतर-कर्ण की बीमारियां हो जाती हैं। लैबीरिंथ में जीवाणुओं और उनके टोक्सिन्स के प्रवेश करने के कारण, श्वास संक्रमण से खास तरह के परिवर्तन काक्लिय तथा श्रवणतंत्रिका-स्कन्ध में उत्पन्न होते हैं। रिलेपि्संग ज्वर में (अन्य संक्रमणों में भी यह हो सकता है) श्रवण विश्लेषकों के परिसरीय तंत्रिका-अन्तों में ही परिवर्तन नोट नहीं किये जाते, बल्कि परिसरीय तंत्रिकाओं, श्रवण तंत्रिका की न्यूक्लीआई मेडूला ओब्लोंगाटा तथा श्रवण

विश्लेषकों के केन्द्रीय प्रान्तस्था-विभाग (कोर्टी के अंग) में भी परिवर्तन नोट किये जाते हैं।

प्रमस्तिष्क कार्टेक्स के कुछ विभागों द्वारा दूसरे विभागों की क्रियात्मक संपूर्ति की असीम क्षमता, जिसे आइ० पी० पाव्लोव ने बार-बार साबित किया है, के कारण श्रवण के प्रान्तस्था विक्षोभ सामान्यतः बिना कोई चिन्ह छोड़े समाप्त हो जाते हैं, जबकि काक्लिया में परिसरीय तंत्रिका अंतों का विकार लगातार बना रहता है।

उपचार. संक्रमण के बाद श्रवण-तंत्रिका के तंत्रिका-शोथ का उपचार, संक्रामक रोग से छुटकारे के बाद एक स्वास्थ्यकर विधान का प्रयोग करके तथा शारीरिक औषधि की विभिन्न विधियों का प्रयोग करके किया जाता है, ताकि रोगी की शारीरिक प्रतिरोध क्षमता बढ़ाकर रोगी के सामान्य स्वास्थ्य में सुधार किया जा सके। रसायनिक औषधि के तौर पर पाइलो-कार्पीन तथा प्रभाजी खुराक में आयोडीन, स्ट्रीक्नीन, प्रोसेरीनम, डाइासोलम तथा एन्डोक्रीन औषधियां देते हैं तथा साथ ही विटामिन बी, और निको-टीनिक अम्ल भी देते हैं। जितनी जल्दी से उपचार शुरू हो श्रवण में सुधार की उतनी ही अधिक उम्मीद रहती है। साथ ही, संक्रामक तंत्रिका-शोथ के शुरू के केसों में पेनिसिलीन का अन्तर्पेशी इन्जेक्शन देना उचित रहता है। किसी सीमा तक ऊतकीय चिकित्सा देना भी सार्थक हो सकता है।

अन्य मामलों में, आंतर-कर्ण में पर्याप्त परिवर्तन या तो कई बीमारियों, खास कर मधुमेह में होने वाले चयापचयी विक्षोभों, के कारण होते हैं या फिर रक्त टोक्सिन के प्रभाव से, जैसे वृक्क-शोथ अथवा गाउट में।

तंत्रिका-शोथ का सबसे सामान्य कारण एथिरोस्क्लेरोसिस तथा वैस्क्यूलर अतिरक्त-दाब से आंतरकर्ण में संभरण-विक्षोभ हो जाना है। अतः मौलिक बीमारी की सामान्य चिकित्सा आवश्यक है।

## बधिर-मूकता

बधिर-मूकता पूर्ण द्विपार्श्वीय बधिरता के कारण या तो जन्मजात या फिर प्रारंभिक बचपन में, लगभग तीन वर्ष की आयु से पूर्व उपार्जित होती है। वह बच्चा जो बोला हुआ नहीं सुन सकता है, बोलना सीखने में असमर्थ हो जाता है या पहले उसने जो बोली सीखी थी उसे भूल जाता है। दूसरे शब्दों में, मूकता बधिरता का परिणाम होती है। जन्मजात बधिरता का कारण है लैबीरिन्थ का कुविकास या गर्भकालीन जीवन में लैबीरिन्थ में

कोई रोग हो जाना। कुछ विदेशी वैज्ञानिकों ने जन्मजात बधिरता के लिए आनुवंशिक कारकों को ही जिम्मेदार ठहराया है तथा इस प्रकार प्रतिकूल सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों के प्रभाव को नजरंदाज कर दिया है। इसी बीच, यह नोट किया गया है कि सोवियत संघ में बधिरमूक बच्चों की संख्या में पिछले तीन दशकों में दो तिहाई की कमी हो गयी है और यह विकास लोगों के भौतिक एवं सांस्कृतिक स्तर में विकास के साथ हुआ है।

चित्र 36. वायु तथा अस्थि-चालन टेलिफोन-रिसीवर के साथ श्रवण सहाय यंत्र

उपार्जित बधिरता जन्मजात बधिरता के मुकाबले ज्यादा पायी जाती है और बहुधा यह किसी संक्रामक रोग का परिणाम होती है। इसका प्रमुख कारण मस्तिष्कमेरु में तानिका-शोथ है; दूसरा कारण है स्कारलेट ज्वर, जो मध्य तथा आंतर-कर्ण को प्रभावित करता है, और मीजिल्स भी इसका एक कारण है। बधिरता टाइफाइड, सिफिलिस, डिप्थीरिया, मम्पस, इन्फ्लूएंजा तथा कुकुर-खांसी के कारण कम संख्या में होती है।

बधिरता के अन्य प्रमुख कारणों में है खोपड़ी को चोट लगना। ऐसे कारक जैसे जन्म बच्चे के सिर का संकीर्ण श्रोणि में फंस जाना, चिमटी का प्रयोग या देर तक श्वासावरोध अन्ततः बधिरता पैदा कर सकते हैं।

जन्मजात बधिरता में प्रघाण-क्रिया बहुधा अप्रभावित रहती है, जबकि उपार्जित बधिरता में, शोथ प्रक्रिया के आंतर-कर्ण या तंत्रिका-स्कन्ध में फैल जाने के कारण दोनों लैबीरिन्थाइन क्रियाएं लगभग हमेशा ही प्रभावित रहती हैं।

बधिर-मूक आवाज निकाल सकता है और बातचीत करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। चूंकि वह सुन नहीं सकता है, अतः उसकी आवाज एकतान होती है। शैशव में बधिर-मूकता का निदान अत्यन्त कठिन कार्य है। जिन कारकों को नोट करना चाहिये – वे हैं बच्चे में आवाज पर प्रतिक्रिया का अभाव तथा सीटी एवं ट्यूनिंग फोर्क परीक्षण के परिणाम।

श्रवण की उपस्थिति को निश्चित करने के लिए कई निरोपाधिक प्रतिवर्तों का प्रयोग करते हैं, जैसे औरोपाल्पेब्रल प्रतिवर्त, या पलकों का झपकना

तथा औरोपूपीलरी प्रतिवर्त, जिसका मतलब है बजते हुए ट्यूनिंग फोर्क को सुनाये जाने वाले कान के निकट रखने से पुतली में संकोचन व विस्तरण का प्रतिवर्त। ज्यादा कठिन मामलों में सोपाधिक प्रतिवर्त्तों के साथ प्रयोग का उपयोग श्रवण की उपस्थिति की जांच करने के लिए करते हैं।

उपचार. बधिर-मूकता के उपचार में अभी तक बहुत कम सफलता प्राप्त हुई है। अतः मौलिक दृष्टिकोण यही है कि दृष्टि, स्पर्श की संवेदना तथा अवशिष्ट श्रवण का उपयोग करके बधिर-मूक को बोलने का प्रशिक्षण दिया जाये। यह प्रशिक्षण विशेष विद्यालयों तथा बालवाड़ियों में दिया जाता है। प्रशिक्षण के तरीके का चुनाव उम्र, अवशिष्ट श्रवण के स्तर तथा अन्य व्यक्तिगत विशेषताओं के आधार पर करते हैं। बहुत से बधिर-मूकों ने न सिर्फ बात करना सीख लिया है और विज्ञान के तत्त्वों का अध्ययन किया है, बल्कि वे उच्चतर विद्यालयों से स्नातक भी हो गये हैं। अनेक बधिर-मूक वैज्ञानिक, कलाकार तथा विभिन्न क्षेत्रों में असाधारण विशेषज्ञ हैं।

**श्रवण सहाय यंत्र.** कान की किसी बीमारी से मुक्ति के साथ कभी-कभी कमोबेश, बढ़ी हुई स्थायी बधिरता हो जाती है जिससे रोगी दूसरे लोगों के साथ बातचीत नहीं कर सकता तथा अन्य उपयोगी गतिविधियों के लिए अक्षम हो जाता है। ऐसी हालत में श्रवण के लिये विद्युत सहाय यंत्र के प्रयोग की सलाह दी जाती है। सहाय यंत्र चित्र 36 में दिखाया गया है। सोवियत संघ में दो प्रकार के सहाय यंत्रों का उत्पादन किया जाता है— (क) टॉर्च बैटरी से चलने वाला सुवाह्य माइक्रोटेलिफोनीक श्रवण सहाय यंत्र, तथा (ख) रेडियो वाल्व श्रवण सहाय यंत्र, जिसमें विवर्धन क्षमता काफी होती है।

हाल में चश्मे के फ्रेम में बने ट्रांजिस्टर श्रवण सहाय यंत्रों का उत्पादन किया गया है। श्रवण सहाय यंत्रों का चुनाव विशेष श्रवण-पुनर्स्थापन केन्द्रों पर किया जाता है।

# कान की अभिघातज विक्षतियां

## वाह्य कर्ण का अभिघात

वहिर्कर्ण की स्थिति के असुरक्षित होने से प्रतिदिन के जीवन तथा उद्योगों में चोट लगने की आशंका रहती है। कन्ट्यूजन या यांत्रिक चोट वहिर्कर्ण

की त्वचा या उपास्थि में दरार (लैसिरेशन) पैदा करते हैं तथा ओथिमेटोमा, पेरीकौन्ड्राइटीस या फ्लेग्मौन भी बनाते हैं।

ओथिमेटोमा. खरोंच या लगातार दबाव सीरमी तथा सीरमी रक्तक द्रव का जमाव उत्पन्न करते हैं जो कंपमान रबड़ की तरह की नीलाई लिए हुए लाल रंग की सूजन की तरह तथा कर्णपाली के ऊपरी हिस्से में रहता है; चारों ओर के ऊतकों में इसमें कुछ ज्यादा दाब वेदना नहीं होती। छोटे ओथिमेटोमा का उपचार ठंडे और भीगे हुए ड्रेसिंग, दबाव पट्टी तथा 5 प्रतिशत आयोडिन टिंचर के पेन्ट से करते हैं। बड़े ओथिमेटोमा का इलाज ऐसेप्टिक नियमों का पालन करते हुए वेधन तथा पूय चूषण करके करते हैं तथा फिर दबाव पट्टी लगाते हैं। स्पष्ट संक्रामण होने पर स्वतंत्र छेदन, प्रतिजीवी उपचार, साथ ही "सौल्यूक्स" तथा पराबैंगनी किरणन दिया जाता है।

त्वचा लैसिरेशन के साथ सभी प्रकार के वहिर्कर्ण अभिघात का सबसे बड़ा दुष्परिणाम पेरिकान्ड्रियम का शोथ या वहिर्कर्ण पेरीकान्ड्राइटिस है। वहिर्कर्ण खूब सूज जाता है, लाल हो जाता है और उसमें दाब वेदना होती है। इस प्रकार की लम्बी प्रक्रिया का अन्त उपास्थि के परिगलन तथा वहिर्कर्ण के सिकुड़ने में होता है जो क्षत-चिन्ह वाले ऊतकों के बेडोल पिंड में परिणत हो जाता है।

उपचार. अभिघातक घाव का तुरंत सीवन करना चाहिए तथा ऐसेप्टिक पट्टी करके उसे बचाना चाहिए। अगर दुर्घटना के तुरंत बाद टांका लगा दिया जाये तो घाव जल्दी भर जाता है और वहिर्कर्ण के फटे हुए हिस्से भी भर जाते हैं। सपूयता तथा उपास्थि का परिगलन होने पर उपचार, छेदन करके मृत उपास्थि को हटा कर तथा पेनिसिलीन और स्ट्रेप्टोमाइसिन का अन्तर्पेशी इन्जेक्शन दे कर दिया जाता है। वहिर्कर्ण तथा श्रवण-नाल के मेम्ब्रेनो-कार्टिलेजीनस भाग की चोटों का इलाज प्लास्टिक शल्यक्रिया तथा टैम्पोनेड से करते हैं ताकि कर्णकुहर की अविवरता को रोका जा सके।

वाह्यकर्ण-कुहर के अस्थिय भाग में कभी-कभी मेन्डीबुलर जोड़ के अस्थिभंग के दौरान, चोट लग जा सकती है। बन्दूक की गोली से लगे घाव में कान को गंभीर संयुक्त चोट लग सकती है जिसमें एक साथ वहिर्कर्ण-कुहर, मैस्ताइड प्रवर्ध, मध्यकर्ण-गुहा या निचले जबड़े की संधि को चोट लग सकती है। नियमतः, ऐसी चोटों में कर्णपटह का विदार हो जाता है और बाद में बहुधा सपूय मध्यकर्ण-शोथ हो जाता है।

इन घावों के उपचार में प्राथमिक शल्यक्रिया से उपचार, ढीले विखण्डों को हटाना, वाह्यकर्णकुहर से स्वतंत्र निकास की व्यवस्था करना, साथ ही प्रतिजीवियों तथा सल्फोनामाइड्स से सामान्य व स्थानीय रसायन चिकित्सा शामिल हैं।

## मध्यकर्ण-कला का अभिघातज विदार

कर्णपटह का विदार कई प्रकार से हो सकता है, जैसे कान पर सीधे हाथ से चपट मारने से, छलांग लगाने पर और यहाँ तक कि कान पर चूमने से भी। पहली दो स्थितियों में विदार का कारण हवा का श्रवण-नाल में अचानक संपीडन होता है, जबकि अन्तिम स्थिति में हवा के चूषण तथा विरलन से भी कान का विदार हो सकता है।

कर्णपटह का छिद्रन पेड़ की पतली शाखाओं, पौधों के सूखे वृतों, बुनाई करने वाली सूइयों तथा क्रोचेट जिन्हें श्रवण नाल में घुसाया गया हो, से भी हो सकता है।

कर्णपटह में चोट का एक कारण एक अनुपयुक्त उपकरण का अनुभवहीन प्रयोग, जैसे कान से आगंतुक शल्य निकालने के लिए औरल पिंचर का प्रयोग, भी हो सकता है।

नियमतः खतरा कर्णपटह के विदार से उतना नहीं होता जितना कि तीव्र सपूय मध्यकर्णशोथ से, जो छिद्र द्वारा संक्रामक जीवाणुओं के प्रवेशन से बहुधा हो जाता है।

मध्यकर्ण-शोथ शुरू होने से पूर्व कर्णपटह के विदार को दरार की तरह के या फटे हुए अनियमित आकार के छिद्र से जिसके किनारों पर रक्त दिखायी देता है, साथ ही स्पष्ट शोथ लक्षणों की कर्णपटह में अनुपस्थिति से, पहचाना जा सकता है।

युद्ध-काल में कर्णपटह का विदार मध्य तथा वाह्य कर्ण पर सीधे आघात का, खास तौर पर बन्दूक की गोली के आघात का परिणाम हो सकता है। साथ ही, यह शेल से हुए वायुविस्फोट के या बम और खान-विस्फोट के कान पर पड़े असर के कारण भी हो सकता है।

कर्णपटह-विदार का उपचार श्रवण-नाल के बाहरी भाग में जमा सूखे रक्त को सूखी विसंक्रामित रूई से साफ करके किया जाता है। मध्यकर्ण के संक्रामण को बचाने के लिए कर्ण-डूश और यहां तक कि किसी भी प्रकार की बून्दें डालने से बचना चाहिए।

## मध्य और आंतर कर्ण के आघात

सिर्फ मध्य तथा आंतर-कर्ण की चोट के मामले बहुत कम देखे जाते हैं। ये मुख्यतः बन्दूक की गोली से हुए घाव से होते हैं, जिसमें एक साथ अगल-बगल के ऊतकों को चोटें लगती हैं; खासकर करोटि के वेधि-क्षत इसमें आते हैं। मध्यकर्ण की सीधी विक्षति मैस्टाइड प्रवर्ध को प्रभावित करती है तथा आनन-तंत्रिका के विभंग से आनन-तंत्रिका लकवाग्रस्त हो जाती है। ओरल क्षेत्र का घाव बहुधा मैन्डिबुलर संधि को भी समेट लेता है। मध्य कपाल के खात में तथा उसके चारों ओर की चोट में बहुधा मध्यकर्ण की छत में विदार तथा कर्णपटह का विदार हो जाता है। इन आघातों से मस्तिष्क में तरल कान से बाहर बहने लगता है।

आंतर-कर्ण में चोट से श्रवण तथा संतुलन में एक के बाद एक विक्षोभ पैदा हो जाते हैं। इसके सामान्य चिन्ह हैं—टिनिटिस, श्रवण हानि, सिर चकराना, मतली और यहां तक कि वमन। साथ ही, रोगी चलने में, यहां तक कि सीधा खड़ा होने में असमर्थ हो जाता है। इस अवस्था में निस्टेग्मस लगभग लगातार बना रहने वाला लक्षण है।

रोगी को बराबर बिस्तर पर लिटाये रखना चाहिए तथा प्रतिजीवी और. सल्फोनामाइड बड़ी मात्रा में देना चाहिए।

लगातार रक्तस्राव या सपूयता के कारण शल्यक्रिया की आवश्यकता पड़ सकती है।

कम कठिन केसों से अवशिष्ट कर्ण-शोथ का उपचार साधारण तरीके से करते हैं लेकिन यह याद रखना चाहिए कि बन्दूक की गोली के घाव के बाद हुए कर्ण-शोथ में उपद्रव हो सकता है तथा शल्य-क्रिया की आवश्यकता पड़ सकती है।

## कर्ण का वायु संघट्टन

बम, खदान तथा गोलाबारी के विस्फोट के कारण शोरगुल व संघट्टन देह में कई प्रकार के विक्षोभ पैदा करते हैं, जैसे कान में शारीरी रचनात्मक एवं क्रियात्मक परिवर्तन, विस्फोट के प्रभाव और ध्वनि द्वारा उत्पन्न क्षोभ बहुधा एक साथ मिल जाते हैं। ये कारण एक साथ श्रवण-विश्लेषकों के परिसरीय तंत्रिका-अन्तों तथा केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र के रोग पैदा करने में सहायक होते हैं। सबसे स्पष्ट चिन्ह केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र में चोट के होते

हैं, जैसे मस्तिष्क का कान्ट्यूजन या संघट्टन जो जड़िमा, मानसिक उदासी, पूर्ण बधिरता या वाक्-श्रवण का लोप होने तथा उन बहुत सारे तंत्रिकाई-वैज्ञानिक लक्षणों द्वारा इंगित होते हैं जो गोलाबारी के शिकार लोगों में ग्राम तौर पर पाये जाते हैं।

बधिरता ग्राम तौर से मध्य ग्रौर ग्रांतर-कर्ण पर विस्फोट के प्रभाव के उपरान्त होती है। इस ग्रवस्था के सबसे ग्राम लक्षण हैं कर्णपटहकला का विदार या उसके संगठन का पूरी तरह खतम हो जाना तथा काक्लिया एवं ग्रर्धवृत्तीय नलिका में रक्तस्राव एवं शरीररचनात्मक विस्थापन।

गोलाबारी के सदमों के रोगी ग्राम तौर पर टिनिटस, निर्बलता, भ्रमि तथा सिरदर्द की शिकायत करते हैं। बाद में श्रवण की ग्रधिक हानि के साथ-साथ श्रवण तंत्रिका के परिसरीय तंत्रिका-ग्रन्तों का व्यपजनन हो सकता है।

उपचार. गोलाबारी के सदमों के रोगियों का उपचार करते समय कन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र की तथा मानसिक हालत पर ध्यान देना चाहिये क्योंकि संघट्टन बधिरता मुख्यत: प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के विस्तृत दमन के कारण, जिसे ट्रांसलीमीनल इनहीबीशन कहते हैं, होती है जो मस्तिष्क के ग्रति उद्दीपन का परिणाम है।

ग्रत: कुछ मामलों में सुरक्षात्मक दमन नींद चिकित्सा कारगर हो सकता है।

पूर्ण संघट्टनजनिन बधिरता कभी-कभी पूर्ण वाक-हानि के साथ कुछ दिनों से लेकर कुछ सप्ताह तक कायम रहती है। कभी-कभी ये लक्षण जोरदार भावनात्मक ग्रनुभव के कारण ग्रचानक समाप्त हो जाते हैं। लेकिन ग्रधिकतर श्रवण की वापसी धीरे-धीरे होती है। वाक, श्रवण के मुकाबले पहले ग्रौर नियमत: तुरन्त ही वापस होता है। टिनिटस ग्रौर बधिरता का उपचार उसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार श्रवण-तंत्रिका के तंत्रिका-शोथ का। भारी बधिरता की हालत में श्रवण-सहाय-यंत्र का उपयोग करने की सलाह दी जा सकती है।

# कान की व्यावसायिक बीमारियां

कान की व्यावसायिक बीमारी के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं: (1) लगातार कर्कश ग्रावाज, शोरगुल तथा कंपन; (2) उच्च या निम्न व वायुमंडलीय दाब; (3) ग्रौद्योगिक विषाक्तता।

1. शोरगुल वाले धंधों के अन्तर्गत बायलर मेकर, रिवेटर, मोटर टेस्टर, बुनकर, नेल मजदूर आदि का काम आता है। लगातार शोरगुल तथा कंपन बधिरता उत्पन्न करते हैं जिसकी सीमा काम करने के समय पर तथा शोरगुल की प्रकृति और तीव्रता पर निर्भर करती है।

प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि बधिरता कोर्टी के अंग तथा स्कन्ध के व्यपजनन से होती है। शोरगुल वाले उद्योगों में हवा या अस्थि के जरिये संचरित हुए शोरगुल का प्रभाव निम्न आवृति वाले कंपन के प्रकंपन-प्रभाव से और बढ़ जाता है।

2. उच्च या निम्न वायुमंडलीय दाब का प्रभाव कौफर डैम मजदूरों, समुद्र के अन्दर भीतर तक छलांग लगाने वालों तथा वायुयान-चालकों में लक्षित किया जाता है। अपने वास्तविक रूप में स्थित श्रवण-नाल जहाज के उतरते या उड़ान भरते समय या कौफर डैम से हवा के अन्दर या बाहर पम्प करते समय बदलते हुए वायुमंडलीय दाब और मध्यकर्ण के अन्दर वायु-दाब के बीच संतुलन कायम रखती है। यूस्टेशियन नली का आंशिक या पूर्ण अवरोध इस प्रक्रिया में बाधा पहुंचाता है तथा कर्णपटह का अत्यन्त दर्द, पूर्ण उभार या खिंचाव संभवतः इसका विदार तक कर देता है। मध्य-कर्ण दबाव में अचानक कमी आने से अतिरक्तता के साथ रक्तवाहिकाओं का विस्फारण तथा पारस्रवण हो जाता है; अलग-थलग वाहिकाओं के विदार के बाद रक्तस्राव भी संभव है।

उच्च वायुमंडलीय दबाव में अचानक गिरावट से, जैसे कौफर डैम से बहुत जल्दी बाहर निकास होने पर ऐरो-एंबोलिज्म हो सकता है, जिसे आमतः कैसन-रोग कहते हैं, ( कैसन का अर्थ : कक्ष, जिसमें अत्यधिक दाब पर संपीडित हवा रखी जाती है )।

बढ़ते हुए वायुमंडलीय दाब से लगातार सामना होने के परिणामस्वरूप शरीर के ऊतकों में बहुत ज्यादा नाइट्रोजन जमा हो जाती है जो दबाव में अचानक कमी होने पर, जैसा कि कौफर डैम छोड़ते वक्त होता है, फेफड़े से सांस के साथ हवा के बाहर निकलने पर पूरी तरह नहीं निकल पाती है। ऐसी परिस्थिति में रक्त में परिचालित होने वाले नाइट्रोजन के बुलबुले कुछ महत्वपूर्ण वाहिकाओं को, साथ ही आंतर-कर्ण की वाहिकाओं को, अवरुद्ध कर दे सकते हैं। कैसन में वायुमंडलीय दाब में अचानक वृद्धि से पीड़ा और कर्णपट्ह कला का विदार हो सकते हैं।

3. आंतर-कर्ण के लिए सबसे हानिकारक औद्योगिक रसायन हैं सीसा,

इसके यौगिक। पारा, आर्सेनिक तथा बेंजोल के साथ नियमित काम करने पर तथा कार्बन मोनोक्साइड विषाक्तता से कान के प्रभावित होने के कुछ मामले देखे गये हैं।

सीसे की जगह हानि-रहित एलोयों का उपयोग करते सोवियत संघ में सीसे से हानि वाले व्यवसायों की संख्या कम करके निम्नतम तक पहुंचा दी गयी है। सीसे से विषाक्तता के मामले अब शायद ही कभी पाये जाते हैं।

बहुत सारे कदमों को उठाने के कारण व्यावसायिक रोग खास तौर पर शोरगुल के बीच रहने वाले मजदूरों के बीच श्रवणमंदता सोवियत संघ में अब शायद ही कभी होती है, जबकि क्रांति-पूर्व रूस में उसके होने की दर काफी ऊंची थी जैसा कि उपलब्ध सांख्यिकीय आँकड़े दर्शाते हैं। मजदूरों के रहन-सहन के स्तर और सांस्कृतिक स्तर के प्रति, साथ ही लघुतर कार्य-दिवस, सवैतनिक छुट्टियों, श्रम-सुरक्षा के नियमों तथा औद्योगिक संयंत्रों के लिए स्वच्छता के नियमों के प्रति सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी तथा सरकार की चिंता और सरोकार ने स्वभावतः ही मजदूरों के स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव डाला है। इसने शोरगुल वाले उद्योगों में भी व्यावसायिक रोगों को एकदम विरल बना दिया है। अपने तौर पर, कल्याण संगठन इस बात का ख्याल रखते हैं कि जरूरी निरोधक कदमों का अविलम्ब कार्यान्वियन हो।

रोग-निरोध. सामाजिक तथा व्यक्तिगत स्वच्छता आवश्यक है। औद्योगिक शोरगुल के खिलाफ व्यक्तिगत कदम कम उपयोगी हैं, क्योंकि कान को रूई से बन्द करना, ध्वनिरोक साधनों या काग के बने कनटोप का प्रयोग करना अस्थि चालन की दृष्टि से बेकार हैं।

सामूहिक निरोध में तकनीकी सुधार तथा हानिकारक प्रभावों के कारणों को दूर करना शामिल है। अतः औद्योगिक शोरगुल को दूर करने का लक्ष्य धातु-कर्म की एक विधि की जगह दूसरी विधि का प्रयोग करते प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, बायलर रिवेटिंग या धातु काटने का काम जो पहले काफी शोरगुल पैदा किया करता था, अब शोरगुल-विहीन विद्युत वेल्डिंग तथा कटिंग से किया जाता है। वेल्डिंग का उपयोग बड़ी-बड़ी धातु संरचनाओं, बहुमंजिली इमारतों, पुलों, जहाजों, स्टीम बायलरों, आदि को बनाने में किया जाता है। धातु के भागों की जगह प्लास्टिक का प्रयोग भी उसी दिशा में एक कदम है।

शोरगुल को मशीन के उपकरणों की सावधानी से हिफाजत करके तथा अतिरिक्त शोरगुल पैदा करने वाले दोषों को तुरन्त दूर करके कम किया जा सकता है।

औद्योगिक परियोजनाओं में शोरगुल तथा कंपन की सीमा का नियमन करने वाले सेनीटरी रेगुलेशन भी शामिल रहने चाहिए।

कैसन कर्ण-रोग की रोकथाम के लिए उच्च वायुमंडलीय दाब पर काम करने के वर्तमान नियमों का कड़ाई से पालन जरूरी है। यहां संकेत, सर्वोपरि, कौफर डैम में हवा को अन्दर या बाहर पम्प करने के लिए समय की सही लम्बाई तय करने की ओर है।

खास तरह के काम के लिए या उपयुक्त विधेयक में रखे गये उद्योगों की शाखा में काम करने के लिए वे उपयुक्त हैं या नहीं, इसकी जांच करने के लिए नव-नियुक्त मजदूरों की मेडिकल परीक्षा की जाती है।

कान के रोगों वाले व्यक्तियों को ऐसे काम में नहीं लगाना चाहिए जो श्रवण के लिए हानिकारक हों, जैसे शोरगुल करने वाले उद्योगों तथा कौफर डैम में।

ऐसे काम भी हैं, जिनमें सामान्य श्रवण आवश्यक होता है। जैसे—लौरी चालक (ड्राइवर), ट्रेन चलाने वाले दल, दूरभाष तथा टेलिग्राफ आपरेटर आदि का काम करने की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों के लिए श्रवण की परीक्षा से गुजरना जरूरी है। कोई भी व्यक्ति जो फुसफुसा कर बोली हुई बात को कम से कम 6 मीटर की दूरी तक नहीं सुन सकता हो वह उपर्युक्त कामों को करने के लिए अनुपयुक्त है, भले ही यह बात कान के एक ही तरफ क्यों न हो।

# नाक, ग्रसनी और स्वरयंत्र के रोग

## नाक व परानासा-विवरों के रोग

### नाक की शरीर-रचना

नाक ऊर्ध्व श्वसन-मार्ग का अग्र भाग है ( चित्र 37 )। इसे वाह्य नासा और परानासा या अतिरिक्त नासा विवरों वाली नासा-गुहा में विभाजित किया जाता है। वाह्य नासा अनियमित आकृति वाला त्रिकोणी पिरामिड है जो अस्थि, उपास्थि व कोमल ऊतक से बनी होती है। ललाट से सटा हुआ पिरामिड का ऊपरी कोण नासा मूल है जो नीचे व बाहर की ओर जाकर नासा-पृष्ठ बनाता है और निचले खुले कोण पर नासा सिरा के साथ वृत्तीय हो जाता है। नाक के नम्य और पार्श्विक फैलाव नासा-पक्षक या नासा-पंख कहलाते हैं, जिनकी निम्न स्वतंत्र कोरों का आकार ऐसा होता है कि वे नासाद्वार या अग्र नासारन्ध्र बनाती हैं।

#### नासा-गुहा

नासा-गुहा की ऊपरी सीमा कपाल-गुहा है; पार्श्वों में नेत्र-सॉकेट हैं; उसके नीचे मुख-गुहा होती है। नासा-पट नासा-गुहा को दो बराबर भागों में विभाजित करता है, जो थोड़े तिर्यक कोण पर नीचे की ओर उन्मुख नासा-पक्षकों से बाहर खुलते हैं। पीछे नासा-गुहा दो अंडाकार आकृति वाले द्वारों द्वारा नासा-ग्रसनी के साथ संचार करती है; ये द्वार पश्च नासाद्वार कहलाते हैं।

नासा-पट का पश्च-ऊर्ध्व अस्थिय भाग वोमर व झर्झरिकास्थि की अलम्ब पट्टिका से बनता है, जबकि अग्र-निम्न उपास्थिय भाग चौकोर उपास्थि से बनता है।
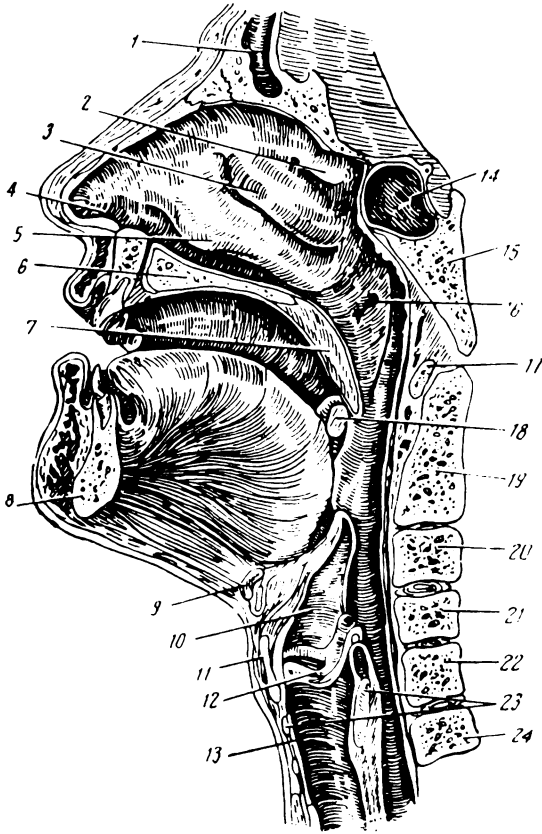
चित्र 37. नासा-गुहा, ग्रसनी व स्वरयंत्र का अग्र पश्च परिच्छद

(1) अग्र शिरानाल; (2) ऊर्ध्व नासाशुक्तिका; (3) मध्यनासा-शुक्तिका; (4) नासा-प्रघाण; (5) अधः नासा-शुक्तिका; (6) कठोर तालु; (7) नर्म तालु; (8) मैंडीबिल; (9) कणिका अस्थि; (10) एपिग्लोटिस; (11) अवटु उपास्थि; (12) सही स्वर रज्जु; (13) श्वास-प्रणाल; (14) जतूक अस्थि का पिण्ड; (15) जतूक शिरानाल; (16) श्रवण-नली का ग्रसनी छिद्र; (17) शीर्षधर का चाप; (18) तालु तुण्डिका; (19), (20), (21), (22), (24) – दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छठा ग्रीवा कशेरुका; (23) क्रिकोइड उपास्थि
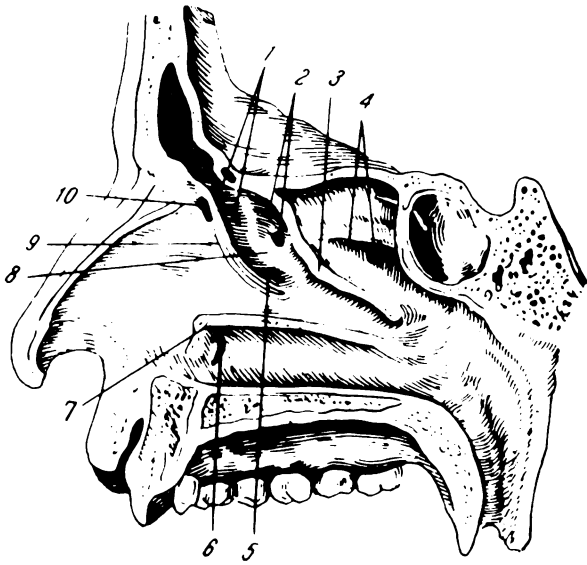
चित्र 38. नासा-गुहा की पार्श्व भित्ति

(1) अग्र झर्झरिका कोशिकाओं के छिद्र; (2) मध्यवर्ती झर्झरिका कोशिकाओं के छिद्र; (3) मध्यनासा-शुक्तिका के परिच्छेद की रेखा; (4) पश्च झर्झरिका कोशिकाओं के छिद्र; (5) मैक्सिलरी शिरानाल का छिद्र; (6) नासाश्रुवाहिनी का मुख; (7) अधः नासाशुक्तिका की परिच्छेद रेखा; (8) झर्झरिका बुदबुद; (9) समान प्रवर्ध का परिच्छेद दृश्य; (10) अग्र झर्झरिका कोशिकाएं

नासा-गुहा की वाह्य या पार्श्व भित्ति (चित्र 38) अत्यंत जटिल संरचना वाली है और व्यावहारिक दृष्टिकोण से सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र भी। वाह्य नासा से शुरू होकर यह निम्नलिखित अस्थियों से बनी होती है: नासास्थि, मैक्सिला का अग्र प्रवर्ध व नासा पार्श्व, अश्रु-अस्थि,, झर्झरिका-अस्थि, तालु-अस्थि व जतूक अस्थि के पक्षक प्रवर्ध।

नासा गुहा की पार्श्व-भित्ति से तीन कटक निकलते हैं जो शुक्तिका या नासा शुक्तिका कहलाते हैं, और इसे ऊर्ध्व, मध्य व अधः कुहरों में विभाजित करते हैं। नासाश्रु-वाहिनी का नासा-अन्त अधः कुहर के नीचे खुलता है। मध्य नासा-कुहर में निम्नलिखित चिन्ह होते हैं जिनसे वह
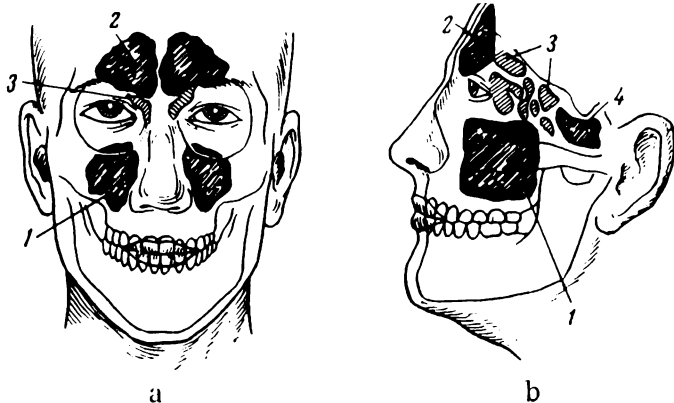
चित्र 39. परानासा विवरों के बीच संचार की योजना
(a) अग्र दृश्य ; (b) पार्श्व दृश्य ;
(1) मैक्सिलरी शिरानाल या हिगमार की शिरानाल ; (2) अग्र शिरानाल ;
(3) झर्झरिका गहन ; (4) जतूक शिरानाल

परानासा विवरों से संचार करता है: (1) बड़ी, मैक्सिलरी खात या हिगमार कोटर, जो मैक्सिला के पिण्ड में स्थित होता है; (2) अग्र शिरानाल (विवर), जो अग्र अस्थि के पट्टक भाग और (3) झर्झरिका गहन की अग्र कोशिकाएं। पश्च झर्झरिका-कोशिकाएं और जतूक-शिरानाल ऊर्ध्व नासा-कुहर के साथ संचार करते हैं (चित्र 39)।

झर्झरिका-अस्थि का चालनीरूप वाला पट्ट नासा-गुहा की छत बनाता है, जिसकी अग्र ढाल में नासा-अस्थियां होती हैं और पश्च ढाल में जतूक-शिरानाल की अग्र-निम्न भित्ति।

नासा-गुहा के फर्श के अग्र व पश्च भागों में क्रमशः मैक्सिला के तालु-प्रवर्ध और तालु-अस्थियों के क्षैतिज पट्ट होते हैं।

पूरी नासा-गुहा स्तरित, स्तंभाकार, रोमक उपकला से अस्तरित होती है जिसके रोम पश्च नासा-द्वार की ओर पीछे झुके रहते हैं।

ऊर्ध्वनासा-कुहर की श्लेष्मा-कला नासा-पट के सटे हुए क्षेत्र की श्लेष्मा और मध्य नासा-शुक्तिका के ऊपरी भाग के साथ एक विशिष्ट संवेदी उपकला से अस्तरित होती है, जिसमें परिसरीय तंत्रिका-अंतों का प्रशाखित जाल बिछा होता है। श्लेष्मा-कला का यह क्षेत्र घ्राण-कला कहलाता है;
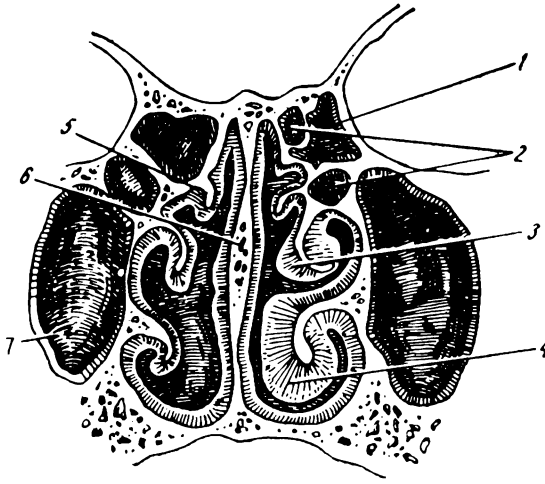
चित्र 40. नासा-गुहा का लम्बक्रास परिच्छेद जिसमें दायीं तरफ काफी फूला हुआ उच्छायी तन्तु दीख रहा है।

(1) नेत्र-गुहा; (2) झर्झरिका कोशिकाएं; (3) मध्य नासा-शुक्तिका; (4) अधः नासा-शुक्तिका; (5) ऊर्ध्व नासा-शुक्तिका; (6) नासा पट; (7) हिगमार का कोटर

यह बाकी नासा-श्लेष्मा से भिन्न है जो स्तरित, स्तभाकार रोमक उपकला से अस्तरित रहती है, और इसे श्वसन-श्लेष्मा कला कहते हैं। इस क्षेत्र में श्लेष्मा-कला की स्थूलता भिन्न हो जाती है। परानासा विवरों की श्लेष्मी ग्रन्थियों में यह सबसे पतली और अपूर्ण रहती है। नासा शुक्तिकाओं के क्षेत्र में सबसे स्थूल शिराओं का स्थूल जाल चूंकि बहुतायत में होता है इसलिए अवश्लेष्मिक कला के कुछ स्थानों पर गह्वर या उच्छायी तन्तु हो जाता है जो खासकर अधः नासा-शुक्तिका में, मध्य शुक्तिका की कोर पर और मध्य और ऊर्ध्व कांका के पश्च अन्तों में विशेष रूप से विकसित होता है (चित्र 40)।

कांकों में स्थित उच्छायी ऊतक की वाहिकाओं की भित्तियां अनैच्छिक पेशियों और प्रत्यास्थ तन्तुओं से भरी रहती हैं जो कि उच्छायी ऊतकों को विभिन्न रासायनिक, तापीय और मानसिक प्रभावों से फूलने और सिकुड़ने में मदद करता है। यह अचानक नाक भर जाने का कारण है जैसा कि कई बार देखने में आता है।

नासा गुहा की वाहिकाएं. नासा-गुहा का मूल धमनी-सम्भरण जतूक तालब-धमनी से होकर ग्राता है जो कि ग्रंतमैक्सिलरी धमनी की शाखा है। पार्श्व नासा-भित्ति के ऊर्ध्व भाग का रक्त-सम्भरण ग्रग्र ग्रौर पश्च झर्झरिका-धमनियों द्वारा होता है, जो कि नेत्र-धमनी की शाखाएँ हैं। शिरा-रक्त विभिन्न छोटी-छोटी रक्त-वाहिकाग्रों द्वारा इकट्ठा किया जाता है ग्रौर दो मुख्य प्रकाण्डों द्वारा ले जाया जाता है। ऊपरी नासा-क्षेत्र ग्रौर ऊर्ध्व परानासा-विवरों की कुछ शिरा-वाहिकाएं सीधे दृढ़ तानिका के ग्रनुदैर्घ्य शिरानाल में खुलती हैं।

नासा-गुहा की श्लेष्मा-कला में भी लसीका वाहिकाग्रों का सघन जाल बिछा होता है जो ग्रवदृढ़ तानिका ग्रौर ग्रवजाल-तानिका के क्षेत्रों के साथ संचार करता है। यह तथ्य उन महत्वपूर्ण कारणों में से है जिनकी वजह से संक्रामकों का नासा से कपाल-गुहा में प्रसार होता है।

नासा-गुहा की संवेदी तंत्रिकाएं त्रिधारा-तंत्रिका की प्रथम ग्रौर द्वितीय शाखाग्रों से ग्राती हैं।

घ्राण-विश्लेष्कों की शाखाएं नासा-गुहा में झर्झरिका-ग्रस्थि के चालनीरूपी पट के छिद्रों से ग्राती है ग्रौर विशिष्ट विभेदी उपकला-कोशिकाग्रों में वितरित की जाती हैं तथा घ्राण के ग्राहकों के रूप में काम करती हैं।

## नाक का क्रिया-विज्ञान

नाक श्वसन, घ्राण, ग्रनुनादी ग्रौर सुरक्षा कार्य करता है। नाक से ग्रभिश्वसित वायु का खुला मार्ग सामान्य श्वसन की ग्रनिवार्य शर्त है। नासा-गुहाग्रों में से जाने वाली ग्रभिश्वसित हवा निस्यंदित हो कर धूल-कणों से मुक्त हो जाती है, रक्त-ताप पर गर्म होती है ग्रौर शुष्क होने पर ग्रार्द्र बन जाती है। धूल के कणों, कीटाणुग्रों ग्रौर ग्रागंतुक पदार्थों के बड़े कण, सभी नासा-प्रघाण के दृढ़ रोमों में इस प्रकार पकड़ा जाते हैं जैसे किसी निस्यंद छन्ने में। ये रोम पुरुषों में काफी स्थूल होते हैं। नासा-कुहर की संकीर्णता ग्रौर ग्रनियमितता के कारण ग्रभिश्वसित वायु-धारा ग्रौर श्लेष्मा के ग्रार्द्र तल में निकट संपर्क होता है। इससे वायु गर्म ग्रौर ग्रार्द्र हो जाती है ग्रौर कड़े कण नासा-भित्ति पर नीचे बैठ जाते हैं। उपकला-रोमकों के, जो कि नासाग्रसनी की ग्रोर संकेत करते हैं, कार्यों से कण श्लेष्मा-स्राव

के साथ नासा-ग्रसनी में जाते हैं, जहां ये पाशबद्ध होकर कफोत्सरण द्वारा निकाल दिये जाते हैं या निगल लिये जाते हैं।

इस तरह फेफड़ों में पहुंचने वाली वायु का काफी सीमा तक निस्यंदन हो जाता है। मनुष्यों और जानवरों पर किये गये प्रयोगों से पता चलता है कि अभिश्वसित वायु में व्याप्त आधे से अधिक आगंतुक पदार्थ नाक में ही रह जाते हैं। मुंह से सांस लेने पर सारी अभिश्वसित धूल ग्रसनी, स्वरयंत्र और भीतर श्वसन-नली में चली जाती है जहां यह विभिन्न विकारी अवस्थाएं पैदा करती है।

मुंह से सांस लेने की तुलना में नासा-श्वसन के काफी स्वास्थ्यकर लाभ हैं, क्योंकि नासा-श्वसन में अभिश्वसित कीटाणु जो धूल से अलग नहीं किये जाते, नासा श्लेष्मा द्वारा हानिरहित बना दिये जाते हैं और मार दिये जाते हैं। नासागुहा धुएं और विषालु रसायनों पर काफी उदासीन कर देने वाला प्रभाव डालती है। नासा-श्वसन में पूर्ण या आंशिक अवरोध आने से निम्न श्वसन-नली के विभिन्न रोग हो सकते हैं, जैसे ग्रसनीशोथ, श्वास-प्रणाल-शोथ, श्वसनी-शोथ, आदि। नासा-अवरोध का परिणाम खासकर कुछ उद्योगों में काफी अप्रिय होता है।

नासा और नासा-ग्रसनी गुहाएं स्वर के अनुनादी कक्षों की तरह काम करती हैं, जहां स्वर का वायु-कंपन द्वारा विवर्द्धन किया जाता है और आवाज को सुस्वनिता दी जाती है। नासा-अवरोध में स्वर का अनुनाद समाप्त हो जाता है। आवाज में अननुनासिकता आ जाती है। यह अवस्था रोधन अननुनासिकता-दोष कहलाती है। यदि अंगघात के चलते कोमल तालु झोलदार हो जाता है तो ध्वनि-उच्चारण के समय नासा-ग्रसनी खुली रहती है और स्वर में भिन्न नासा गुण आ जाता है तो यह असंवृतीय अनुनासिकता-दोष कहलाता है।

नासा-श्वसन के अपूर्ण या पूर्ण अवरोध से गन्ध-बोध में विकार आ जाता है और यह कुछ विशेष कार्यों, खासकर रसायन और खाद्य उद्योगों के कर्मियों के लिए उनके काम के दौरान अवरोध पैदा करता है।

घ्राण-संवेदन न सिर्फ अभिश्वसित पदार्थों के विषय में संकेत करता है, बल्कि स्वाद-संवेदन के साथ मिलकर पाचन-नली में जाने वाले भोजन और पेय के गुणों को प्रकट करता है। इसके अतिरिक्त आई० वी० पावलोव के द्वारा किये गये कई प्रयोगों से यह साबित होता है कि घ्राण संवेदन
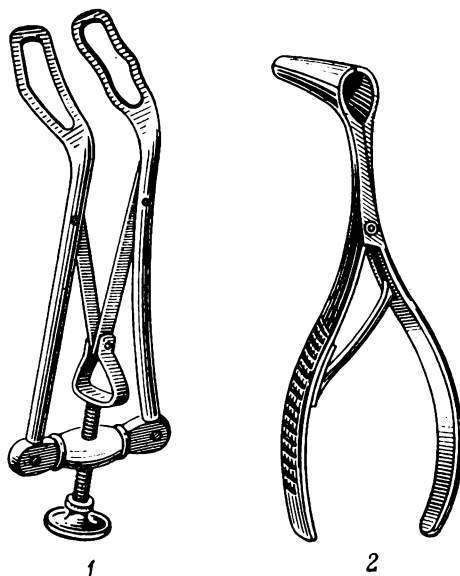
चित्र 41. नासा-स्पेकुलम के प्रकार
(1) फ्रेन्कल का स्पेकुलम ; (2) हार्टमैन का स्पेकुलम

जठर रसों के प्रतिवर्त-स्राव को उद्दीप्त करता है। यह उद्दीपन लाला-ग्रन्थियों से होने वाले प्रतिवर्त-स्राव से स्पष्ट हो जाता है।

नासा-श्वसन में अवरोध से फुफुसी-संवातन में बाधा पहुंचती है, क्योंकि उथला श्वसन होता है और अंततः आक्सीजन-हीनता हो जाती है। साथ ही देखा गया है कि नासा-श्वसन से श्वसन-नली के भीतरी भागों में लम्बे समय तक जो ऋणात्मक दाब रहता है, वह बेहतर फुफुसी-संवातन को सुनिश्चित बनाता है; इसमें मौखिक श्वसन से ज्यादा आक्सीजन अवशोषित होती है।

मौखिक श्वसन से भौतिक कुविकास, जैसे वक्ष- और आनन-अस्थि की कुरचना, दांतों का कुअधिधारण आदि होता है।

### नाक के परीक्षण में अपनायी गयी प्रक्रियाएं

नाक के परीक्षण में वाह्य नासा का पूर्व निरीक्षण और नासा-गुहा के भीतरी भागों का परीक्षण सम्मिलित है।
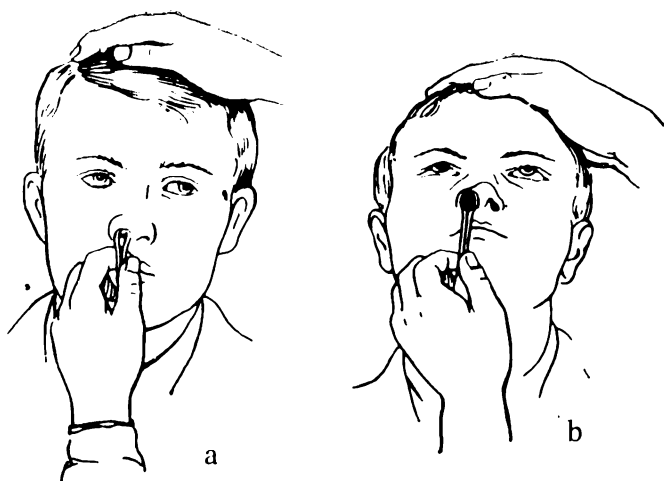
चित्र 42. अग्र नासा-दर्शन

(a) निम्न नासा-कुहर का परीक्षण; (b) मध्य और ऊर्ध्व नासा-कुहरों का परीक्षण

वाह्य नासा के निरीक्षण में नासा-प्रघाण पर ध्यान देना आवश्यक होता है। नाक के सिरे को ऊपर की ओर उठाना चाहिए और रोगी के सिर को बायीं ओर और फिर दाहिनी ओर बारी-बारी घुमाना चाहिए। नासा द्वारों के जरिये किया गया नासा-गुहा का परीक्षण अग्र नासा-दर्शन कहलाता है। इसे नासा-स्पेकुलम (चित्र 41), कृत्रिम प्रकाश और अवतल शीर्षदर्पण द्वारा किया जाता है। प्रकाश के स्रोत को रोगी के दायीं ओर रखा जाता है। बन्द स्पेकुलम के ब्लेडों को बायें हाथ में रख कर नथुनों में निवेशित किया जाता है और फिर धीरे से खोला जाता है ताकि नथुने विस्फारित हो जायें और नासा-गुहा दिखायी पड़ने लगे। शीर्षदर्पण से आने वाले किरणपुंज को नासा गुहा में फोकस किया जाता है। परीक्षण को स्थापित नियमों से ही करना चाहिए।

पहले नासा-पट के निचले क्षेत्र का ही परीक्षण किया जाता है यानी निम्न नासा-शुक्तिका और कुहर को देखा जाता है, फिर ऊपरी क्षेत्र पर, मध्य नासा-शुक्तिकाओं और कुहर पर, ध्यान केन्द्रित किया जाता है; इसके लिए रोगी के सिर को पीछे और उपयुक्त दिशा में मोड़ दिया जाता है। परीक्षण का यह तरीका अग्र नासा-दर्शन कहलाता है (चित्र 42)।

छोटे बच्चों में सुविधा के लिए नासा-स्पेकुलम के बजाय कर्ण-स्पेकुलम का प्रयोग किया जाना चाहिए।

बार-बार नाक का आन्तरिक दृश्य फूली हुई नासा-शुक्तिकाओं से अवरोधित होता है तो वाहिकानिकोचक दवाइयों, जैसे एड्रीनेलिन, एफीड्रीन, कोकेन के प्रयोग से लाभ होता है। इन औषधियों से पेण्ट करने पर शुक्तिका काफी आकुंचित हो जाती है और नासा-गुहा का काफी बड़ा भाग दिखायी देने लगता है।

यदि नासा-गुहा के पश्च क्षेत्र का निरीक्षण अग्र नासा-दर्शन से सुगम नहीं हो तो इसका नासा-ग्रसनी की ओर से निरीक्षण करना चाहिए। इसे पश्च नासा-दर्शन के नाम से जाना जाता है (चित्र 43)। इसमें जिह्वा को जिह्वा-अवसादी या स्पैचुला के द्वारा धीरे से दबाया जाता है और गर्म छोटे पश्च नासा-दर्पण को जीभ पर तबतक सरकाते हैं जबतक कि कोमल तालु दिखायी न देने लगे। फिर लैम्प के प्रकाश के एक बिन्दु को दर्पण पर फोकस किया जाता है ताकि यह पश्च नासा-गुहा और नासा-ग्रसनी के एक भाग का प्रतिवर्ती प्रतिबिम्ब दिखा सके। दर्पण को नासा-ग्रसनी में इस प्रकार निवेशित किया जाना चाहिए कि वह कोमल तालु, तालु-चापों, जीभ और ग्रसनी की पश्च भित्ति को नहीं छुए, नहीं तो रोगी उबकाई करने लगता है। दर्पण वोमर की पश्च कोर, दोनों तरफ की शुक्तिकाओं और अधः, मध्य और कभी-कभी ऊर्ध्व कला को, जो उनके अन्तर में स्थित है, प्रतिबिंबित करता है। इसके अलावा, कोमल तालु की पश्च सतह, नासा-ग्रसनी के वाल्ट, श्रवण-नलियों के ग्रसनी-छिद्रों आदि का भी परीक्षण किया जा सकता है (चित्र 44)।

पश्च नासा-दर्शन में एक प्रमुख कठिनाई सामने आ सकती है ग्रसनी का अतिसंवेदनशील होना। इसमें मरीज की जल्दी सांस घुट सकती है। खासकर छोटे बच्चों के मामले में ऐसा होता है।

इन रोगियों की ग्रसनी को 2-3 प्रतिशत कोकेन विलयन से पेंट कर दिया जाता है। बच्चों के मामले में अंगुली को भी नासाग्रसनी के परिस्पर्शन के लिये काम में लाया जाता है। परीक्षण दायें हाथ की अग्र अंगुली से किया जाता है और दूसरी अंगुली से बच्चे के गाल के मांस को उसके दांतों के बीच दबा कर रखते हैं, ताकि वह काट न सके (चित्र 69, पृष्ठ 182)।

नाक के परीक्षण के परिणामों की प्रोब द्वारा पुष्टि करनी चाहिए। प्रोब
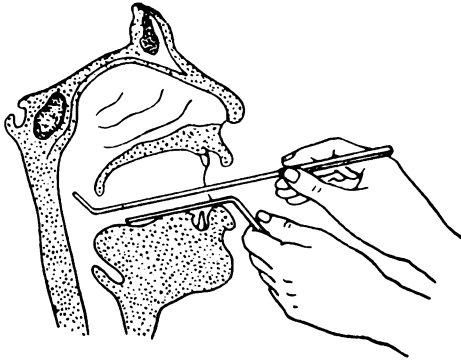
चित्र 43. पश्च नासा-दर्शन
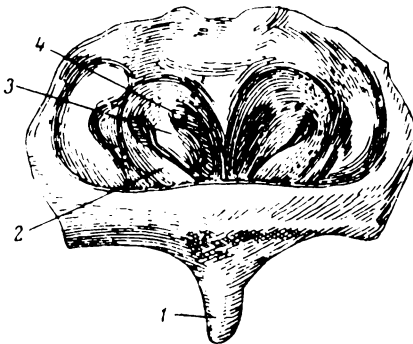
चित्र 44. पश्च नासा-दर्शन में शुक्तिकाओं का दृश्य

(1) युवुला; (2) निम्न नासा-शुक्तिका; (3) मध्य नासा-शुक्तिका; (4) ऊर्ध्व नासा-शुक्तिका

a b
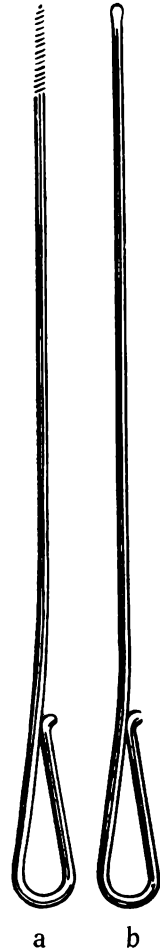
चित्र 45. नासा प्रोब

(a) थ्रेडेड प्रोब;
(b) नेत्री प्रोब

को श्लेष्मा की गाड़ता और शोथ-ऊतक तथा अर्बुदों की जानकारी के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है। वयस्कों में नासा-गुहा का नेत्रयुक्त नासा-प्रोब द्वारा प्रोब किया जाता है (चित्र 45 a और b)। अतिसंवेनशील रोगी में इससे पहले श्लेष्मा कला को 2-3 प्रतिशत कोकेन या डाइकेन विलयनों से पेंट कर दिया जाता है।

नासा-क्रिया के आकलन के लिए नासा-गुहा में वायु-मार्ग का परीक्षण करना चाहिए और घ्राण-संवेदन की तीव्रता देखनी चाहिए। रोगी को गहरी सांस लेने को कह कर और वायु को एक समय में एक नथुने द्वारा निकालने को कहकर नासा-गुहा की अनवरुद्धता को आसानी से जांचा जा सकता है। यदि मार्ग ठीक है तो नथुने के नीचे रखा हुआ रूई का टुकड़ा स्फुरित होगा।

प्रयोगिक कारणों से घ्राण की तीव्रता को विभिन्न गंधों द्वारा निर्धारित किया जाता है, जैसे हल्की गंध के लिए 0.5 प्रतिशत एसीटिक अम्ल विलयन, माध्यमिक गंध के लिये वाइन की स्पिरिट, तेज गन्ध के लिए साधारण वैलेरियन टिंक्चर। कपूर व लौंग के तेल को काफी तीक्ष्ण गन्ध के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

घ्राण-संवेदन की जांच करते समय एक नथुने को अंगुली से बन्द कर देना चाहिए और दूसरे खुले नथुने के सामने रूई या निस्यंदन पत्र के छोटे टुकड़े को एक या दूसरे घोल में डुबा कर रखना चाहिए। पहले हल्की गन्धों वाले विलयन का, और यदि रोगी उनको नहीं समझ सके, तो तेज गन्धों वाले घोलों का प्रयोग करना चाहिए।

## नासा-रोगों के उपचार की सामान्य विधियाँ

नासा श्लेष्मा को कोकेन या डाइकेन विलयनों के साथ संवेदनाहरण के लिए पेंट करना या चिकित्सा के उद्देश्यों से औषधि-विलयन का प्रयोग रूई के ऐप्लिकेटर द्वारा देख कर किया जाता है।

नाक में संरक्षी उपचार के हिस्से के तौर पर प्रधमन के लिए या फिर आपरेशन के बाद प्रधमन के लिए विभिन्न प्रधमनियों का प्रयोग किया जाता है।

नासा-श्लेष्मा को सिल्वर नाइट्रेट, ट्राइक्लोरएसीटिक और क्रोमिक अम्लों से दागने के पहले नासा-श्लेष्मा को 3-5 प्रतिशत कोकीन विलयन से पेंट किया जाता है।
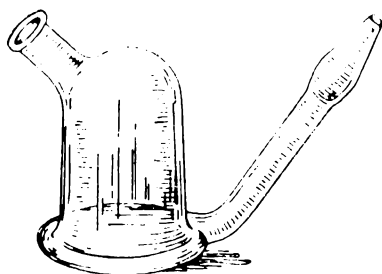
चित्र 46. नासा धोवन बर्तन

**नासा डूश.** नासा डूश काफी सावधानी से दिया जाना चाहिए और रोगी को इस विषय में विस्तार से जानकारी दे देनी चाहिए। एक सोवियत चिकित्सक ए० एफ० इवानोव ने जो तरीका सुझाया है उसमें रोगी के सिर को तकिये के सहारे ऊंचा रख कर विलयन को चम्मच द्वारा दिया जाता है। विलयन को धीरे-धीरे देना चाहिए, ताकि गला रुद्ध नहीं हो और घोल यूस्टेशियन नली में न चला जाए। रोगी को इसकी पूर्व सूचना देनी चाहिए।

नासा डूश को विशेष कांच के धोवन-बर्तन ( चित्र 46 ) में पानी या औषध-विलयन द्वारा करना चाहिए। केवल विसंक्रामित जल का ही प्रयोग करना चाहिए और औषध-विलयन को पहले आसुत या उबले पानी में घोल लेना चाहिए। बर्तन को दायें हाथ में पकड़कर रोगी इसकी पिछली नली को अग्र अंगुली से बन्द करके अग्र नली को जिसमें कि नासा-सिरा लगा रहता है, एक नथुने में निवेशित करता है। अंगुली को उठाने से द्रव बहकर नासा-गुहा को धोता है और फिर नाक के नीचे रखे बेसिन में जमा हो जाता है। द्रव की थोड़ी सी मात्रा को पिछली नली को बारी बारी खोलकर और बन्द करके नासा में सिरिन्ज किया जाता है। मरीज को चेतावनी दी जाती है कि वह इस प्रक्रिया में सिर को आगे झुका कर रखे। द्रव को देह के तापक्रम तक गर्म कर दिया जाता है, ताकि बाद में सिर-दर्द न हो। रोगी की इस प्रक्रिया के समय निगरण नहीं करने को कहा जाता है, नहीं तो द्रव यूस्टेशियन नली में जा सकता है। डूश के पश्चात नाक छिड़कने पर रोगी को एक नथुना और मुँह खुला रखने को कहा

जाता है ताकि नासा और नासा-ग्रसनी में दाब न बढ़े और इससे नासा-स्रावों के श्रवण-नाल द्वारा मध्यकर्ण में जाने के खतरे को भी रोका जा सकता है।

विशेष स्प्रेयर द्वारा नासा डूश करना नासा डूश का सुरक्षित तरीका है, जिसका वर्णन स्वरयंत्र के उपचार के सामान्य तरीकों के अध्ययन में किया गया है। स्प्रेयर के सिरे को नथुने में इस प्रकार निवेशित किया जाता है कि स्प्रेयर के बल्ब के आवर्ती संपीडन से द्रव चूर्णित होकर निम्न नासा-कुहर को भर दे।

नासा-गुहा को इसी तरीके से साफ किया जाता है और यदि नासा-प्रघाण में पपड़ी हो तो रूई को द्रव या कोमल पेट्रोलेटम से भिगोकर नाक में 15 से 20 मिनट तक रखना चाहिए ताकि छोटी पपड़ियां कोमल हो जायें और फिर पिन्सरों द्वारा हटा ली जायें। यदि पपड़ी, खासकर नासा गुहा के भीतरी भागों में श्लेष्मा से सटी हुई हो तो विशेष टेम्पोनेड की आवश्यकता होती है। रूई के टुकड़े को प्रोब पर रखकर नासा-गुहा में डाला जाता है और उसे आधे से पौने घंटे तक वहीं रहने दिया जाता है। इससे श्लेष्मा-स्रावों का प्रचुर उद्दीपन होता है, जिससे पपड़ियां जल्दी ही टूट जाती हैं। इनको बाद में नाक छिड़क कर या औजारों द्वारा हटा दिया जाता है। बून्दों को रक्त-ताप तक गर्म करके नाक में औषध को बिन्दूपाती द्वारा एक, दो या पांच बून्दों के अनुपात में दिया जाता है; सिर को थोड़ा पीछे की ओर झुकाया जाता है और नासा-सिरा को अंगुली द्वारा उठा दिया जाता है।

नासा-गुहा का थ्रेडेड प्रोब पर रूई रखकर तेल द्वारा स्नेहन किया जाता है, इससे इसको बाद में सूखी रूई के टुकड़े या पिन्सर द्वारा हटा दिया जाता है।

नासा-गुहा में शल्य-व्यतिकरण गेल्वेनो-काटरी, डायाथर्मो-स्कंदन या विशेष शल्य औजारों द्वारा किया जाता है।

गेल्वेनो-काटरी में निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाना चाहिए: (1) काटर को श्वेत तप्त नहीं करना चाहिए, क्योंकि रक्तस्तंभक प्रभाव लाल तप्त काटर द्वारा ही देखा जाता है, (2) नासा-गुहा की दोनों भित्तियां एक साथ न जलें और अभिवृद्धि न हो, इस पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

नासा-गुहा पर होने वाले आपरेशनों में शल्य-क्रिया के क्षेत्र को त्वचा

की तरह विसंक्रामित करना असंभव होता है। शल्य चिकित्सक को नासा-गुहा के पूय और श्लेष्मा को विसंक्रामित काटन एप्लीकेटरों द्वारा हल्के से साफ करके ही संतोष कर लेना चाहिए।

अनुभव यह दर्शाता है कि नासा-गुहा के सक्षम रक्त-संभरण के कारण इसकी चोटों में श्लेष्मा-कला के विसंक्रामक उपायों के बिना ही जल्दी सुधार हो जाता है, बशर्ते कि सामान्य शल्यक्रिया-नियमों का, जिनमें शल्य-उपकरणों और अन्य पदार्थों तथा शल्य-चिकित्सक के हाथों, आदि का विसंक्रामण भी शामिल है, दृढ़ता से पालन किया जाये।

नासा-गुहा पर शल्य-क्रियाएं ऐसे विभिन्न उपकरणों द्वारा की जाती हैं जो नासा-गुहा और उसकी विभिन्न संरचनाओं में फिट कर जायें।

अंतः नासाशल्यक्रियाओं में प्रमुख बाधा नासा-रक्तस्राव है। इसलिए आपरेशन से पूर्व रोगी के रक्त की स्कंदनता की जांच करके उसका रक्त-स्कंदन देख लेना चाहिए कि कहीं वह कम तो नहीं है। इसके अलावा, अरक्तता, हरितरोग या क्लोरोसिस, श्वेतरक्तता या ल्यूकीमिया, वृक्कीय रोगों आदि में अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए। कोकीन और एड्रीनेलिन द्वारा स्थानीय संवेदनाहरण से रक्त-स्राव को रोकने में काफी सहायता मिलती है।

अधिकतर रोगियों में नासा-गुहा का आपरेशन अस्थि के कोमल और कठोर भागों में स्थानीय संवेदनाहरण देकर किया जाता है। इसके लिए श्लेष्मा-कला पर 5 से 10 प्रतिशत कोकीन घोल, या 1 प्रतिशत, दो प्रतिशत या तीन प्रतिशत डाइकेन के साथ एड्रीनेलिन या एफीड्रीन का प्रयोग किया जाता है। 1 : 1 000 अनुपात के एड्रीनेलिन घोल का प्रत्येक मिलीग्राम कोकीन में मिला दिया जाता है, ताकि श्लेष्मा के रक्त का और भी निकास हो सके और साथ ही कोकीन का अवशोषण भी कम हो जाए। कोमल ऊतकों पर आपरेशन में दो या तीन पेंटिंग काफी होती हैं; जबकि ज्यादा बड़े आपरेशनों में, जैसे कि झर्झरिका-गहन या नासा-पट के उच्छेदनों में, थोड़ी अवधि के लिये कोकीन घोल में डुबोयी गयी छोटी जाली-पट्टी का प्रयोग करने की सलाह दी जाती है। नासा पर की शल्य-क्रियाओं में एड्रीनेलिन के साथ 0.5 प्रतिशत नोवोकेन घोलों का श्लेष्मा-कला में इंजेक्शन दिया जा सकता है।

नासा-गुहा पर शल्य-क्रियाओं में सार्वदैहिक संवेदनाहरण का बहुत कम प्रयोग किया जाता है। इसे दरअसल दुर्दम अर्बुदों को हटाने और छोटे

बच्चों में आगंतुक शल्यों को हटाने के कुछ मामलों में ही प्रयोग में लाया जाता है।

नासा और नासा-गुहा के शस्त्रकर्मोत्तर उपचार में नाड़ी-दर और रोगी की सामान्य अवस्था को देखना और रक्तपूर्ण-ड्रेसिंग बदलना सम्मिलित हैं।

ड्रेसिंग में चौड़ी जाली-पट्टी आती है जिसके अन्त या तो काट दिये जाते हैं या अन्दर की रूई बांधने के लिए फाड़ दिये जाते हैं और इसे सिर के चारों ओर स्थिर किया जाता है।

## वाह्य नासा के रोग

**दग्ध.** नासा की त्वचा के दग्ध आम तौर पर अधिकतर प्रथम डिग्री के आनन-दग्ध के ही भाग होते हैं जो धूप में अनावरण से, ज्वाला से संपर्क या क्वारट्ज लैम्प के अति किरणन से हो सकते हैं। लैम्प त्वचा पर रक्तता लाता है, इसके साथ वेदना भी होती है जो कुछ घंटे में बढ़ती है और तीन से पांच दिनों में कम हो जाती है। इस समय तक त्वचा में तनाव कम हो जाता है और सूजन भी कम हो जाती है। त्वग्रक्तिमा जल्दी ही विलुप्त हो जाती है और त्वचा का रंग हल्का भूरा हो जाता है और यह प्रतिवर्ण कहलाता है। चार या पांच दिनों बाद वाह्य त्वचा का शृंगी स्तर गिरने लगता है।

उपचार. त्वचा में तनाव की भावना और खुजली को कुछ हद तक सफेद पेट्रोलेटम, लेनोलिन या जिन्क-मरहम लगाने से कम किया जा सकता है।

निम्नलिखित सूत्र से बनाये गये मरहम से लाभ होता है:

Rp. Dermatoli 1.5
Lanolini
Vaselini āā 7.5
M. f. ung.
DS. मरहम।

बरो विलयन या उदासीन पाउडरों जैसे स्टार्च, टाल्क या जिंक आक्साइड से भीगी हुई ड्रेसिंग लगाने से भी मदद मिलती है। सूर्य-किरणों से लम्बे काल तक अनावरित रहने पर रोग-निरोध के लिए खुली त्वचा को पेट्रोलेटम या दूसरे हल्के मरहम से पेंट कर देना चाहिए।

**तुषार-चर्वण.** जमने में कान की सुग्राहिता नाक से अधिक है। नाक का तुषार-चर्वण दुर्बल या अरक्तता वाले रोगियों में होता है। नासा-त्वचा नासा-सिरे पर कभी लाल और कभी नीली हो जाती है। रोगी-क्षेत्र में खुजली होती है और गर्म कमरे में घुसने से वेदनापूर्ण दग्ध का बोध होता है। हिमीकरण के गहरे मामलों में बाद में ऊतकों का अंतर्संचरण, परिगलन और गहरी व्रणोत्पत्ति हो सकती है, हालांकि ऐसे केस बहुत कम देखे जाते हैं।

उपचार. इस अवस्था के मूल कारण को हटाना और देह को कठोर बना कर इसकी पुनरावृत्ति को रोकने का मुख्यतः प्रयास करना चाहिए। नाक पर पौने घंटे तक बरो विलयन और सौम्य मरहम की गर्म, गीली पट्टी लगा कर हल्के तुषार-चर्वण से उपचार होता है और वसा या बतख की वसा से स्नेहित की हुई पट्टियों को भी प्रयोग में लाया जाता है। बहुत गहरे हिमीकरण से परिगलन और व्रणोत्पत्ति हो सकती है जिसके लिए शल्य अतिकरण की आवश्यकता होती है।

**नासा-विसर्प.** यह रोग ज्यादातर स्ट्रेप्टोकाकिक हेतुकी का होता है और दस में से सात केसों में मुंह और करोटि पर प्रसर करता है। नासा-श्लेष्मा का विसर्पी-शोथ अधिकतर आनन-विसर्प के प्रसार से होता है। नासा-त्वचा की खरोचों या नासा-प्रघाण के फटने से प्राथमिक नासा-विसर्प भी हो सकता है। रोग अधिकतर शीतकंप, अचानक ज्वर, गहरी कृशता और तीव्र सरदर्द से प्रारंभ होता है। इसके दूसरे शास्त्रीय लक्षण हैं—गहरी दाब-वेदना और तेज ललायी जो तीव्र रूपरेखा वाले क्षेत्रों में मुंह पर अनियमित तौर पर फैलती है। नासा-सपक्षों के आसपास कभी-कभी त्वचा-विदर हो जाते हैं। नासादर्शी-परीक्षण में नासा-श्लेष्मा काफी लाल और स्पर्शसह्य होती है और कभी-कभी उसमें उभार भी होते हैं। क्षेत्रीय लसीका-ग्रंथियां रोग प्रारंभ होने के पहले दिन से ही फूलने लगती हैं। देह की अभिक्रिया-क्षमता में परिवर्तन और रोग-क्षमता के गुणधर्मों में विकार से तथाकथित आदतन या पुनरावृत्तिक विसर्प होता है जैसा परानासा-ग्रसनी के विसर्पों और ग्रसनी-टांन्सिलों के चिरकारी शोथों में देखा जाता है। श्लेष्मा-कला के विसर्पों के साथ अत्यधिक कृशता और शिराओं का घनास्रशिराशोथ या तानिका-शोथ देखे जाते हैं।

निदान. इसका निदान आसानी से किया जा सकता है क्योंकि नासा-विसर्प के साथ या उससे पहले ऐसी अवस्था चेहरे पर होती है।

उपचार. सर्वोत्तम इलाज पेनिसिलीन है जिसे 100 000 यूनिट मात्रा में चौबीस घंटों में छः बार दिया जाता है। इससे भी ज्यादा असरदार सिन्थोमाइसिन और लीवोमाइसिटिन हैं जो विषालुपन को समाप्त करके एक ही दिन में ज्वर कम कर देती हैं। इस औषधि को 0.5 ग्राम मात्रा में चौबीस घंटों में चार बार पांच से सात दिनों तक दिया जाता है। विसर्प का दूसरा अच्छा उपचार है स्ट्रेप्टोसाइड, जिसकी एक डोज वयस्क रोगी के लिए 0.5 ग्राम है और इसे चौबीस घंटों में पांच से छः बार देना चाहिए।

इसके अलावा शोथ-फोकस को एक या दो बार त्वग्रक्तिम-मात्रा में पराबैंगनी प्रकाश के प्रभावाधीन कर दिया जाता है। स्थानीय उपचार कपूर के तेल की अपूतिक ड्रेसिंग द्वारा किया जाता है, ताकि वेदनापूर्ण तनाव कम हो सके।

रोग-निरोध नासा-विसर्प का निरोध, परानासा-विवरों की अन्तर्पूयता और नासा-प्रघाण की खरोंचों और निस्त्वचनों के उपचारों से किया जा सकता है क्योंकि कच्चे में इनके खरोंच से संक्रामक और पुनरावृत्तिक विसर्प हो सकता है। विसर्पी रोगियों को पृथक रखना बेहतर होता है।

## नासा-प्रघाण के रोग

**नासा-प्रघाण का एक्जीमा.** एक्जीमा अधिकतर चिरकारी प्रतिश्याय, परानासा-विवरों में सपूयता और ग्रसनी-रोगों के साथ होता है। बारंबार नाक को छिड़कने, पोंछने आदि से यह अवस्था बड़े दिनों तक बनी रहती है।

गंभीर रोग की स्थितियों में नासा-प्रघाण के आस-पास की त्वचा में ललायी, सूजन और शल्कन हो जाते हैं और कभी-कभी विस्फोट, पपड़ी और सबसे वेदनापूर्ण विदर नासा-प्रघाण के कोनों में देखे जाते हैं, जो शोथ-ऊतक से घिरे रहते हैं। इन लक्षणों के साथ काफी खुजली भी होती है।

बच्चों में, खासकर उन बच्चों में, जिनमें निस्रावी प्रवृत्ति होती है, ऊपरी होंठ और मुंह के कोनों में क्षोभी-नासा आस्राव के लगातार रहने की वजह से एक्जीमा होने की अधिक संभावना रहती है। ऊपरी ओष्ठ फूला और पटलित पर्पटिका और पपड़ी से ढका रहता है और कई बार छोटी पुटिकाएं भी रहती हैं जो आसानी से फटकर अपरदित सतह पैदा कर देती हैं।

चिरकारी रोग के मामलों में शोथ-लक्षण कम रहते हैं और पूरा नासा-प्रघाण काफी घने स्कैबों से ढका रहता है। नासा-प्रघाण का लम्बा एक्जीमा पूय-संक्रमण पैदा कर सकता है, जिससे फुंसी, विसर्प और साइकोसिस के साथ सार्वदैहिक सपूय रोग का खतरा रहता है, हालांकि सार्वदैहिक रोग कम ही पाया जाता है।

उपचार. उपचार का उद्देश्य इस अवस्था के मूल कारण जैसे नासा, नासा-ग्रसनी और परानासा में पूय-आस्राव पैदा करने वाले रोग को समाप्त करना है। बच्चों में रोग को निर्मूल करने के लिए और सुधार लाने के लिए एडिनाइड उच्छेदन किया जाता है।

जब आवश्यक हो तब रोगी की सामान्य अवस्था में सुधार के लिए संखिया, और फैरम औषधियों, विटामिनों और मछली के तेल और उचित मौसमी और सेनिटोरियल उपचार करना चाहिए। पपड़ी हटाने के लिए और त्वचा साफ करने के लिए स्थानीय उपचार किये जाते हैं। सबसे अच्छा तरीका होता है दिन में आधे-आधे घंटे के लिए दो बार नाक को वनस्पति तेल या गर्म बेकिंग सोडा के विलयन से भिगोये हुए रूई टैम्पन से भरे रखना। मुलायम हुई पपड़ियां आसानी से हटायी जा सकती हैं। सूखी पपड़ियों को जबरदस्ती हटाने से न सिर्फ रक्तस्रावण होता है, बल्कि नयी पपड़ी भी बन जाती है। पपड़ियों को 2 प्रतिशत सेलिसीलिक मरहम लगाकर भी हटाया जा सकता है। पपड़ी को हटाने के बाद बचे हुए भाग का बोरिक, जिंक या सफेद पारद मरहम लगाकर स्नेहन किया जाता है। निम्नलिखित मरहम उपयोगी होते हैं :

Rp. Mentholi 0.1
Protargoli 0.2
Vaselini 10.0
M.f. ung.

निर्देश : नाक का मरहम

Rp. Bismuthi subnitrici 3.0
Vaselini albi
Lanolini āā 15.0
M.f. ung.

निर्देश : नाक का मरहम

Rp. Zinci oxydati 5.0

Lanolini

Vaselini albi āā 10.0

M.f. ung

निर्देश: नाक का मरहम

Rp. Ung. Hydrargyri praecipitati albi 2% 15.0

निर्देश: वाह्य इस्तेमाल के लिये. नाक का मरहम

Rp. Pastae Lassari 15.0

निर्देश: नासा-प्रघाण का दो बार स्नेहन करो

तीव्र स्रावी एक्जीमा को 1 या 2 प्रतिशत रिसोरचिनोल विलयन से या 3-5 प्रतिशत रिसोरचिनोल मरहम की गीली ड्रेसिंगों को बार बार बदलकर प्रभावी तौर से सुखाया जा सकता है।

**नासा-प्रघाण का साइकोसिस.** यह नासा-प्रघाण के रोम कूपों का स्टेफा-इलोकॉकल संक्रमण होता है।

इसका प्रारंभिक लक्षण तेज-लाल, ठोस पर्विकाओं का विस्फोट, जो पिन के सिरे के आकार की होती है और इस में रोम-छेदी पूयस्फोटिका होती है। ये शीघ्र ही शीर्ष पर विकसित होती हैं। इनके पूय पदार्थ जल्द ही सूख कर पीली या हल्की भूरी पपड़ी बनाते हैं जो रोग तने से सटी रहती है।

साइकोसिस पूय नासा-आस्राव में पाये जाने वाले स्टेफाइलोकोकास द्वारा होता है या दूषित अंगुलियों से घुसता है। यह रोग कई बार एक्जीमा के साथ देखने में आता है। पूर्ण पपड़ियों और अंतर्संचरण में इन दोनों में भेद करना कठिन हो जाता है।

उपचार. पूयस्फोटिकाओं से रोमों को पिन्सरों द्वारा हटाया जाता है। चूंकि रोग देर तक रहता है इसलिए इस प्रक्रिया को दोहराना चाहिए। पहले पपड़ी को नर्म करके हटाया जाता है, फिर त्वचा को 1 प्रतिशत सेलिसीलिक एल्कोहाल से भिगोयी गई रूई द्वारा विसंक्रामित किया जाता है और फिर सौम्य मरहमों द्वारा त्वचा का स्नेहन किया जाता है। साइको-सिस में कई बार घने अंतर्संचरण पाये जाते हैं और ये पोटेशियम परमेगनेट की गर्म गीली ड्रेसिंगों, और 1 प्रतिशत से 5 प्रतिशत सिंथोमाइसिन

इमल्शन, पराबैंगनी प्रकाश व बक्की किरणों के प्रयोग से ठीक हो जाते हैं। पेनिसिलीन को भी 10 से 15 लाख यूनिटों की पूरी मात्रा में दिया जाता है। इसे 100 000 यूनिटों के भाग में दिन में हर तीन घंटे पर दिया जाता है। साथ ही स्टेफाइलोफाग और स्वरक्त चिकित्सा भी दिये जाते हैं। सामान्य त्वचा को 1 प्रतिशत कपूर के तेल में भीगी रूई से साफ किया जाता है।

रोग की जल्द ही पुनरावृत्ति हो सकती है।

**नासा-प्रघाण की पनसिका.** यह सामान्य पनसिका या फुन्सी रोग के साथ पाया जाता है और नासा-प्रघाण की त्वक्वसीय ग्रंथियों, बाहरी वाहिनी और रोम कूपों में खरोंच इत्यादि से स्टेफाइलोकोकास के प्रवेश से होता है।

नाक का सिरा या सपक्ष लाल, तनावग्रस्त और स्पर्शसह्य हो जाते हैं। शोथी ललायी और सूजन मुंह के सीमावर्ती क्षेत्रों में फैल जाती है। नाक के सबसे शोथग्रस्त क्षेत्र के पूर्ण प्रवेश से कीप रूपी अंतर्संचरण और ललायी दिखायी देते हैं। यह क्षेत्र सर्वाधिक स्पर्शसह्य होता है।

कई बार अंतर्संचरण के स्थान पर विद्रधि बन जाती है और ज्वर बढ़ जा सकता है।

उपचार. उपचार संरक्षी रहता है, इसमें सौम्य मरहम लगाये जाते हैं या नाक को तीन-चार घंटों के लिए जाली-पट्टी पर बरो विलयन लगाकर सेंक किया जाता है। रोग के प्रसार के समय, जब तेज बुखार रहता है और शोथ सूजन बढ़ती रहती है, पेनिसिलीन या स्ट्रेप्टोमाइसिन की पूरी मात्रा दी जाती है। किसी भी परिस्थिति में निचोड़ना या विद्रधि के इवेक्युएशन का प्रयास नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे गंभीर उपद्रव हो सकते हैं। ये उपद्रव नाक से शिराओं के द्वारा संक्रमण के कपमल-गुहा में प्रसार होने से हो सकते हैं। लम्बे खिंचने वाले पनसिका रोग में क्वार्टज लैम्प द्वारा विकिरण, प्रोटीन चिकित्सा और स्वरक्त चिकित्सा से सहायता मिल सकती है।

## नासा-गुहा के रोग

**नासा-गुहा के साइनीकिया और अछिद्रता.** अधिकतर असामान्य अवस्थाएं, जिनके लिए चिकित्सा सहायता आवश्यक हो जाती है, नासा-गुहा के जन्मजात और उपार्जित आसंजनों और नासा-पट के विक्षेपों में पैदा होती

हैं। आसंजन दो प्रकार के होते हैं: (a) साइनीकिया, जिसका अधिकतर भाग पतले क्षत-ऊतक के तन्तु नासा-गुहा की भित्तियों के अलग-अलग हिस्सों को जोड़ते हैं, और (b) अछिद्रताएं या ऐसी अवस्थाएं जहां नासा-मार्ग पूरी तरह या आंशिक तौर पर अवरुद्ध होता है। आसंजन उपास्थि, अस्थि या क्षत-ऊतक के बने हो सकते हैं।

अधिकांश मामलों में तीव्र संक्रामक रोगों, जैसे चेतकु, डिफ्थीरिया टाइफाइड आदि के कारण हुई नासाव्रणोत्पत्ति के बाद आसंजन पैदा होते हैं। नासा-गुहा और नासारंध्रों में विरूपताएं ल्यूपस, सीफिलिस और राइ-नोस्क्लेरोमा के कारण भी हो सकती है; अभिघात और नाक की रसाय-निक या गैल्वेनिक कौटरी (रसायन या विद्युत द्वारा दाहन) से, जो आकस्मिक या चिकित्सार्थ उद्देश्यों से की जाय, कम हो सकती हैं। विभिन्न प्रकार के आसंजन अग्र या पश्च नासादर्शन और नासा-गुहा के प्रोबिंग द्वारा पकड़े जा सकते हैं।

उपचार. इसका उपचार शल्यक्रिया द्वारा किया जाता है, आसंजित तन्तुओं को स्कैलपल या गैल्वेनोकौटर द्वारा काट दिया जाता है और जबतक घाव न भर जाये, कटे भागों के बीच रबड़ या सेलुलायड भर दिये जाते हैं।

कई बार ज्यादा जटिल शल्यक्रिया की आवश्यकता पड़ती है।

## नासा-रक्तस्राव

बारम्बार नासा-रक्तस्रवण के कारण स्थानीय या दैहिक मूल के होते हैं। दैहिक मूल के रोगों में रक्त-रोग, ऐथिरोस्क्लेरोसिस, हृदय, वृक्क, यकृत आदि के रोग सम्मिलित हैं। ज्वरावस्था और कई संक्रामक रोगों के कारण वाहिका परिवर्तनों से प्रचुर रक्तस्राव होता है, जैसे इंफ्लूएंजा, एन्टेरिका और पुनरावृत्तिक ज्वरों, स्कारलेट ज्वर, चेचक और मलेरिया में, और अन्त में, सिर में रक्ताधिक्य, ग्रीवा के अर्बुदों और कुकुर खांसी से भी नासा रक्तस्रवण हो सकता है। नाक से रक्तस्राव अतिरक्तदाब में काफी देखा जाता है, कई बार यही उसका संकेत भी हो सकता है। नासा-रक्तस्राव के स्थानीय कारणों में हैं–नासा-अभिघात, नाक का छिदना, कठोर पपड़ी हटाने से नासा-श्लेष्मा में घात, रक्तस्रावी अर्बुद तथा नाक में व्रणोत्पत्ति। कई बार नासा और नासा-ग्रसनी की शल्यक्रिया के बाद रक्तस्राव होता है।
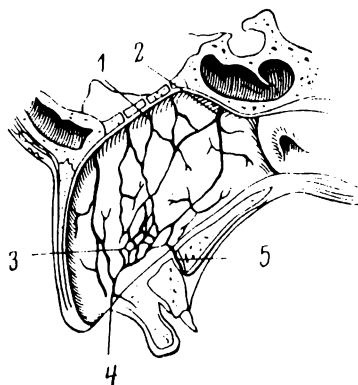
चित्र 47. नासा-पट्ट की वाहिकाएं

(1) झर्झरिका धमनी ; (2) पश्च नासा धमनी ; (3) नासा-पट्ट का वाहिकामय क्षेत्र रक्तस्रवण का प्रमुख स्थल ; (4) सम्मिलन ओष्ठ ऊर्ध्व धमनी के साथ ; (5) सम्मिलन तालु धमनियों से केनेलिस इन्सीसिवस द्वारा

नासा-रक्तस्राव का सबसे आम स्थल (चित्र 47) है नासा-छिद्रों से करीब एक सेंटीमीटर ऊपर नासा-पट का अग्र भाग। एथिरोस्क्लेरोसिस से हुआ रक्तस्राव नाक के पश्च क्षेत्र के बिन्दु से होता है। नासा-शुक्तिका या नाक के दूसरे भागों से रक्तस्राव बहुत कम होता है। रक्तस्राव आकस्मिक तौर पर बिना स्पष्ट कारण के प्रारम्भ होता है। कभी-कभी यह स्वतः रुक जाता है और कभी-कभी काफी समय तक रह कर रोगी से रक्त का निकास कर देता है, नाड़ी-दर कम हो जाती है, शारीरिक दुर्बलता और मूर्च्छा आ सकती है।

उपचार. नासा-रक्तस्राव की प्राथमिक चिकित्सा में रोगी को शांत वातावरण में, कालर और बेल्ट आदि खोलकर रख दिया जाता है। आकस्मिक गति और नाक छिड़कने पर रोक लगा दी जाती है। सरल केसों में रोगी को बिस्तर में सिर को ऊपर करके दो या तीन तकियों के सहारे बिठा देना और रक्तस्राव रोकने के लिए उसे नासा-क्षेप को नासा-पट पर दबाने के लिए कहना पर्याप्त है। यदि यह तरीका असफल रहे तो विसंक्रामित रूई के फाहे या जाली को सूखे या हाइड्रोजन पैराक्साइड या गर्म थ्रोम्बिन विलयन में भिगोकर रक्तस्रावी क्षेत्र पर रखा जाता है।

चित्र 48. ड्रेसिंग फारसेप्स
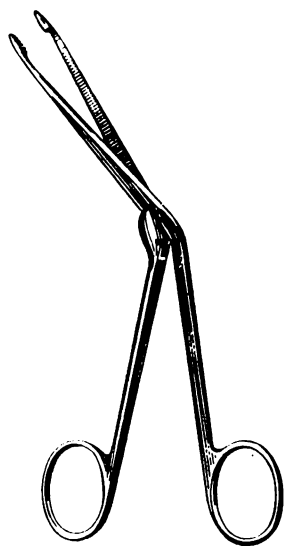
कुछ समय तक रोगी से इस फाहे को नासा-पट पर संपीडित करने को कहा जाता है। हल्के रक्तस्राव को इस तरह से आसानी से रोका जा सकता है। ज्यादा असरदार तरीका, खासकर जो पुनरावर्ती रक्तस्राव में अपनाया जाता है, रक्तस्रावी बिन्दुओं का शीर्ष-दर्पण और नासा-स्पेकुलम की सहायता से स्थान निर्धारण करना और इन्हें 5 प्रतिशत कोकेन और एड्रीनेलिन विलयन से पेंट करना तथा क्रोमिक अम्ल, ट्राइक्लोरो एसीटिक अम्ल या गेल्वेनोकौटर से कौटरीकरण करना है।

पूरी नासा-गुहा का अग्र टैम्पोनेड कोणी या घड़ियाली चिमटी (चित्र 48) से किया जाता है जो नासा-प्रघाण को चौड़ा करने के काम आता है। शीर्ष-दर्पण से नासा-गुहा को प्रकाशित किया जाता है। एक जालीदार रिबन के टैम्पन को बाद में नासा-गुहा के पश्च भागों, निम्न और मध्य कुहरों और नासा-प्रघाण में निरंतर मजबूती से पैक कर दिया जाता है (चित्र 49, 1)।

यदि ये सारे उपाय असफल रहें तो रोगी को तुरन्त अस्पताल में भर्ती करना चाहिए। अपवादस्वरूप मामलों में, खासकर नासा और नासा-ग्रसनी के आपरेशनों व नासा में चोट के बाद नासा-गुहा को पश्च नासा या पश्च टैम्पोनेड द्वारा पैक किया जाता है। (चित्र 49; 2, 3, 4)।

एक पतले रबड़ कैथेटर को निम्न नासा-कुहर से नासाग्रसनी तक डाला जाता है। जब उसका अन्त कोमल तालु के पीछे आता है तो उसे चिमटी द्वारा पकड़कर मुंह से बाहर निकाल दिया जाता है। एक जालीदार टैम्पन को पहले से काटकर तैयार रखा जाता है और इसे क्रोसरूप से गांठ की तरह मजबूत डबल सिल्क धागे से बांधा जाता है, जिसके तीन लम्बे अन्तों को खुला छोड़ दिया जाता है। टैम्पन के दोनों धागों से कैथेटर के पकड़े हुए हिस्से को बांधा जाता है और उसे फिर नासा-मार्ग से धागों के साथ निकाल लिया जाता है। फिर नासा-ग्रसनी में अंगुली डालकर प्लग को छत तक खींचा जाता है, जहां इसे नथुने द्वारा निकले धागों से स्थिर रखा
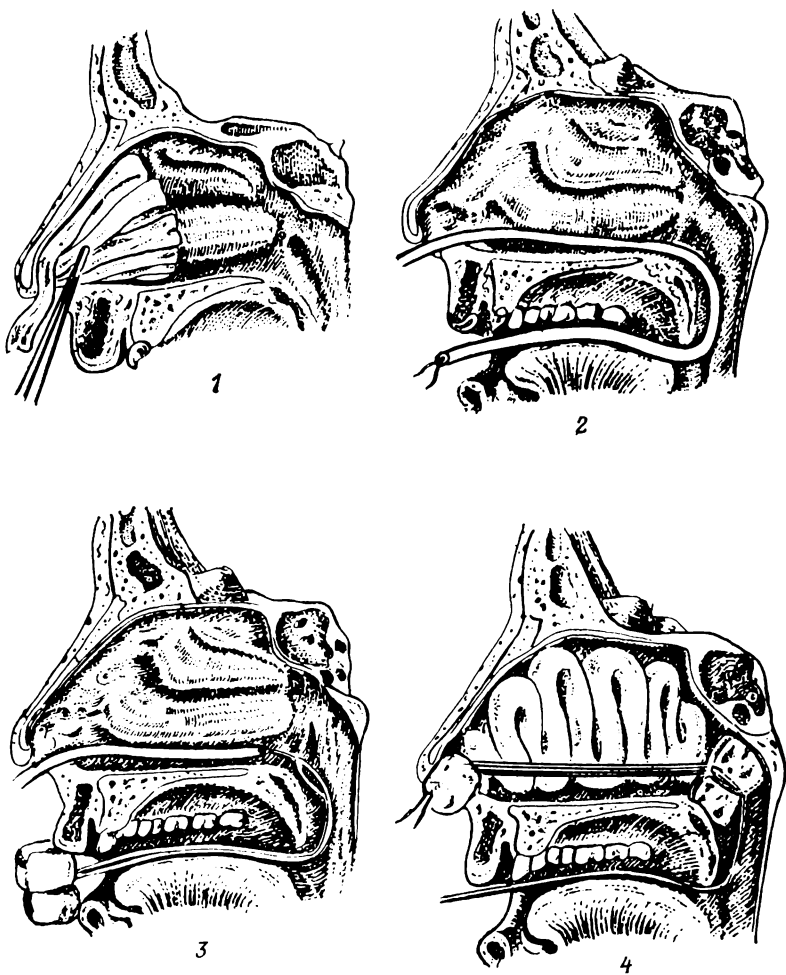
चित्र 49.

(1) अग्र नासा टैम्पोनेड; (2) पश्च टैम्पोनेड की प्रथम अवस्था; 3) पश्च टैम्पोनेड की द्वितीय अवस्था; (4) समापन अवस्था

जाता है; नासा-प्रघाण को सामान्य तरीके से बांधा जाता है और फिर नासा-द्वार के नीचे रूई के पैड से बांध दिया जाता है। कर्ण-रोगों को रोकने के लिए टैम्पन को नासा-ग्रसनी से एक या दो दिनों के बाद हटा दिया जाता है। इसे तीसरे धागे द्वारा खींचा जाता है।

तीव्र रक्तस्राव में रक्त-स्कंदन को बढ़ावा देने के लिए रसायन-चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है; 10 प्रतिशत कैल्शियम क्लोराइड को मुंह से दिया जाता है।

Rp. Sol. Calcii chlorati 10% 200.0

निर्देश: एक बड़ा चम्मच दिन में तीन-चार बार खाने के बाद।

दूसरी औषधि है विटामिन K का प्रसाधन विकासोलम।

Rp. Vicasoli 0.01

D. t. d. N. 10

निर्देश: एक गोली दिन में दो बार।

विकासोलम को अन्तर्पेशी द्वारा भी दिया जा सकता है।

Rp. Sol. Vicasoli 0.3% 5.0

D. t. d. N. 6

निर्देश: 5 मिली लीटर अंतर्पेशी से।

इन दवाओं का असर न होने पर 50 से 100 मि० ली० की मात्राओं में रक्ताधान किया जा सकता है। नासा-हेतु पर ठंडे आर्द्र पुल्टिश का प्रयोग किया जा सकता है।

## नासा-गुहा में आगंतुक शल्य और नासाश्मरी

बच्चों में नासा-गुहा में आगंतुक शल्य बहुत आम होते हैं। वे खेलते हुए विभिन्न छोटे पदार्थ, जैसे मोती, मटर, चेरी, सूर्यमुखी के बीज, बटन आदि नाक में डाल लेते हैं। वयस्कों में नासा-गुहा में आगंतुक शल्य अभिघात या गोली के घाव का परिणाम हो सकते हैं। चूनेदार पुंज, जिन्हें नासाश्मरी कहा जाता है, कई बार आगन्तुक शल्यों के चारों ओर जमे लवणों से बन जाते हैं। नासाश्मरी विभिन्न रूपों और आकारों के हो सकते हैं और कई बार नासा-गुहा के छेद जैसे ढले होते हैं।

आगंतुक शल्य ज्यादातर निम्न कुहरों में नासा-प्रघाण के समीप पाये जाते हैं जहां से वे, अगर नौसिखिया ढंग से प्रयास किया जाता है, तो भीतर ढकेल दिये जा सकते हैं। चिकने आगंतुक शल्य और नासाश्मरी वेदना नहीं पैदा करते। कुछ रोगियों में आगंतुक शल्य, नाक के एक ही तरफ अवरोध पैदा करते हैं। कुछ दूसरे रोगियों में आगंतुक शल्य अधुर
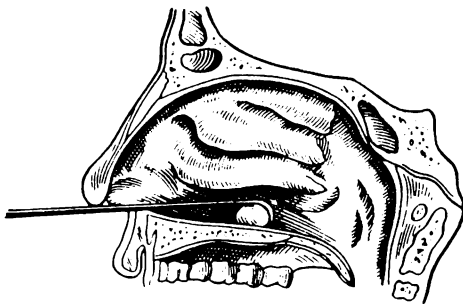
चित्र 50.

कुंठित प्रोब के द्वारा नासा-गुहा में से आगंतुक शल्य निकालना

दुर्गन्धमय पूय आस्राव करते हैं क्योंकि ये श्लेष्मा कला में शोथ पैदा करते हैं। एकतरफा पूय नासा आस्राव बच्चों में उस नाक में आगंतुक शल्य के द्योतक होते हैं।

बच्चे के मामले में आगंतुक शल्य हटाने के लिए उसे चादर में अच्छी तरह समेट लेना चाहिए, जैसे एडिनोटोमी में किया जाता है।

आगंतुक शल्य को सावधानीपूर्वक संवेदनाहारी औषधि देकर हटाया जाता है और नासा-श्लेष्मा का रक्ताधिहरण कोकेन या डाइकेन के एड्रीनेलिन या एफीड्रीन मिले विलयनों का स्प्रे करके किया जाता है। रक्ताधिहरण के बाद बच्चे को आगंतुक शल्य भरी नाक को छिड़कने को कहा जाता है। यदि बच्चा बहुत बेचैन हो तो लघु सार्वदैहिक संवेदनाहारी दिया जाता है। आगंतुक शल्य को कुंठित प्रोब डालकर दृष्टि-नियंत्रण में निकाल लिया जाता है (चित्र 50)।

## नासा-पट के रोग

**नासा-पट का विचलन.** वयस्कों में नासा-पट बहुत कम ही मध्य में रहता है। ज्यादातर यह सीध के एक या दूसरी ओर विस्थापित रहता है। ये विचलन विभिन्न आकारों के होते हैं (चित्र 51) और ये नासा-पट के अग्र और पश्च भाग, दोनों में, पाये जाते हैं, हालांकि पश्च भाग में ये बहुत कम पाये जाते हैं।

सरल विचलनों के अलावा नासा-पट में कई बार अस्थि-अभिवृद्धियां हो जाती हैं जो स्पर और कटक कहलाती हैं। ये प्रक्षेपण कई बार बीच से
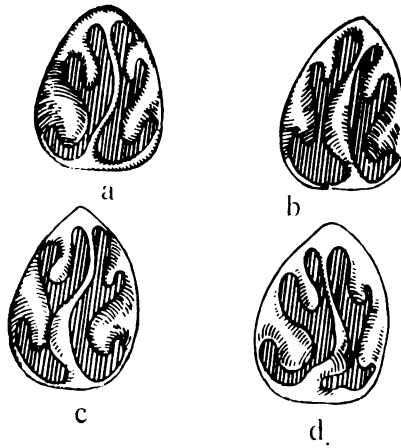
चित्र 51. नासा-पट के विचलन
(a) हल्का विचलन ; (b) फूली श्लेष्मा के साथ विचलन ; (c) एस-आकार का विचलन ; (d) फूली श्लेष्मा के साथ कोणीय विचलन

विचलनों के साथ मिलकर नासा-पट के उत्तर भाग में स्थित रहते हैं ; ज्यादातर उस स्थान पर, जहां उपास्थि वोमर से मिलती है।

रोग लक्षण. नासा-पट के विचलन का मूल लक्षण एक या दोनों ओर की नाक का अवरोध होता है।

निदान. यह अग्र नासा-दर्शन द्वारा सरलता से किया जा सकता है।

उपचार. नासा-विरूपता को शल्यक्रिया से ही ठीक किया जा सकता है। शल्य व्यतिकरण का संकेत नाक के एक या दोनों ओर से उचित नासा-श्वसन में अवरोध होता है।

नासा-पट का अधोश्लेष्मा-उच्छेदन निम्नलिखित तरीके से किया जाता है। संवेदनाहारी औषधि के बाद श्लेष्मा-कला और पर्युपास्थि में छेदन किया जाता है और इसे उपास्थि के उत्तर पार्श्व तक ले जाया जाता है। पर्युपास्थि के साथ श्लेष्मा-कला को, जो कि नासा के विचलित भाग पर होती है, नीचे की उपास्थि से उठाया जाता है, और उपास्थि को पहले छेदन की लाइन से काटा जाता है। इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि कहीं दूसरी ओर की श्लेष्मा में छिद्र न हो जाये। उपास्थि में छेदन से श्लेष्मा और पर्युपास्थि को दूसरी ओर उठाया जाता है, इसके बाद विरूपित भाग को नासा-पृष्ठ के एक सें० मी० चौड़े उपास्थि भाग को छोड़ कर,
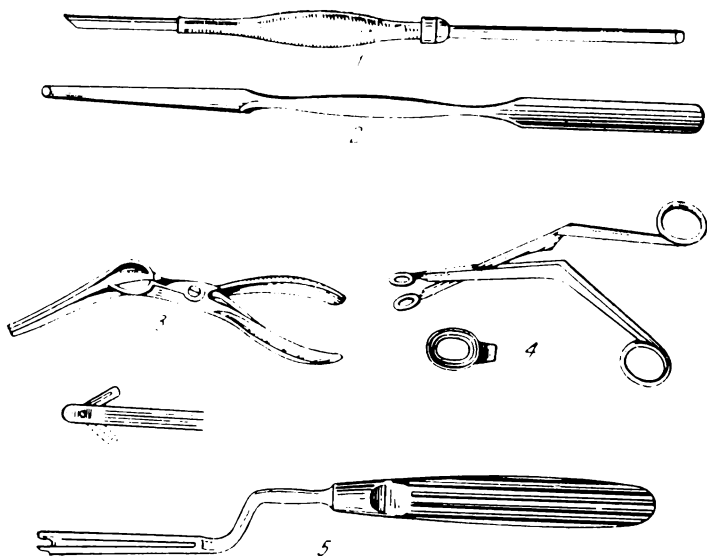
चित्र 52. नासा-पट के अध श्लेष्मा उच्छेदन के उपकरण

(1) श्लेष्मा विच्छेदक ; (2) रैस्पेटरी एलीवेटर ; (3) किलान स्पेकुलम ; (4) नासा फारसेप्स ; (5) ट्रेफाइन

ताकि "धंसी नासा" नहीं बने, हटाया जाता है। नासा-पट से विरूपित अस्थि और उपास्थि हटाने पर श्लेष्मा और पर्युपास्थि को वापस साथ रखा जाता है और इस स्थिति में दोनों को नथुनों में नासा-पैकिंग के द्वारा चौबीस घंटे तक रखा जाता है। नासा-श्लेष्मा के आलम्ब कुछ दिनों में जुड़ जाते हैं और कुछ दिनों में विरोहण हो जाता है। पैक को हटाने के बाद नासा-वायुमार्ग कुछ दिनों तक अपनी पूरी क्षमता में नहीं आता, क्योंकि श्लेष्मा में प्रतिक्रिया-शोथ व सूजन रहती है। अस्थि और उपास्थि से बने विचलित नासा-पट के बजाय सीधा मुख्यतः कला से बना नासा-पट विकसित हो जाता है। नासा पैकिंग की आवश्यकता के चलते इस आपरेशन के बाद टांसिल-शोथ और तीव्र मध्यकर्ण-शोथ जैसे उपद्रव पैदा हो सकते हैं।

नासा-पट के अधोश्लेष्मा-उच्छेदन में काम में लाये जाने वाले उपकरण चित्र 52 में दिखाये गये हैं। सोवियत शल्य-चिकित्सकों, वी० आई० वोयाचेक और एम० एफ० त्सितोविच ने नासा-पट का एक नया किफायती

ऑपरेशन सुझाया है। इसमें नासा-पट की मूल संरचना के अस्थिय और उपास्थिय भाग को हटाये बिना, इसे बीच में लाया जा सकता है। इस स्थिति में प्रक्रिया रिड्रेसमेंट और संयोजन की होती है, या फिर इसमें वलयरूपी उपास्थि के भाग को हटाया जाता है, जो वृत्ताकार उच्छेदन कहलाता है।

**नासा-पट का रक्तगुल्म और विद्रधि.** रक्तगुल्म आम तौर पर बाहरी आघातों का परिणाम होता है जो नासा-पट की पर्युपास्थि के नीचे रक्तस्राव करते हैं। यदि रक्तगुल्म को समय पर नहीं खोला जाता है तो उसमें द्वितीयक संक्रमण के कारण तकरीबन हरदम विद्रधि हो जाती है। विद्रधि नासा-विसर्प, कृन्तकों की जड़ों के क्षरण, संक्रामक रोगों या विक्षेप के साथ भी हो सकती है। नासादर्शन में और नासा-सिरा को अंगुली से उठाने से बैग जैसा तेज लाल उभार नासा-पट के दोनों ओर देखा जाता है, जो नेत्री प्रोब से छूने पर गर्त कर जाता है। नासा-पट की विद्रधि में आम तौर पर तेज ज्वर होता है, काफी स्वप्रत्यय लक्षण होते हैं, जैसे सरदर्द और गहरा नासा-अवरोध। यदि निदान में संदेह रहता है तो विद्रधि में छेद करके उसके भागों को सिरिंज द्वारा खींच कर देख लिया जाता है।

उपचार: नासा-पट के रक्तगुल्म और विद्रधि का उपचार खुले शस्त्र-कर्मी छेदन से होता है, ये कई बार नासा-पट के दोनों ओर दिये जाते हैं। ऐसी स्थिति में छेदन भिन्न-भिन्न स्तरों पर किये जाने चाहिए। यह शल्य-क्रिया-सहायकों पर छोड़ी जा सकती है। इसके बाद विद्रधि का निकास छेदन में से डाले गये पैकों द्वारा किया जाता है। विद्रधि में बचे छिद्र से पर्याण नासा-विरूपता आ सकती है क्योंकि चतुष्कोणी उपास्थि का आंशिक नाश हो जाता है।

## नासा के तीव्र शोथ

**तीव्र नासा-शोथ.** तीव्र नासा शोथ, जिसे तीव्र प्रतिश्याय या जुकाम कहा जाता है, ऊपरी श्वासनली का सर्वाधिक आम शोथ होता है। यह या तो स्वतंत्र रूप से होता है या फिर तीव्र संक्रामक रोग के पूर्वरूपी लक्षण के तौर पर। संक्रमण तीव्र प्रतिश्याय का सबसे आम कारण होता है। शरीर की कंपकंपी उसे कीटाणुओं के प्रति सुग्राही बना देती है। उन तीव्र संक्रामक रोगों में जो प्रतिश्याय के साथ पाये जाते हैं, इंफ्ल्युएंजा एक है,

जिसमें ऊपरी वायु-मार्ग यानी नासा-गुहा आदि के रोग के मुख्य या प्राथमिक बिन्दु होते हैं, इसके साथ इसमें मीजिल्स, स्कारलेट ज्वर, डिफ्थीरिया और विसर्प भी रहते हैं। जुकाम की ज्यादातर तीन अवस्थाएँ होती हैं। शुरूआत में नाक गर्म और शुष्क महसूस होती है, छींके आती हैं और 37° सें० के ऊपर ज्वर रहता है। नासा-श्लेष्मा लाल और शुष्क रहती है कुछ घंटों बाद या कभी-कभी दो या तीन दिनों में रोग का लक्षण-चित्र बदल जाता है, श्लेष्मा-कला फूल जाती है, नाक से जल का प्रचुर आस्राव गिरने लगता है। इसी समय नासा और नासा-ग्रसनी में तनाव की भावना कम हो जाती है। ये दूसरी अवस्था के लक्षण हैं।

फिर नासा-आस्राव में श्लेष्मा हो जाता है और फिर अलग हुई उपकला तथा श्वेतकोशिकाओं के मिलने से आस्राव सपूय हो जाता है। नासा-आस्राव कम हो जाता है, श्लेष्मा कम विरोहित होने लगती है और एक या दो हफ्ते में स्वास्थ्य लाभ हो जाता है।

जुकाम की पहली अवस्था में सिर में भारीपन और दर्द होता है। बाद में शोथ का अग्र और हिगमार शिरानालों द्वारा प्रसार हो जाता है तथा ललाट और नेत्र-साकेट में वेदनापूर्ण बोध होता है। नासा-अवरोध से स्वर की सुस्वनिता पर असर होता है और उसमें नासा-गुण आ जाता है। कभी-कभी घ्राण-संवेदना भी कम हो जाती है।

प्रतिश्याय से नेत्र श्लेष्मा में उपद्रव हो जाते हैं, जिसके लक्षण हैं नेत्रों का लाल होना और अतिअश्रुस्रवण। संक्रमण के यूस्टेशियन नली द्वारा मध्य कर्ण में प्रसार से उसमें प्रतिश्यायी और सपूय शोथ हो सकता है। नासा-आस्राव से, खासकर बच्चों में, नासा-प्रघाण की त्वचा मसृत हो जाती है, फुल और छिल जाती है और स्पर्शसह्य हो जाती है।

<u>उपचार</u>. प्रारंभ में प्रतिश्याय के गर्म चाय, स्वेदजनक और ज्वरोधी औषधियां देने से रुकने की संभावना रहती है। फिनासीटिन को 0.3-0.5 ग्राम की मात्रा में, एसीटाइल सेलिसिलीक अम्ल को 0.5-1 ग्राम की मात्रा में, और दूसरी औषधियों को सिरदर्द से आराम लिए दिया जाता है। नासा-अवरोध को समाप्त करने के लिए लाक्षणिक उपचार किया जाता है, जिससे तात्कालिक लाभ होता है और अपर्याप्त नासा-श्वसन के साथ जुड़े विकारों को समाप्त किया जा सकता है। इसके बिन्दुओं के या मरहम के लिए कोकेन और एड्रेनालीन या मेन्थाल दिये जाते हैं। निम्नलिखित फार्मूले खासकर सुझाये गये हैं:

Rp. Cocaini hydrochlorici 0.15

Sol. Adrenalini hydrochlorici (1:1,000) gtt. V

Sol. Acidi borici 3% 10.0

निर्देश. पाँच बूंदें प्रतिदिन चार-पाँच बार प्रत्येक नथुने में।

Rp. Mentholi crystallisati 0.15

Acidi borici pulverati

Zinci oxydati ää 0.75

Vaselini flavi 15.0

निर्देश. नासांजन।

Rp. Mentholi crystallisati 0.05

Ol. Amygdalarum dulcium 10.0

निर्देश. पाँच बूंदें प्रतिदिन दो बार प्रत्येक नथुने में।

हाइड्रोक्लोरिक एफिड्रीन का कोकेन और एड्रेनालीन से अधिक वाहिका-निकोचक असर होता है। इसे 2 प्रतिशत या 3 प्रतिशत के विलयन में बून्दों या मरहम के रूप में दिया जाता है।

असरदार उपाय है एक चेकोस्लोवाकी मूल की दवा सानोरिन, जिसे बिन्दुपातन या इमल्शन के तौर पर काम में लाया जाता है।

प्रतिश्याय के रोग को सल्फोनामाइड को (सफेद स्ट्रेप्टोसाइड, सल्फाडीमेजीन को समान तौल अनुपात में) पाउडर के रूप में पेनीसिलीन की 200 000 यूनिट मात्रा के साथ मिलाकर दिया जाता है।

**बच्चों में प्रतिश्याय.** यह रोग बच्चों के लिए विशेष रूप से खतरनाक होता है। शिशुओं में नासा-कुहर बहुत संकीर्ण होते हैं, और श्लेष्मा की हल्की सूजन के बाद ही नासा-अवरोध हो जाता है।

नासा-श्वसन के प्रभाव में आये विकारों, जैसे बैचेनी, टूटी निद्रा आदि के अलावा, इससे बच्चों में कृशता भी आती है क्योंकि सामान्य रूप से स्तन-पान नहीं कर सकते हैं।

संक्रामक नासाग्रसनी-शोथ बच्चे की भूख को कम करता है और विषालु नासाग्रसनी-आस्रावों के निगरण से दुष्पचन हो जाता है।

कभी-कभी नासा-श्लेष्मा के शोथों का प्रसार नासा-ग्रसनी और श्रवण-

नाल की श्लेष्मा-कला तक होता है जिससे तीव्र मध्यकर्ण-शोथ हो सकता है, और यह श्वसन-नली से नीचे स्वरयंत्र और श्वसनी तक फैल सकता है और निमोनिया पैदा कर सकता है।

नासा-प्रघाण की पपड़ी को बादाम के तेल और गर्म बैकिंग सोडा विलयन द्वारा नर्म किया जाता है और गीली रूई या जाली लगाकर नासा-श्लेष्मा और पपड़ियों को साफ किया जाता है। स्तनपान कराने के पहले बच्चे की नाक में बोरिक अम्ल के विलयन में एड्रेनालीन या बादाम के तेल के मिश्रण की एक बूंद डाली जाती है।

Rp. Ol. Amygdalarum dulcium 10.0 Sterilis!

**निर्देश : नासा-बूंदें।**

Rp. Sol. Adrenalini (1:1 000) gtt. X

Sol. Acidi borici 2% 10.0

निर्देश: नासा-बूंदें।

यदि इससे नासा-मार्ग नहीं खुले तो बच्चे को दूध चम्मच से पिलाया जाता है। तीन साल से कम आयु वाले बच्चों को कोकेन या मेन्थोल नहीं दिया जाता है।

रोग निरोध. देह को कठोर बनाया जाता है ताकि ऊपरी श्वसन-नली के तीव्र शोथी रोग रोके जा सकें। इसका मुख्य उद्देश्य यह होता है कि बदलती वातावरणीय परिस्थितियों में, जैसे कंपकंपी या अतिउष्मता, अति वायु आर्द्रता या शुष्कता, सूखा और हवा आदि में शरीर की शीघ्र अनुकूलन-शीलता की क्षमता विकसित हो।

त्वचा के खुली हवा और धूप से अनावरण, ठंडे पानी से नहाना, विभिन्न ग्रीष्मकालीन व शीतकालीन खेल, हृदयवाहिका और श्वसन प्रणालियों को बेहतर बनाने के और प्रतिकूल बाहरी कारकों के प्रति वाहिका-प्रणाली के सामान्य प्रतिरोध को सुनिश्चित करने के विश्वसनीय तरीके हैं।

देह के उष्मानियंत्रक तंत्र का प्रतिदिन व्यायाम सालों भर नियमित तौर पर किये जाने चाहिए।

व्यापक तौर पर इसमें अच्छा नियमित भोजन, उचित पहनावा, घर पर और काम पर दोनों जगह सही व्यक्तिगत स्वास्थ्य-विज्ञान का पालन सम्मिलित हैं।

शारीरिक प्रशिक्षण और मौसम के प्रति देह के प्रतिरोध से शीतजन्य रोग और कई संक्रामक व दूसरे रोग कम हो जाते हैं।

**गोनोरियल नासा-शोथ.** नासा-श्लेष्मा का गोनोरियल शोथ कई बार नवजातों में गोनोरियल नेत्रश्लेष्मला-शोथ के साथ देखा जाता है, क्योंकि बच्चा शोथी मातृ अंगों से गुजरता है। वयस्कों में यह अवस्था बहुत कम देखी जाती है और अंगुलियों से संक्रमण के कारण होती है।

लक्षण. नासा श्लेष्मा में नवजातों में जन्म के दूसरे या तीसरे दिन काफी शोफ और ललायी हो जाती है। इसके साथ आस्राव सीरमरक्तस्रावी रहता है जो बाद में सपूय हो जाता है।

बहुत संभव होता है कि शोथ नाक और आंखों के बाहरी ऊतकों में फैल जाये और सूजन, ललायी और नासा-प्रघाण की छाजन-विक्षति तथा नेत्रश्लेष्मला-शोथ पैदा कर दे।

गोनोरियल नासा-शोथ का निदान नासा-श्लेष्मा के जीवाणु-विज्ञानी अन्वेषण में गोनोकोकी के मिलने से होता है। उचित उपचार देने पर रोग कुछ ही दिनों में ठीक हो जाता है।

उपचार. उपचार नाक में 2 प्रतिशत प्रोटारगोल विलयन के बिन्दुपातन से और नासा प्रघाण की त्वचा को नासा-आस्राव से होने वाले क्षोभ से बचाने से होता है।

यदि माँ में गोनोरिया होने का संदेह हो तो नवजात शिशु की नाक में नेत्र-रोग के निरोध के लिये 1 प्रतिशत सिल्वर नाइट्रेट विलयन डाल देना चाहिए।

गोनोरिया के उपचार में पेनिसिलीन की क्षमता से उसके गोनोरियल नासा-शोथ को रोकने की क्षमता स्पष्ट होती है।

## नासा-डिप्थीरिया

नासा-डिप्थीरिया दो प्रकार की होती है। या तो वह नाक तक सीमित रहता है या फिर इसे ग्रसनी-डिप्थीरिया के साथ देखा जाता है। नाक तक ही सीमित रहने पर यह नासा-श्लेष्मा में शोथी लक्षण पैदा करती है और इसलिए रोगलक्षणविज्ञान में इसे दो भागों में विभाजित किया जाता है: (1) प्रतिश्यायी या नालव्रणी प्रतिश्यायी और (2) श्लेष्मिक।

नासा-डिप्थीरिया बच्चों में डिप्थीरिया का सबसे आम रूप है। स्तन-

पोषित बच्चों में इसमें रक्त-धब्बा आ जाता है और यह सीरमी और फिर सपूय हो जाता है और गहरे नासा-अवरोध के साथ यह प्रकारात्मक खुर्राटे पैदा करता है। आस्राव इतना प्रचुर होता है कि वह नासा-प्रघाण और ऊपरी ओष्ठ का निस्त्वचन कर सकता है। नासा-श्वसन दुर्गम हो जाता है, मुंह खुला रहता है और हल्का ज्वर हो जाता है। नासा-परीक्षण में व्रणों पर पपड़ियाँ दिखायी देती हैं, जिन्हें हटाने पर जल्दी ही उनमें से रक्तस्राव होता है।

नासा-डिप्थीरिया के श्लेष्मिक रूप में काफी विकारी आच्छादन होता है— आम तौर पर नासा-गुहा के निचले भागों में, जो नीचे की श्लेष्मा-कला से मजबूती से सटी रहती है। घनी सफेद श्लेष्मा, जो मुश्किल से हटती है, नासा-अवरोध को और बढ़ा देती है।

इन श्लेष्माओं को हटाने के प्रयास से, साथ ही छींकने या नाक छिड़कने से, खुला नासास्राव होता है।

इस अवस्था के साथ ग्रसनी की डिप्थीरिया के भी साथ बने रहने पर निदान में कोई दिक्कत नहीं होती है; दूसरे केसों में नासा-दर्शन के साथ रोगी की सामान्यावस्था की जांच और नासा-द्रव के डिप्थीरिक कीटाणु के परीक्षण से निदान किया जा सकता है।

नासा-डिप्थीरिया के साथ अन्य स्थान पर पायी जाने वाली डिप्थीरिया का प्राज्ञान स्थानीय रूप के प्राज्ञान से कम आशाजनक होता है।

उपचार डिप्थीरियारोधी सीरम के तात्कालिक तौर पर निदान साबित होते ही दिये जाने से होता है। श्लेष्मिक प्रकार के उपचार के लिए 10 000 यूनिट तक की मात्रा दी जाती है। सीरम-रोग से बचाव के लिए बेजरे का विधि से देना अच्छा होता है, जिसमें पहले केवल 1 मि० ली० सीरम दिया जाता है और पूरी मात्रा एक घंटे के बाद दी जाती है।

व्रणोप्रतिश्यायी प्रकार में सीरमी उपचार के साथ सल्फोनामाइड पाउडर और पेनिसिलिन से नासा-प्रधमन किया जाता है।

Rp. Streptocidi albi
Sulfodimezini āā 2.5
Penicillini 100 000
M.f. pulv. subtilis

निर्देश: नासा-प्रधमण के लिए।

न.सा-प्रधमण के पहले नासा-गुहा की सतही श्लेष्मा को एड्रेनालीन या एफीड्रीन को 2 प्रतिशत बोरिक ग्रम्ल विलयन के साथ छिड़क कर साफ किया जाता है (Sol. Acidi borici 2% 10.0, Sol. Adrenalini hydrochlorici 1:1000 gtt. X या Ephedrini hydrochlorici 0.1)

नासा-प्रघाण का सौम्य मरहम से स्नेहन किया जाता है, ताकि नासा-ग्रास्राव के कारण त्वचा-शोथ न हो।

बैसिली-वाहक ग्रवस्था ग्रौर डिप्थीरिया की रोकथाम के विषय में विस्तृत चर्चा ग्रसनी-डिप्थीरिया वाले ग्रध्याय में की गयी है।

## नासा के चिरकारी शोथ

चिरकारी नासा-शोथ के 3 रूप हैं: (1) तथाकथित चिरकारी सरल नासा-शोथ, (2) ग्रतिवृद्धि नासा-शोथ, (3) क्षीण नासा-शोथ या ग्रोजीना।

चिरकारी नासा-शोथ प्रतिश्याय के बारंबार ग्राक्रमणों, जैसे नासा-श्लेष्मा के तीव्र शोथ, या विभिन्न हानिकारक कारणों से होने वाले बारंबार तथा लम्बे नासाश्लेष्मा-क्षोभ से होता है। इनमें ताप का प्रभाव, जैसे ठंडी या गर्म हवा में ग्रनावरण ग्रौर ग्रभिश्वसित वायु में धूल, एँधू ग्रौर क्षोभी गैसों का हानिकारक मिश्रण हैं। चिरकारी नासा-शोथ नासा-गुहा में रक्त-परिसंचरण के दीर्घ ग्रौर बारंबार होने वाले उपद्रवों को पैदा करने वाले किसी भी कारक के कारण हो सकता है, जो श्लेष्मल कला की ग्रतिरक्तता ग्रौर मीजिल्स, स्कारलेट ज्वर ग्रौर डिप्थीरिया जैसे कुछ संक्रामक रोगों, साथ ही हृदय ग्रौर वृक्क रोगों, वातस्फीति स्थूलता ग्रादि में इसके प्रगामी रक्ताधिक्य के रूप में विकसित हो जा सकते हैं। चिरकारी नासा-शोथ श्वसन-नली के दूसरे हिस्सों के शोथों के प्रसार से, जैसे एडिनाइड ग्रतिवृद्धि वाली नासाग्रसनी से या परानासा विवरों से, नासा श्लेष्मा के सपूय ग्रास्राव से लगातार क्षोभ होने के कारण, होता है।

**सरल चिरकारी प्रतिश्यायी नासा-शोथ.** यह ग्रवस्था नासा-श्लेष्मा में विसरित ग्रतिरक्तता ग्रौर समान सूजन पैदा करती है। इसके लक्षण तीव्र नासा-शोथ से मिलते-जुलते होते हैं, हालांकि उसकी तरह गंभीर नहीं होते। रोगी को, नियमानुसार, कोई शरीर-संरचनात्मक क्षोभ नहीं होता है।

नासा-अवरोध पीठ के बल लेटने या एक तरफ सोने से ज्यादा होता है। पहले में नाक के निचले भागों में, यानी नासा-गुहा की नासा-शुक्तिकाओं के पश्च अंतों में रक्ताधिक्य होता है। जबकि दूसरे में रक्ताधिक्य एक नासा-गुहा की शुक्तिकाओं तक ही सीमित रहता है। उच्छश्रावी तन्तु की वाहिकाएँ रक्त से भरकर फूल जाती हैं और एक या दोनों नासा-गुहाओं में अवरोध पैदा करती हैं। बिस्तर में मुड़ने पर नासा-अवरोध नीचे की ओर हो जाता है। नासा-आस्राव काफी तरल रहता है। चिरकारी प्रतिश्यायी नासा-शोथ के उपद्रव में घ्राण का आंशिक या पूर्ण नाश हो सकता है। दूसरा आम उपद्रव है कर्ण रोग। निचली शुक्तिका की, खासकर पश्च अन्त की, सूजन से श्रवण-नली का मुँह बन्द हो जाता है और यह अवरोधी लक्षणों को बढ़ा देती है। इसके बाद लम्बे काल तक आंशिक नली-अवरोध से चिरकारी प्रतिश्यायी मध्यकर्ण-शोथ हो सकता है।

अन्त में अश्रु-तन्त्र में भी निचली शुक्तिका के अग्र अन्त के सूजन से विक्षति हो सकती है क्योंकि यह समीप की नासाअश्रु-वाहिनी के निम्न छिद्र में अवरोध करके अति अश्रुस्रवण, अश्रु बैग में शोथ और नेत्रश्लेष्मला शोथ पैदा कर सकता है।

निदान. यह अग्र और पश्च नासादर्शन से होता है। सरल चिरकारी और अतिवृद्धि नासा-शोथ रूपों में भेद करने के लिए नासाश्लेष्मला को 0.1 प्रतिशत एड्रेनालिन या 1-3 प्रतिशत कोकेन विलयनों से पेंट किया जाता है। कोकेन लगाने के बाद पूरी तरह सिकुड़ना सरल केटारी नासा-शोथ का द्योतक होता है, जबकि थोड़ा सिकुड़ी या बनी हुई सूजन अति-वृद्धि रूप की द्योतक होती है।

प्राज्ञान. यह अच्छा है क्योंकि नासा-श्लेष्मा की सूजन को संवेदी उपचार या सरल शल्यक्रिया के उपायों से, जैसे ट्राइक्लोरेसेटिक और क्रोमिक अम्लों द्वारा काटरीकरण, गेल्वेनिक करेन्ट आदि से कम रखा जा सकता है। यदि चिरकारी नासा-शोथ के कारण समाप्त हो जायें तो उसके दुबारा होने की संभावना समाप्त हो जाती है।

**चिरकारी अतिवृद्धि नासा-शोथ.** नई वृद्धि और संयोजी ऊतकों के प्रफलन से सबसे ज्यादा अतिवृद्धि चिरकारी नासा-शोथ में देखी जाती है। ऊतक राशिकाएँ अधिकतर पूरी नासा-श्लेष्मा के बजाय उच्छश्रावी ऊतक में ही बढ़ती है, यानी निम्न शुक्तिका के अग्र और पश्च अन्त और मध्य शुक्तिका के अग्र अन्त में। कभी-कभी अभिवृद्धि-क्षेत्र की सतह खुरदरी, खण्डकी या

अंकुरक ( शहतूत ) आकार लेती है। शुक्तिका का पश्च अभिवृद्धिपूर्ण भाग नासा-ग्रसनी में अर्बुद जैसा उभार बनाता है। अभिवृद्धि क्षेत्र पीला बादामी, लाल, तेज लाल या बैंगनी लाल रंग का हो सकता है; यह विकसित संयोजी ऊतक की ओर रक्ताधिक्य की मात्रा पर निर्भर करता है। अभिवृद्धि नासा-शोथ के लक्षण सरल नासाशोथ के समान ही होते हैं। ज्यादा लम्बे काल वाले कारणों के परिणामस्वरूप हुआ नासा-अवरोध, जैसे श्लेष्मा की अभिवृद्धि के बाद हुआ अवरोध, काफी समय तक रहता है। यह वाहिका-निकोचक औषधियों के बाद और, सामान्य नासा-शोथ के विपरीत, यह देह या शीर्ष की स्थिति में परिवर्तन से नहीं घटता है। श्लेष्मा-आस्राव स्थूल और चिपकने वाला होता है। दोनों नथुनों से जोर से नाक छिड़कने से कई बार मध्यकर्ण-रोग हो सकते हैं।

प्राज्ञान. यह अच्छा है क्योंकि नासा श्लेष्मा के अभिवृद्धि क्षेत्रों को कम करने और नासा के वायु-मार्ग के पुनर्स्थापन की संभावना रहती है।

उपचार. पहले इस अवस्था को पैदा करने वाले और बनाये रखने वाले कारणों को समाप्त करना जरूरी होता है। इसलिए रोगी की सामान्यावस्था पर और यह पता लगाने पर पूरा ध्यान देना चाहिए कि उसे स्थूलता, हृदय या वृक्क रोग है या नहीं। साथ ही, उसके पेशे में स्वच्छता सम्बन्धी और दूसरे प्रासंगिक हालात क्या हैं, यह जानना भी जरूरी होता है। इन अवस्थाओं को आंकने और उनमें सुधार के बाद स्थानीय संवेदी और शल्यक्रिया उपचार की सफलता की संभावना रहती है। सरल चिरकारी नासा-शोथ के संवेदों के उपचार में कई मामलों में एस्ट्रिनजेंटों और कास्टिकों का प्रयोग ही शामिल है। एस्ट्रिनजेंटों में 1 प्रतिशत, 2 या 3 प्रतिशत प्रोटारगोल विलयनों का नासा-बून्दों के लिए प्रयोग किया जाता है। वाहिका-निकोचक औषधियों, जैसे एफीड्रीन, का प्रयोग भी निम्नलिखित फार्मूले में किया जा सकता है:

Rp. Sol. Ephedrini 3% 10.0

निदेश: पांच बून्दों को दिन में दो बार देना चाहिए।

नासा-श्लेष्मा को सिकोड़ने का एक और अधिक सामान्य तरीका है उसे 0.25 या 0.5 प्रतिशत आयोडिन ग्लीसेरोल विलयन से सूजी श्लेष्मा पर पेंट करना। अतिवृद्धि नासा-शोथ के खिलाफ ज्यादा असरदार कदम उठाये जाने चाहिए, जैसे श्लेष्मा-कला के हल्के अतिविकसन में विसरित सूजन की
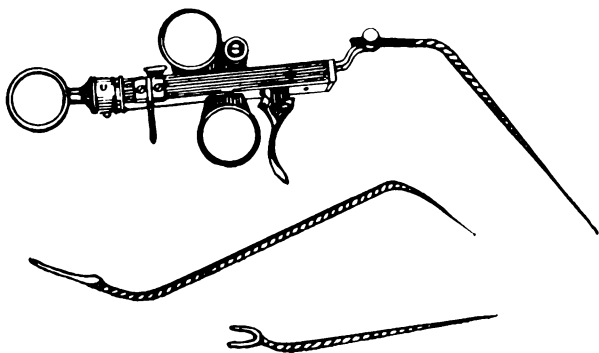
चित्र 53. गेल्वेनोकाटर हस्तक तथा अलग की जा सकने वाली सुइयां

काटरी ( प्रदाहन ) करना। इसे या तो रसायनों, जैसे क्रोमिक तथा ट्राइक्लोरो एसीटिक अम्लों से या फिर सिल्वर नाइट्रेट लकड़ी या गेल्वे-नोकाटर के प्रयोग से किया जाता है ( चित्र 53-54 )।

क्रोमिक अम्ल से प्रदाहन ( काटरीकरण ) में अम्ल के मोती को स्थूल प्रोब के सिरे से उसे एल्कोहल लैम्प की ज्वाला पर गर्म करके गलनांक पर लाकर फ्यूज किया जाता है। इसे ज्यादा गर्म नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे अम्ल भूरा हो जाता है और इसके कास्टिक गुण समाप्त हो जाते हैं।

सिरे पर अम्ल युक्त प्रोब या संकेती काटर से फूली या अतिवृद्धि श्लेष्मा पर एक या दो लाइनें, पीछे से शुक्तिका के हाशिये के साथ, खींचना उसमें संकुचन लाने के लिए पर्याप्त होता है ( चित्र 55 )। इसे क्षत-चिन्ह के चारों ओर किया जाता है ताकि मृतोतक निकल जाये और सटा हुआ उच्छायी ऊतक सामान्यावस्था में आ जाये।

जरूरत पड़ने पर प्रबल आंसजी प्रभाव और उसके बाद अत्यधिक संकुचन शुक्तिका-कोर पर संकेती इलेक्ट्रोकाटर से खींचने से पैदा किया जा सकता है।
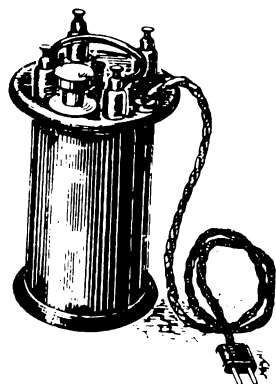
चित्र 54. गेल्वेनोकाटर का रिओस्टेट
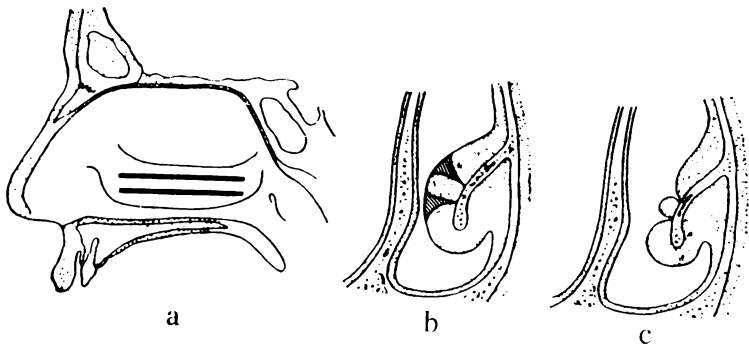
चित्र 55. शुक्तिकाओं को गेल्वेनोकाटरी

(a) शुक्तिकाओं की गेल्वेनोकाटरी, लाइनें निम्न शुक्तिका पर काटरीकरण के स्थल दिखाती है; (b) नासा-शुक्तिका काटरीकरण के पहले; (c) काटरीकरण के पश्चात नासा-शुक्तिका

नासा-श्लेष्मा में पृथक, और सीमित अतिवृद्धि क्षेत्रों को जो कि प्राय: प्रचुर उच्छायी ऊतक-संचय के क्षेत्रों में सीमित रहते हैं, अलग-अलग और सीमित करने के लिए नासा-पाश (चित्र 56) और नासा-कैंची का उपयोग करना चाहिए (चित्र 57)।

**शोषकर नासा-शोथ और ओज़ीना.** सरल शोषकर नासाशोथ नासा-गुहा का चिरकारी रोग है। इसमें श्लेष्मा का शोथ होता है जो पतली होकर अपनी कुछ श्लेष्मा-ग्रंथियां खो देती है। इस रोग के साथ नासा-आस्राव कम हो जाता है और सूख कर पपड़ी बन जाता है। पर इसमें दुर्गन्ध नहीं रहती।

शोषकर नासा-शोथ के कारणों के विषय में अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये
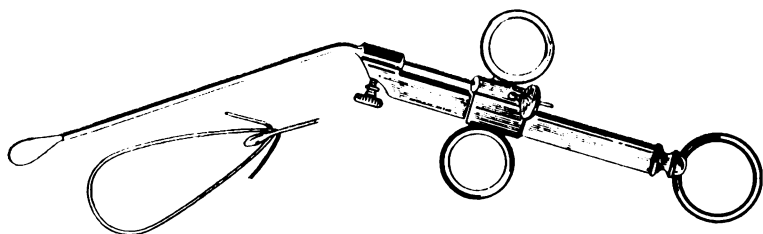
चित्र 56. नासा-पाश
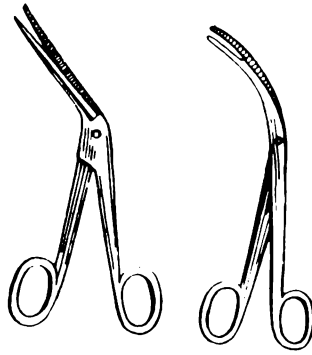
चित्र 57. निम्न और मध्य शुक्तिकाओं को हटाने के लिये नासा-कैंची

गये हैं, पर उनमें से कोई भी इस रोग के सारे लक्षणों का विश्लेषण नहीं कर सकता। यह माना जा सकता है कि नाक में होने वाले शोषकर और अतिवृद्धि परिवर्तनों का कारण नासा ऊतक में पोषणज विक्षोभों की प्रक्रिया है। इसलिए कुछ सिद्धांतकारों का विचार है कि शोषकर नासा-शोथ हमेशा अतिवृद्धि नासा-शोथ से विकसित होता है जिसकी वह अगली अवस्था होता है। यह सही है कि किसी ने प्रत्यक्षत: अतिविकसन से शोष का संक्रमण नहीं देखा है पर दोनों का सम्बन्ध दोनों के बारम्बार साथ-साथ प्रगट होने से संभव माना जाता है। कुछ आनुवांशिकीविज्ञों द्वारा इस रोग को जन्म-जात घोषित करने के पीछे कोई सबूत नहीं है इसलिए यह दावा बेमानी है।

सोवियत वैज्ञानिकों ने कई परीक्षणों द्वारा साबित किया है कि शोषकर नासा-शोथ वातावरणगत कारणों जैसे धूल और प्रतिकूल मौसम से हो सकता है। सिलीकेट, सीमेन्ट, तम्बाकू और कुछ दूसरी तरह की धूल का असर काफी प्रणाशी होता है।

स्वप्रत्यय लक्षण. ये लक्षण हरदाम काफी प्रत्यक्ष नहीं होते। रोगी नाक और नासाग्रसनी में शुष्कता की शिकायत करता है। एक दूसरी आम शिकायत होती है—नासा मूल पर मन्द दाब की अनुभूति और सिरदर्द। गहरे पपड़ी-करण के कारण तीव्र नासा-अवरोध होता है। पपड़ियों के सड़ने से नाक से दुर्गंध आती है। यह अवस्था ओजीना कहलाती है।

ओजीना के मूल चिन्ह निम्नलिखित हैं: (1) नाक में गहरी पपड़ियां, (2) खास दुर्गन्ध, (3) नासा-श्लेष्मा का गहरा शोष, साथ ही अस्थि संरचना और शुक्तिकाओं का शोष।

इसके साथ ओजीना में अघ्राणता होती है, क्योंकि शोष घ्राण-क्षेत्र तक फैल जाता है। पपड़ी हटाये जाने के बाद नासा-मार्ग काफी चौड़े दिखायी देते हैं। और अग्र नासा-दर्शन नासा-ग्रसनी की पश्च भित्ति का स्पष्ट दृश्य सामने ले आता है। पपड़ी तेज खुजली पैदा करती है और रोगी नाक में हाथ डालने को बैचैन रहता है जिससे नाक में आघात और बाद में नासा-पट में वेधन हो सकता है।

हेतुकी. ओजीना का असल कारण अज्ञात है। इसे स्पष्ट करने के कई सिद्धांत सामने आये हैं पर कोई भी विश्वसनीय नहीं है। न ही इस बात का ही कोई सबूत है कि यह रोग संक्रामक है, हालांकि नाक से भयानक दुर्गन्ध के कारण रोगी समाज से वहिष्कृत-सा हो जाता है।

निस्संदेह, वातावरणगत कारणों, खासकर सामाजिक कारणों से, ओजीना के मूल और पथ (प्रवाह) पर प्रभाव पड़ता है। खुशहाली और सांस्कृतिक मानदंडों के चलते इस रोग-संवृति में काफी कमी आयी है।

निदान. यह नासादर्शन-परीक्षण से सहज ही ढूंढ लिया जाता है। निदान के सहयोगी दूसरे चिन्ह हैं—प्ररूपी शिकायतें, नासा-श्लेष्मा का गहरा शोष, दुर्गन्धमय पपड़ी के साथ अघ्राणता का होना। ओजीना में व्रणोत्पति नहीं होती है, यही इसे नासा-यक्ष्मा और सिफिलिस से भिन्न करती है।

प्राज्ञान. ओजीन में विश्वसनीय प्राज्ञानीकरण संदेहजनक है। यह सही है कि सबसे कष्टदायक लक्षणों से छुटकारा पाना कठिन नहीं है, किन्तु नासा-श्लेष्मा की पूर्णतः सामान्य क्रिया लाने में अभी तक सफलता नहीं मिली है। यह घ्राण-संवेदन के विषय में भी देखा गया है।

उपचार. सरल शोष नासाशोथ की तरह ही ओजीना में उपचार लक्षणात्मक ही हो जा सकता है। इसका उद्देश्य शुष्कता और नाक में पपड़ी को क्षारीय डूश द्वारा और बाद में आयोडिन ग्लीसरोल विलयन लगाकर और मेन्थोल तेल और मरहम लगाकर समाप्त करना है। नासा को गर्म क्षारीय स्प्रे डालकर पपड़ी-रहित किया जा सकता है।

नीचे आम तौर पर काम में आने वाले क्षारीय विलयन और कुछ बून्दों और मरहमों के फार्मूले दिये गये हैं:

Rp. Jodi puri 0.05-0.1
Kalii jodati 0.2
Glycerini
Aq. destill. aa 5.0
Ol. Menthae pip. gtt I

निर्देश. पांच बून्दें प्रत्येक नथुने में दिन में दो बार।

Rp. Mentholi crystallisati 0.1
Ol. Provincialis 20.0

निर्देश. पांच बून्दें प्रत्येक नथुने में दिन में दो बार।

Rp. Natrii bicarbonici 60.0
Natrii biborici 30.0
Natrii chlorati 10.0
Ol. Menthae pip. gtt V
M. f. pulv.

निर्देश. एक चम्मच एक ग्लास पानी में नासा डूश के लिये।

इस बात को ध्यान में रखते हुए कि ओजीना के साथ नासा-गुहा में असंख्य कीटाणुओं का विकास होता है जो कि प्ररूपी दुर्गन्ध पैदा करते हैं, प्रतिजीवी औषधियों और निकोटिनीक अम्ल को मिलाकर ओजीना का उपचार सुझाया गया है। यह उपचार विशेषज्ञों के कहने पर ही दिया जाना चाहिए। बायोमाइसिन (एरोमाइसिन, टैरामाइसिन) को दिन और रात में प्रत्येक छ: घंटे पर 1.2 ग्राम की पूर्ण मात्रा में दिया जाता है। इसी के साथ निकोटिनीक अम्ल को 50 मिली ग्राम की मात्रा में अंतर्पेशी इंजेक्शन द्वारा दिया जाता है। यह उपचार 10 से 14 दिनों तक दिया जाता है। स्ट्रेप्टोमाइसिन के बजाय बायोमाइसिन अंतर्पेशी सूई द्वारा 0.5 ग्राम मात्रा में दिन में दो बार दिया जाता है। इसके अलावा नासा-गुहाओं में प्रतिदिन स्ट्रेम्टोमाइसिन-विलयन का जिसमें कि 0.5 ग्राम दवा प्रति 10 मि० क्रियाविलयन की होता है, स्प्रे किया जाता है। इस उपचार को कुछ महीनों की अवधि के बाद दुबारा दिया जाता है।

# वाहिका-प्रेरक या ऐलर्जिक नासा-शोथ

वाहिका-प्रेरक नासा-शोथ का बीच-बीच में आक्रमण होता है और अत्यन्त संक्षिप्त अवधियों के लिए और कभी-कभी लम्बी अवधियों के लिए आराम रहता है। आक्रमणों के साथ, जो कि काफी तीव्र भी होते हैं, छींकने के लम्बे दौरे नासा अवरोध और नाक से प्रचुर, मुख्यतः जल-स्वरूप, आस्राव होते हैं। कई रोगियों में अश्रुस्रवण, नेत्र, नासा-आभ्यंतर और कठोर तालू में खुजली और सिरदर्द जैसे अतिरिक्त लक्षण होते हैं। नासा-श्लेष्मा में शोफ और सूजन हो जाती है, कुहर जलीय और झागपूर्ण आस्राव से भरे रहते हैं तथा नासा-श्वसन काफी अपर्याप्त रहता है। आक्रमणों के बीच पड़ने वाले अन्तरालों में सभी विकारी लक्षण बिलकुल विलुप्तप्राय हो जा सकते हैं किन्तु लम्बे रोग की लम्बी अवधियों में नासा-श्लेष्मा की सूजन बनी रहती है तथा वह अतिविकसन में परिवर्तित हो सकती है, जैसा कि चिरकारी नासाशोथ में होता है। वाहिका प्रेरक नासा-शोथ ऐसे रोगियों में होता है जिनमें अतिरक्तदाबी तंत्रिका-तंत्र है। यह मुख्यतः देह की असामान्य प्रतिक्रियाओं के कारण होता है, जिसके परिणामस्वरूप कई वाह्य और आन्तरिक कारण, जैसे तापक्रम और वायुमंडलीय दाब में परिवर्तन, रसायनों का प्रभाव और भावनात्मक तनाव, आदि अपर्याप्त व क्रियावैज्ञानिक रूप से आधारहीन दैहिक प्रतिक्रियाओं को जन्म देते हैं। ऐसे रोगियों में जरा भी कंपकंपी या किसी और प्रकार का केन्द्रीय या परिसरीय तंत्रिका-तंत्र के क्षोभ से नासा-शोथ का आकस्मिक तीव्र आक्रमण हो जाता है जो कई बार उतना ही जल्दी समाप्त भी हो जाता है।

परिवर्तित देह प्रतिक्रिया की दृष्टि से वाहिका-प्रेरक नासा-शोथ कई बार श्वसनिका दमा, वाहिका तंत्रिका शोफ, बिच्छूपूटी पित्तिका आदि के साथ पाया जाता है। वाहिका-प्रेरक नासा-शोथ के कुछ प्रकारों को अज्ञात एलर्जन से विचित्र तीव्रग्राही प्रतिक्रिया के स्थानीय रूप के तौर पर देखा जा सकता है। निम्न शुक्तिका की श्लेष्मा-कला से लिये गये नासा-द्रव्य के कोशिकीय परीक्षण से पता चलता है कि अनेक रोगियों को स्पष्ट तौर पर काफी इओसिनोफिलिया होता है, यानी उनकी श्वेत रक्त-कोशिकाओं के आधे में इओसिनोफिल देखे जाते हैं।

उपचार. सर्वप्रथम केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र के प्रकार्य को सामान्य बनाने के लिए कदम उठाये जाने चाहिए। पूरी देह को यथोचित रूप से संपुष्ट

बनाकर बढ़ी हुई देह प्रतिक्रिया को कम किया जाता है। इसमें न्यायसंगत पहनावा, प्रचुर स्वच्छ हवा, और दूसरी स्वच्छतापूर्ण आदतें भी शामिल हैं। ब्रोमिन और कफीन दवाइयों के निम्नलिखित फार्मूले उपचार के लिए काम में लाये जाते हैं:

Rp. Natrii bromati 2.0
Coffeini natrio-benzoici 0.5
Aq. destill. 200.0

निर्देश: प्रतिदिन एक बड़ा चम्मच तीन बार।

क्रिया-चिकित्सार्थ ग्रीवा के अनुकंपी पर्वों का कल्शियम क्लोराइड द्वारा आयनन किया जाता है। जहां तक दवाइयों का सवाल है, कैल्शियम, एट्रोपीन, हिस्टामीन और विटामिन सी का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा, सामान्य देह प्रतिरोध क्षमता और टोन बढ़ाने वाली औषधियौं का प्रयोग किया जाता है। कुछ मामलों में डिमेड्रोल 0.05 ग्राम की मात्रा में दो या तीन बार प्रति दिन 10 या 12 दिन तक देने से काफी सुधार होता है। दूसरा उपाय है (जो कि कभी-कभी सहायक होता है): नोवोकेन रोध। यह निम्न शुक्तिका के पश्च अन्त में 1 प्रतिशत नोवोकेन विलयन के 2 मिली लीटर इन्जेक्शन से किया जाता है। नासाश्लेष्मा की कला की सूजन से कठिन नासा-श्वसन की परेशान करने वाली अवस्था को आंशिक तौर पर नाक में निम्नलिखित बिन्दुओं के बिन्दुपातन से रोका जा सकता है: Cocaini muriatici, Ephedrini hydrcohlorici aā 0.2, Sol. Acidi borici 3% 10.0

प्रतिदिष्टों के अभाव में अधिवृक्क प्रान्तस्थाप्रेरक हार्मोन और कार्टिसोन आस्राव को कम करके काफी सुधार लाते हैं।

नासा-संरचना की विरूपताएं जैसे नासा पट के विचलनों, स्परो और कटकों तथा शुक्तिकाओं की अतिवृद्धि को, जो कि नासा-श्वसन में बाधा पहुंचाती हैं या नासा श्लेष्मा में क्षोभ पैदा करती हैं, शल्य क्रिया द्वारा ठीक करना चाहिए।

**परागज ज्वर.** यह वाहिका-प्रेरक नासा-शोथ का विशिष्ट प्रकार है और पूर्णतया एलर्जिक संलक्षण है। यह मौसमी रोग है जो पौधे के परागण के समय होता है, जब अभिश्वसित वायु में पराग के सम्मिश्रण से, जो कि कई बार बहुत कम मात्रा में ही होता है, इस एलर्जन से अतिग्राही व्यक्ति-

यों में यह अवस्था पैदा करने के लिए पर्याप्त होता है। गंभीर रोगियों में नासा-शोथ के हमले काफी कष्टदायक रहते हैं और रोगी को दूसरे वातावरण में उचित मौसम में, यदि संभव हो तो समुद्र के किनारे जहां कम पेड़ पौधे हों, जाना पड़ता है।

## घ्राण-संवेदन में विक्षोभ

घ्राण-संवेदन में हानि, जो वैसे अल्पघ्राणता कहलाती है, अलग-अलग मात्राओं सभी तीव्र और चिरकारी नासाश्लेष्मा-शोथों में देखी जाती है। साथ ही यह नासा-श्वसन में अवरोध पैदा करने वाली सभी संरचनात्मक विरूपताओं में, चाहे वे अल्प काल के लिए हों या दीर्घ काल के लिए, देखा जाता है।

नाक की गहरी संरचनात्मक विरूपताएं, जो अभिश्वसित वायु के गंधपूर्ण कणों को घ्राण-क्षेत्र में प्रविष्ट होने से रोकती हैं, घ्राण-संवेदन समाप्त कर सकती हैं; इसी को अघ्राणता कहते हैं। यह अवस्था श्वसन अघ्राणता कहलाती है।

कुछ रोगियों में अघ्राणता घ्राण-विश्लेषकों के ग्राहकों के, यानी तंत्रिका-अन्तों और घ्राण-कोशिकाओं के, नाश से होती है। यह नाश अधिकतर शोथ-प्रक्रिया के घ्राण-क्षेत्र में फैलने से, जैसे ओजीना, पश्च परानासा विवरों के चिरकारी सपूय शोथों आदि से होता है। घ्राण-तंत्रिका की क्षति के ऐसे मामले भी प्रेक्षित होते हैं, जो विभिन्न रसायनों (निकोटीन, मोर्फीन व ऐट्रोपीन आदि) के विषालु प्रभाव से, या इंफ्लुएंजा व डिप्थीरिया जैसे संक्रामक रोगों से उत्पन्न होते हैं। पूर्ण घ्राणसंवेदन-नाश, जैसा घ्राण-तंत्रिका के रोग में देखा जाता है, आवश्यक अघ्राणता कहलाता है। अघ्राणता कई बार मस्तिष्क की वैकृतिजनक अवस्था से, जैसे मस्तिष्क विद्रधि, अर्बुद या मस्तिष्कशोथ से, होती है; यह केन्द्रीय अघ्राणता कहलाती है।

<u>प्राज्ञान.</u> श्वसनअघ्राणता में प्राज्ञान अच्छा होता है, क्योंकि घ्राण-संवेदन को श्वसन के यांत्रिक रोड़े को हटाने से लाया जा सकता है। आवश्यक अघ्राणता में भविष्यवाणी निराशाजनक रहती है क्योंकि मृत तंत्रिका-अन्तों को दुबारा जीवित नहीं किया जा सकता। केन्द्रीय अघ्राणता में प्राज्ञान मूल रोग पर निर्भर करता है और कई बार प्रतिकूल रहता है।

उपचार. उपचार उन अवरोधों को हटाने की ओर लक्षित होना चाहिए जिससे की घ्राण-विदर हो सकता है। आवश्यक और केन्द्रीय अघ्राणता में मूल आवश्यकता मूल रोग को हटाना है।

## नाक के अर्बुद

**सुदम नयी वृद्धियां.** कभी-कभी देखी जाने वाली नाक की सुदम नयी वृद्धियां पैपिलोमा हैं जो कि खुरदरी सतह के कारण गोभी के फूल की तरह लगती है, साथ ही ऐन्जियोमा, तंतुअर्बुद, कोन्ड्रोमा और आस्टियोमा की तरह भी।

सबसे ज्यादा पायी जाने वाली वृद्धि है—पालिप।

मूल में और ऊतकविज्ञानी-संरचना में नासा-पालिप श्लेष्मा-कला के चिरकारी शोथों के उत्पाद होते हैं। इसी कारण इन्हें, अर्बुदों के संग रखना उचित नहीं है हालांकि ऐसा उसकी अर्बुदों से बाहरी समानता के कारण और हटाने पर फिर बढ़ जाने की क्षमता के कारण किया जाता है।

नासा-पालिप अकेले या समूह में होते हैं जो वृंतक के द्वारा अधिकतर मध्यनासा-कुहर से जुड़े रहते हैं। ये धूसर या पीले-लाल रंग के होते हैं। इनकी सतह चिकनी और आढ़ता लिए होती है। इनका आकार और संख्या काफी बड़ी सीमाओं में बदलते रहते हैं। कुछ मामलों में नासा-गुहा छोटे पालिपों से भरी रहती है, पर कभी-कभी एक पालिप इतना बढ़ जाता है कि वह पूरी नासा-गुहा को भर देता है और आगे के नथुनों से बाहर भी निकला रहता है। कुछ मामलों में एक पालिप पीछे शुक्तिका की ओर बढ़ सकता है। शुक्तिका में से जाकर ऐसे पालिप, जो शुक्तिका पालिप कहलाते हैं, पूरी नासाग्रसनी को भर सकते हैं।

पालिप परानासा-विदरों की श्लेष्मा खासकर हिगमार के कोटर या झर्झरिका-गहन की कोशिकाओं के चिरकारी शोथों से होते हैं।

ऊतकविज्ञानी तौर पर पालिप जालीय संयोजी ऊतक का नाजुक तन्तु-समूह होता है। इसमें कई प्लाज्मा-कोशिकाएं, लसी-कोशिकाएं और सीरमी-तरल से बने क्षेत्र होते हैं।

निदान. नासा पालिपों को प्रकारात्मक लक्षणों और रूप से आसानी से पहचाना जा सकता है।

उपचार. नासा पालिपों का एक मात्र उपचार नासा-पाश से इनको शल्य-

चित्र 58. नासा-पालिप को तार-पाश से हटाना
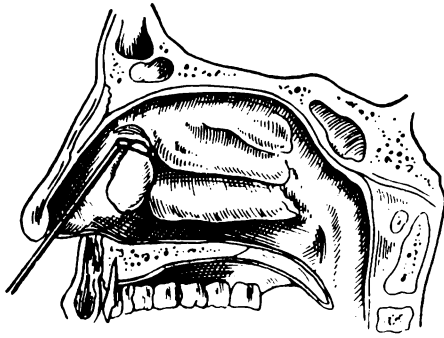
क्रिया द्वारा (चित्र 58) स्थानीय संवेदनाहरण के साथ हटाना ही है। नासा-गुहा को 5-10 प्रतिशत कोकेन और एड्रीनालिन से पेंट किया जाता है। तार का पाश पालिप पर लपेटा जाता है और उसे वृंतक-आधार की ओर लाया जाता है तथा फिर पाश को खींच करके पालिप को अलग किया जाता है।

**दुर्दम अर्बुद.** नासा-गुहा में पायी जाने वाली दुर्दम नयी वृद्धियां कार्सि-नोमा और सारकोमा के कारण होती हैं। ये नासा गुहा की किसी भी भित्ति से पैदा हो सकती हैं पर ज्यादातर ये मैक्सिला और झर्झरिका लैबीरिंथ से आती है। नासा की दुर्दम नई वृद्धियों के विभिन्न प्रकार के लक्षणों में प्रमुख हैं एकतरफा नासा-अवरोध और नासा-रक्तस्राव। अर्बुद की आगे वृद्धि और सड़ने से दुर्गन्धमय सपूय आस्राव पैदा हो जाता है। जब अर्बुद अगल-बगल के ऊतकों पर प्रहार करता है तो नेत्र-गोलक विस्थापित हो जाता है, नेत्र-दृष्टि कम या पूरी तरह समाप्त हो जाती है और अंतर्कपाल उपद्रव हो जाते हैं। अर्बुद की तीव्र वृद्धि से गालों और तालु में उभार पैदा हो सकते हैं।

अर्बुद गोभी फूल की सी आकृति वाला होता हैं और प्रोब लगाने पर उसमें शीघ्र रक्तस्राव होता है। यह चौड़े आधार पर स्थित होता है इसलिए इसे प्रोबिंग में छुए बिना छोड़ा नहीं जा सकता।

सही निदान रोग-लक्षण के रिकार्ड, करोटि के एक्सरे-परीक्षण और ऊतकविज्ञानी-परीक्षणों, अर्बुद की बायोप्सी (जीवाणुदर्शन) से किया जाता है।

प्राज्ञान. नासा की दुर्दम नई वृद्धियों में सुधार की आशा खासकर अवस्था की शुरूआत के नजरअन्दाज हो जाने पर काफी कम रहती है।

उपचार. उपचार का आम तरीका है विकिरण-चिकित्सा के साथ शल्य-क्रिया करना।

## परानासा-विवरों के तीव्र और चिरकारी रोग

**तीव्र मैक्सीलरी वायुविवर शोथ** हिग्मार के कोटर के तीव्र शोथ, तीव्र नासा-शोथ, इन्फलूएंजा, मीजिल्स, स्कारलेट ज्वर और अन्य संक्रामक रोगों और परानासा विवरों में आघातों के बाद देखे जाते हैं।

इस रोग की हल्के स्थितियों में स्वप्रत्ययी लक्षणों में रोगी विवर के क्षेत्र में दाब और तनाव की अनुभूति तथा एकतरफा नासा-अवरोध आते हैं। ज्यादा गंभीर स्थितियों में इन लक्षणों के अलावा वेदना, जो ललाट और जाइगोमेटिक अस्थि के क्षेत्र में सीमित रहती है और दंतवेदना पाये जाते हैं। इसके बाद रोगी के पार्श्व का गाल फूल जाता है और ज्वर और कृशता प्रारंभ हो जाती है। उग्र नासा-दर्शन में रक्ताधिक्य और मध्य नासा-कुहर की श्लेष्मा में अत्यधिक श्लेष्मा आस्राव दिखायी देते हैं। कई बार पूय भी रहता है जो एक धार की तरह मध्य शुक्तिका से बहता है।

चूंकि श्लेष्मा में तीव्र शोथ या मध्य नासा-कुहर में पूय समान कारणों से मैक्सीलरी और फ्रंटल विवरों में विक्षति या झर्झरिका-कोशिका में विक्षति दर्शा सकता है इसलिए अंतिम निदान पारप्रदीपन, स्काईग्राफी, प्रूफ पंक्चर और हिग्मार के कोटर में धोवन से प्राप्त अतिरिक्त जानकारी पर निर्भर करता है।

परानासा विवरों के पारप्रदीपन में जो कि डाइफोनोस्कोपी भी कहलाता है, पूर्ण अन्धकार में तेज विद्युत-प्रकाश को मरीज के मुंह में रखा जाता है (चित्र 59)। जब होंठ बन्द किये जाते हैं तो चेरी के से लाल रंग का तेज मुंह पर दोनों ओर से दिखायी पड़ता है। धीमा प्रकाश मुंह को किसी भी ओर की मैक्सीलरी या झर्झरिका विवर की विक्षति दर्शाता है। फ्रंटल विवरों का वायवीकरण नेत्र-गुहा के सामने, यानी फ्रंटल विवर के फर्श के सामने, लैम्प रख कर देखा जाता है।

मध्य नासा-कुहर का परीक्षण कोकेनीकरण और कभी-कभी मैक्सीलरी विवर के प्राकृतिक छिद्र के प्रोबिंग से सुगम हो जाता है।

हिग्मार के कोटर का मध्य कुहर की ओर से पंक्चर विशेष कैनुला
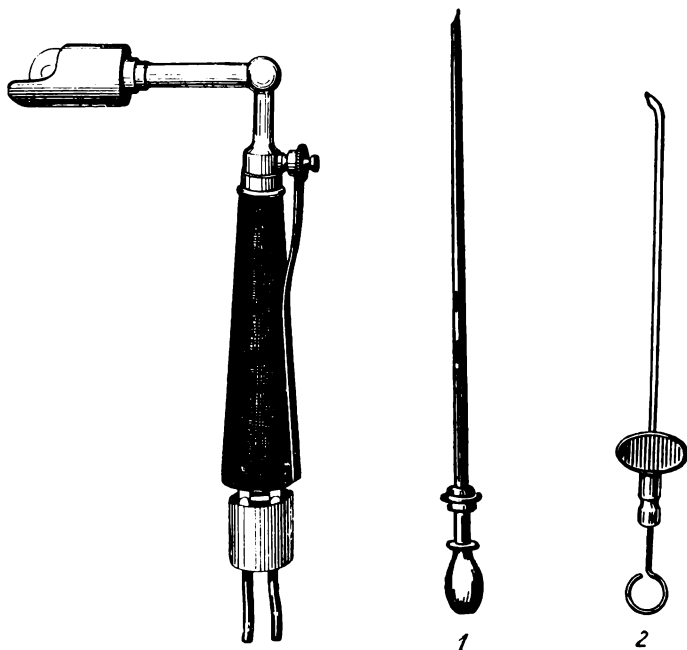
चित्र 59. परानासा विवरों के लिए पारप्रदीपन लैम्प

चित्र 60. हिगमार के कोटर के वेधन की सूइयां
(1) मेरुदण्ड वेधन के लिए ट्रोकर ; (2) कुलिकोव्स्की सूई

और सूई (चित्र 60) से किया जाता है। कोटर का निम्न कुहर में से 6 से 8 सें० मी० लम्बी स्थूल सीधी सूई या ट्रोकर द्वारा वेधन किया जाता है (चित्र 61)। वेधन के पश्चात पूय का सिरिंज से चूषण किये जाने का प्रयास करना चाहिए जिसके बाद विवर को चार प्रतिशत बोरिक अम्ल विलयन से धोना चाहिए।

कोटर की अवस्था को तरल के गुणों से आंका जाता है।

<u>उपचार</u>. तेज ज्वर वाले परानासा विवरों के तीव्र शोथों में रोगी को बिस्तर में रखकर उसे ज्वररोधी औषधियां जैसे एसप्रीन, एसीटील सेलिसीलिक अम्ल और कैफीन दी जानी चाहिए। इनको 0.5 ग्राम और 0.1 ग्राम पाउडर मात्रा में क्रमशः दो या तीन बार प्रतिदिन दिया जाता है। परानासा विवरों के प्राकृतिक छिद्रों की श्लेष्मा की सूजन को कम करने
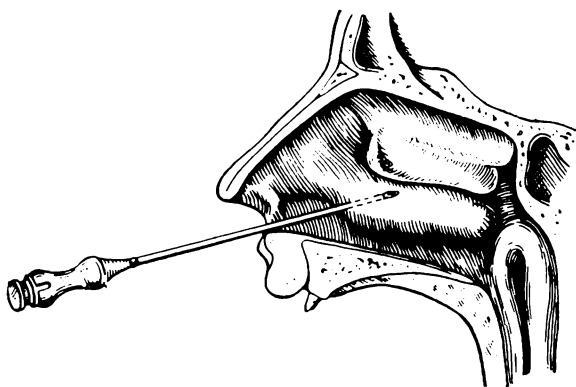
चित्र 61. हिगमार के कोटर का निम्न नासा-कुहर द्वारा वेधन

के लिए और आस्राव के निकास को बढ़ाने के लिए 5 प्रतिशत कोकेन-विलयन से मध्य नासा-कुहर को पेंट किया जाता है और नाक में कोकेन और एड्रीनालिन बून्दों का बिन्दुपातन दिन में कई बार किया जाता है।

Rp. Cocaini hydrochlorici 0.2
Sol. Adrenalini 1:1 000 gtt X
Sol. Acidi borici 4% 10.0

निर्देश: पांच बूंद प्रत्येक नथुने में दिन में 3-4 बार।

एफीड्रीन बूंदों को भी इसी उद्देश्य से प्रयोग में लाया जाता है।

Rp. Sol. Ephedrini hydrochlorici 3% 10.0

निर्देश: पांच बून्दें प्रत्येक नथुने में प्रतिदिन तीन से चार बार।

रोगी को बिन्दुपातन का सही तरीका सिखाना चाहिए, जिसमें कि सिर को काफी पीछे झुकाया जाता है और थोड़ा रोगी पार्श्व की ओर मोड़ा जाता है ताकि बून्दें मध्य नासा-कुहर में पहुंच सके।

परानासा विवर का प्राकृतिक छिद्र जो सूजी श्लेष्मा के कारण संकीर्ण हुआ रहता है, उपचार से चौड़ा हो जाता है, और कुछ मामलों में पूय सीधा मध्य नासा-कुहर से बह सकता है।

तीव्र मैक्सीलरी वायुविवर-शोथ का असरदार इलाज गर्म सम्पीड, नीला "सौलूक्स" और पराबैंगनी प्रकाश व साथ ही अतिलघु तरंग डायाथर्मी

हैं, जिन्हें रोज एक चौथाई घंटों के काल तक 12 से 15 दिन तक दिये जाने से काफी लाभ होता है। यदि इस अवस्था के प्रारंभ से 10-12 दिनों के बाद तीव्र लक्षण कम हो जायें और विवर-निकास खुल जाये तो डायाथर्मी को बचे हुए लक्षणों को ठीक करने के काम में लाया जाता है, साथ ही कोटर का वेधन करने के लिये पेनिसीलिन और स्ट्रेप्टोमाइसिन इंजेक्शन दिया जाता है।

**चिरकारी मैक्सीलरी वायुविवरशोथ.** हालांकि कोटर-श्लेष्मा के चिरकारी शोथ ज्यादा तीव्र शोथ के बचे हुए लक्षणों के परिणाम होते हैं, ये तीव्र प्रक्रिया के अभाव में भी नासा-गुहा दूसरे परानासा-विवरों और झर्झरिका गहन से चिरकारी शोथ के प्रसार से हो सकता है। चिरकारी हिग्मोराइटिस का दूसरा कारण दंत-मूल का शोथ है।

लक्षण स्वप्रत्ययी लक्षण अधिक स्पष्ट नहीं होते हैं। रोगी एकतरफा नासा-अवरोध, कम या वेशी प्रचुर नासा-आस्राव, जो कभी-कभी सपूय भी होता है, सिरदर्द और मानसिक कार्य से शीघ्र थक जाने की शिकायत करते हैं। काफी आम लक्षण है अल्पघ्राणता और कभी-कभी नाक में दुर्गन्ध का बोध, यानी कैकोस्मिया। मध्यनासाकुहर के भौतिक परीक्षण से वैकृतिजनक परिवर्तन सामने आते हैं जैसे श्लेष्मा में शोथ-लक्षण और पालिप, साथ ही सपूय और श्लेष्मसपूय आस्राव, जो रूई के फाहे के साथ साफ करने के तुरन्त बाद फिर आ जाता है।

निदान. चिरकारी मैक्सीलरी वायुविवर-शोथ का निदान शिकायतों और भौतिक चिन्हों के आधार पर किया जाता है। विभेदी निदान के लिए सहायक उपायों, जैसे एक्सरे फोटोग्राफी, पारप्रदीपन, प्रूफवेधन और हिग्मार के कोटर के धोवन से किया जाता है।

उपचार। चिरकारी मैक्सीलरी वायुविवर-शोथ का असरदार संवेदी उपचार है कोटर का लवण विलयन द्वारा धोवन और उसके बाद पेनिसिलीन या स्ट्रेप्टोमाइसिन विलयनों की 200 000 से 250 000 इकाइयों का 2-3 मि० ली० मात्रा में इंजेक्शन।

धोवन वेधन-सुई की सहायता से कोटर के निम्न नासा-कुहर में वेधन के बाद किया जाता है। हल्के केसों में डायाथर्मी, अति उच्च आवृतिक करेण्टों और "सौलूक्स" प्रकाश चिकित्सा द्वारा कभी-कभी लाभ हो सकता है।

बहरहाल, अधिकतर मामलों में विवर से पालिप और कणांकुर निकालने
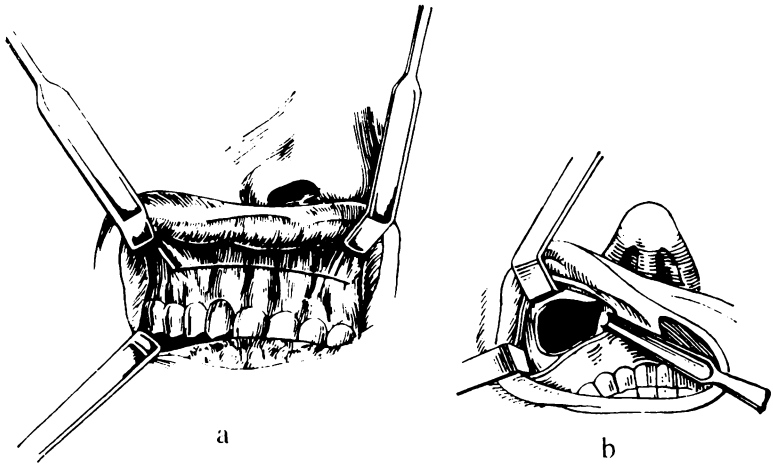
चित्र 62. मैक्सीलरी विवर पर मूलक शल्यक्रिया
(a) छेदन ; (b) अग्र अस्थि-भित्ति खोलना

के लिए और विवर और नासा-गुहा में चौड़ा संचार करने के लिए शल्य-क्रिया आवश्यक होती है। ए० एफ० इवानोव द्वारा शल्यक्रिया का एक बेहतर तरीका सुझाया गया है।

प्रथम अवस्था ऊपरी ओंठ के नीचे की श्लेष्मा में छेदन ( चित्र 62 ) है जो कोमल ऊतक को उठा कर कोटर की अग्र अस्थि भित्ति को अनावरित करता है। भित्ति को जहाँ तक संभव हो चिजल और फारसेप्स द्वारा खोला जाता है ( चित्र 63 )। पहला छेद मैक्सीलरी गंड-प्रवर्ध के जुड़ने के स्थल पर किया जाता है, क्योंकि यह विवर के अन्दर थोड़ा ही सही पर पहुंचने की सुविधा देता है पूय और रोगी श्लेष्मा को अग्र कोटर-भित्ति के छिद्र से हटा दिया जाता है, जबकि सामान्य श्लेष्मा को ऐसे ही छोड़ दिया जाता है। नासा-गुहा के साथ संचार निम्न नासा-कुहर में कोटर की आन्तरिक भित्ति के एक भाग को हटाकर बनाया जाता है ( चित्र 64 )। इस शल्यक्रिया को स्थानीय संवेदनाहरण के साथ किया जाता है।

आपरेशन के बाद गाल पर बर्फ का थैला रखा जाता है, ताकि सूजन कम रहे। रोगी को 3-4 दिनों तक ठंडा तरल भोजन दिया जाता है। शस्त्रकर्मोत्तर उपचार में नव निर्मित नासाकोटर-गवाक्ष में प्रतिरोधी डूश आपरेशन के चार या पांच दिनों बाद दिया जाता है।
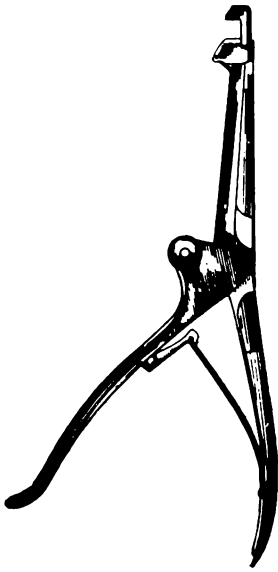
चित्र 63. मैक्सीलरी विवर की अग्र भित्ति को हटाने के लिए अस्थि फारसेप्स
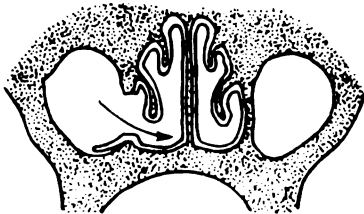
चित्र 64. नव निर्मित गवाक्ष कोटर और निम्न नासा-कुहर में मैक्सीलरी विवर पर मूलक शल्यक्रिया में

रोग-निरोध. मैक्सीलरी विवरों के शोथी रोगों को तीव्र और चिरकारी नासा-शोथ और ऊपरी चर्वण दन्तों के सही और सामयिक उपचार से रोका जा सकता है। इन सबका इन विवरों से सीधा संबंध है।

**तीव्र फ्रंटल वायुविवर-शोथ।** फ्रंटल वायुविवर-शोथ को पैदा करने वाली परिस्थितियां और कारण वे ही हैं जो मैक्सीलरी वायुविवरशोथ में पाये जाते हैं। इस अवस्था में मूल शिकायत दर्द और फ्रंटल विवर के फर्श पर, यानी नेत्रगुहा के छत के ऊपरी आन्तरिक मोड़ पर अंगुली रखने से अत्यधिक दाब-वेदना की होती है। फ्रंटल वायुविवर-शोथ के साथ प्रकाश असह्यता, अश्रुस्रवण और नेत्रगुहा में वेदना देखे जाते हैं। गंभीर मामलों में, खासकर जिनमें फ्रंटल विवर से कम निकास होता है, ऊपरी पलक और भौंह पर सूजन भी हो सकती है।

अग्र नासा-दर्शन में वे ही भौतिक चिन्ह प्रकट होते हैं जो मैक्सीलरी वायुविवर-शोथ में।

निदान. यह पार-प्रदीपन और एक्सरे की सहायता से किया जाता है।

उपचार. सबसे आम उपचार संरक्षी उपचार होता है। पेनिसिलिन को अंतर्पेशी इंजेक्शन के द्वारा चार से छ: बार रोज दिया जाता है,

ताकि ज्वर और सिरदर्द समाप्त हो जाये और जल्द सुधार हो सके।

इसके अलावा, विवर से आस्राव के निकास को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इसके लिए मध्य नासाकुहर को कोकेन से पेंट किया जाता है और कभी-कभी इस क्षेत्र में मध्य शुक्तिका के अग्र अन्त को हटाने के लिए हल्की शल्यक्रिया भी आवश्यक होती है।

नीले और "सौल्यूक्स" प्रकाश से सेंक, साथ ही अतिलघुतरंग डायथर्मी सहित विभिन्न भौतिक चिकित्सीय प्रक्रियाएं अत्यंत सहायक होती हैं।

**चिरकारी फ्रंटल वायुविवर-शोथ.** इस रोग के स्वप्रत्ययी लक्षण इसी विवर के तीव्र शोथों से काफी हल्के होते हैं। हालांकि, ये लक्षण फ्रंटल विवर से कम निकास के परिणामस्वरूप होने वाले दाब-परिवर्तनों और इसके फर्श पर अत्यधिक दाब-वेदना के रूप में बढ़ सकते हैं। कड़ा पेय लेने, धूम्रपान लेने, धूम्रपान, रात्रि-कार्य, आदि के कारण सिर में होने वाले फ्रंटल विवर में वेदना बढ़ सकती है। नेत्र गुहा के आन्तरिक मोड़ में नालव्रण विकसित हो सकता है।

निदान. इसे ज्यादातर सारे स्वप्रत्ययी लक्षणों और भौतिक चिन्हों को देखकर निर्धारित किया जाता है। सहायक निदानी प्रक्रियाएं हैं—पार-प्रदीपन, एक्सरे फोटोग्राफी, और नासा की फ्रंटल वाहिनी को प्रोब करना।

उपचार. यदि संवेदी उपचार सफल न रहे या फ्रंटल वायुविवर-शोथ का ऐसा गहरा रूप हो कि उसमें सिरदर्द रोगी को लाचार बना दे, तो शल्य व्यतिकरण करना चाहिए। अस्थि-भित्तियों की विक्षति, नालव्रण, सर्वोपरि कपाल-गुहा और नेत्र-गुहा में शोथ-प्रक्रिया के प्रयास से होने वाले उपद्रव भी फ्रंटल विवर में मूलक आपरेशन के स्पष्ट संकेत हैं।

शल्यक्रिया नियमतः स्थानीय संवेदनाहरण करके की जाती है। त्वचा और पर्युपास्थि का छेदन नेत्र के आन्तरिक मोड़ के आगे जाकर नासा-अस्थि के संग नेत्र-गुहा के निचले कटक तक भौंह के साथ किया जाता है (चित्र 65)। कोमल भागों को ऊपर और नीचे की ओर कर दिया जाता है, ताकि फ्रंटल विवर की अग्र भित्ति और फर्श का अनावरण हो जाये और विवर के फर्श पर चौड़ा छिद्र बन सके। विवर से विकारी श्लेष्मा, पूय और कणांकुरों को हटा दिया जाता है, जिससे नासा-गुहा और फ्रंटल विवर के बीच चौड़ा मार्ग बन जाता है।

इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि अग्र झर्झरिका-कोशिकाएं फ्रंटल विवर के साथ प्रभावग्रस्त होती हैं, ए० एफ० इवानोव ने सुझाया है कि

चित्र 65. फ्रंटल विवर के मूलक ग्रापरेशन में त्वचा छेदन

तथाकथित फ्रंटो-झर्झरिका ट्रैफाइनेशन ऊपर लिखित ग्रापरेशन के सभी केसों में झर्झरिका-कोशिकाग्रों में साथ ही छिद्र बनाकर किया जा सकता है। शल्य-क्रिया के ग्रन्त में फ्रंटल विवर में नाक ग्रौर नासा-मार्ग द्वारा स्थूल रबड़-निकास का निवेशन किया जाता है। छेदन को कोमल ऊतक में टांके देकर पूरी तरह बन्द कर दिया जाता है।

शस्त्रकर्मोत्तर उपचार मैक्सीलरी विवर को खोलते समय किये गये उपचार के समान होता है, यानी समय-समय पर फ्रंटल विवर में पूतिरोधी डूश द्वारा।

**तीव्र ग्रौर चिरकारी झर्झरिका-शोथ.** झर्झरिका-कोशिकाग्रों में तीव्र शोथ के लक्षण फ्रंटल वायुविवर-शोथ के समान होते हैं।

यदि नासा-मूल ग्रौर नेत्र-गुहा के ग्रान्तरिक मोड़ में वेदना महसूस हो तो यह झर्झरिका-कोशिकाग्रों के रोग का द्योतक हो सकती है। चिरकारी रोग-स्थितियों में स्वप्रत्ययी लक्षण फ्रंटल या झर्झरिकाविवर-रोग के साथ जोड़े जा सकते हैं, तो भी लक्षणों का ग्रभाव हो सकता है। झर्झरिका-शोथ के चिरकारी रूप में नासा-दर्शन कमोबेश प्रकारात्मक चिन्हों को प्रकट करता है। कई बार मध्य नासा-कुहर पालिपों से भरा रहता है ग्रौर इनमें से पूय निकलता रहता है। ऊर्ध्व नासा-कुहर में मध्य शुक्तिका के ऊपर पूय का होना पश्च झर्झरिका-कोशिकाग्रों या जतुक-विवर में सपूयता का निदानी द्योतक है।

उपचार. तीव्र केसों में उपचार तीव्र फ्रंटल वायुविवरशोथ के उपचार के समान होता है।
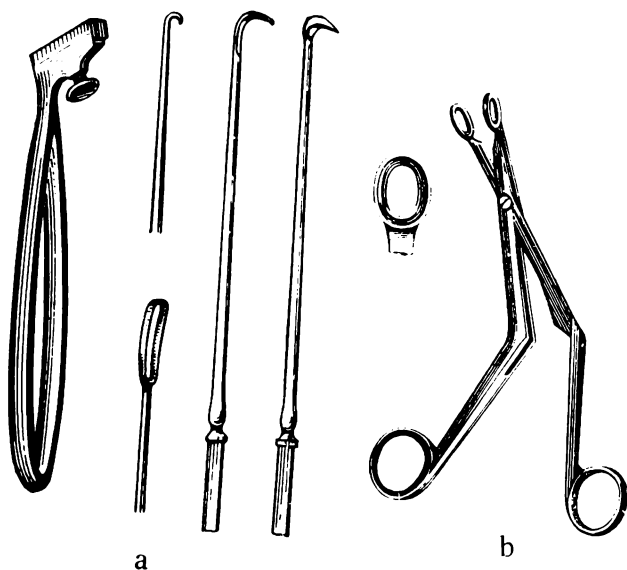
चित्र 66.

(a) झर्झरिका-गहन पर शल्यक्रिया के उपकरण; (b) नासा-फारसेप्स

चिरकारी केसों में सभी झर्झरिका-कोशिकाओं को खोलने के लिए शल्यक्रिया की आवश्यकता होती है। यह शल्यक्रिया अधिकतर नाक से विशेष उपकरणों के सेट द्वारा की जाती है (चित्र 66a)। कोशिकाओं को खोलने के बाद फटे हुए ऊतक के टुकड़ों को कान्कोटोम या फारसेप्स (चित्र 66b) द्वारा हटाया जाता है और फिर नासा-पाश से पूरे झर्झरिका-गहन क्षेत्र को साफ किया जाता है।

अग्र कोशिकाओं की विक्षति में यानी फ्रंटल विवर के फर्श से सटी को कोशिकाओं में और वाह्य नालव्रणों के होने पर शल्य क्रिया को मुंह पर वाह्य छेदन देकर किया जाता है जैसा कि फ्रंटल विवर पर शल्यक्रिया में भी होता है।

**जतुक-शोथ.** जतुक-विवर की सपूयता पश्च झर्झरिका-कोशिकाओं की विक्षति से आम तौर पर सम्बन्धित होती है, क्योंकि ये जतुक-विवर से निकटता से सटे रहते हैं। इस अवस्था का विशिष्ट लक्षण है सिरदर्द के साथ ग्रीवा में प्रतिवर्ती वेदना जो कभी-कभी ललाट या शिरोबिन्दु पर भी देखी जाती है। नासा-दर्शन में ऊर्ध्व नासा-कुहर में पूय दिखायी देता है,

जो नासा-ग्रसनी में बहता है। जतुक-विवर की प्रोबिंग ग्रौर धोवन, दोनों निदान ग्रौर उपचार का ग्रंग हैं। जतुक-विवर की ग्रंतर्नासा शल्य-छेदन कभी कभी ग्रावश्यक हो जाता है।

**नेत्र-गुहा ग्रौर कपाल-गुहा के उपद्रव**. परानासा-विवरों में तीव्र या चिरकारी शोथों से नेत्र-गुहा में या कपाल-गुहा में उपद्रव हो सकते हैं, जो कभी-कभी मृत्युकारक हो सकते हैं। यह उपद्रव शोथी ऊतक ग्रौर नेत्र-गुहा ग्रौर कपाल-गुहा के तत्वों के बीच सीधे संपर्क से, साथ ही रक्त ग्रौर लसीका वाहिकाग्रों द्वारा संक्रामण के प्रसार से उठ खड़े हो सकते हैं। जो शिराएं नासा-गुहा के ऊर्ध्व भाग ग्रौर परानासा-विवरों को ड्यूरा मार्टेर के लम्ब शिरानाल से जोड़ती हैं, वे शिरानाल में शोथ के फैलने का मार्ग बन सकती हैं ग्रौर इसमें शिराशोथ हो सकता है।

नेत्र-गुहा ग्रौर नेत्र-तंत्रिका पर शोथ ग्रंतर्संचरण के दाब से विस्थापित हो सकती है, या बाहर निकल सकती है। इसका दूसरा परिणाम दृष्टि-हानि है, जो हल्के केसों में रोग के मूल कारण का सफाया होते ही पुनर्स्थापित हो जाती है।

कुछ झर्झरिका-कोशिकाग्रों के भीतर ग्रंतर्पूयता के केसों में शोथ फैल कर नेत्रोत्तर कोशिकीय ऊतक में सपूयता पैदा कर सकता है, जिससे उपद्रवों से दृष्टि-ग्रंग ग्रौर जीवन को खतरा हो सकता है।

हिग्मार का कोटर ग्रंतर्कपाल से ज्यादा नेत्री उपद्रवों का स्रोत होता है।

ग्रंतर्कपाल उपद्रवों, जैसे दृढ़तानिका वाह्य विद्रधि, सपूय विद्रधि, सपूय तानिका-शोथ ग्रौर मस्तिष्क-विद्रधि में सर्वाधिक खतरनाक उपद्रव मस्तिष्क-विद्रधि है।

परानासा विवरों के समय पर उपचार से इन खतरनाक उपद्रवों को रोका जा सकता है। ग्रंतर्कपाल उपद्रवों का संदेह होने पर मूलक शल्यक्रिया ग्रौर प्रबल प्रतिजीवी उपचार (ग्रधिक मात्रा में पेनिसिलिन, स्ट्रेपटोमाइ-सिन ग्रादि) से किया जाता है।

यदि ग्रवस्था इतनी गंभीर हो कि कपाल गुहा में शल्यक्रिया करनी पड़े तो मस्तिष्क की शल्यक्रिया के ग्राम नियमों का ग्रवश्य ही पालन करना चाहिए।

# ग्रसनी के रोग

## ग्रसनी की शरीर-रचना

ग्रसनी मुख गुहा तथा ईसोफेगस बीच स्थित पोषण-पथ का चौड़ा हिस्सा होती है। यह श्वसन-पथ का भी भाग है क्योंकि यह नासा गुहा को स्वरयंत्र ( लरिंक्स ) से जोड़ती है। ग्रसनी का ऊपरी भाग, जिसे एपिग्रसनी कहते हैं, पश्च नासा द्वार के द्वारा नासा-गुहा से संचार करता है तथा इसे नासा-ग्रसनी कहते हैं।

यूस्टेशियन नलियों के द्वार, जो अधोनासा-शुक्तिका के पश्च अन्तों के स्तर पर स्थित होते हैं, नासा-ग्रसनी की पार्श्व भित्तियों पर पाये जाते हैं।
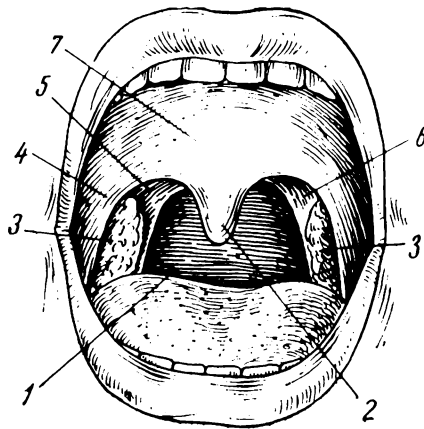
चित्र 67. ओरोग्रसनी

(1) ग्रसनी की पश्च भित्ति ; (2) युवुला ; (3) तालु टांसिल ; (4) अग्र गलतोरणिका-स्तंभ ; (5), (6) पश्च गलतोरणिका-स्तंभ ; (7) कोमल तालु
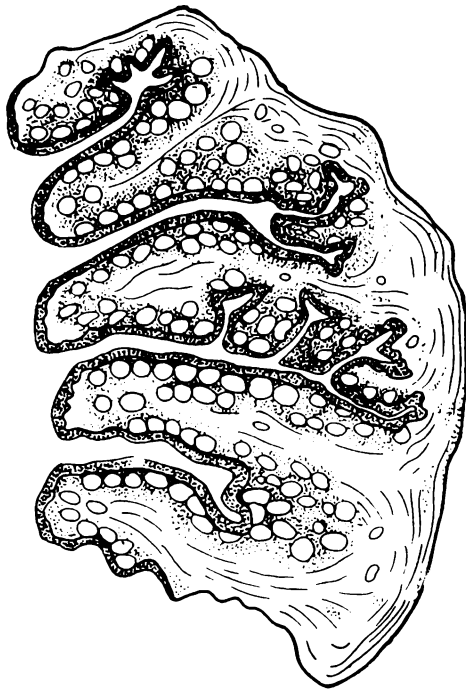
चित्र 68. टांसिल का क्षैतिज मध्य रेखा परिच्छेद, जो जहां फालिकलों से घिरे गहरे शाश्वत दरियों को दिखा रहा है।

नासा-ग्रसनी की पश्च भित्ति के ऊपरी भाग में लिम्फेडिनाइड ऊतकों का संग्रह ग्रसनी या तृतीय टान्सिल बनाता है जिसके 5-6 खण्ड होते हैं जो एक सामान्य केन्द्र से अपसरण करते हैं। दो या तीन साल के बच्चों में यह टान्सिल बहुधा अतिवृद्धित रहता है तथा जैसे-जैसे वे बड़े होते हैं यह आकार में कम होने लगता है तथा यौवनारंभ होते-होते यह विसरित लिम्फेडिनाइड ऊतक रह जाता है जो नासाग्रसनी की छत को आच्छादित करने वाली श्लेष्मा के तल से यदा-कदा ही उभरता है। एक तल जो कठोर तालु का पीछे की ओर विस्तार है, नासा-ग्रसनी को ग्रसनी के मध्य भाग से अलग करता है तथा इसे मिजोग्रसनी या ज्यादा आम तौर पर ओरोग्रसनी कहते हैं (चित्र 67)।

ओरोग्रसनी पश्च तथा पार्श्व भित्तियों से घिरा होता है तथा तदनुरूप नासा-ग्रसनी की भित्तियों से मिलकर आगे बढ़ जाता है तथा आगे यह मुख-

गुहा से गलतोरणिका हो कर संचार करता है। गलतोरणिकाएं ऊपर कोमल तालु से नीचे जिह्वा के आधार से तथा दोनों तरफ से अग्र और पश्च तालु-चापों से जिन्हें गलतोरणिका स्तंभ भी कहते हैं, घिरी होती हैं।

ग्रसनी में अच्छी तरह विकसित लिम्फेडिनाइड ऊतक होते हैं जो गलतोरणिका स्तंभों के बीच अच्छे खासे बड़े समूह दोनों तरफ बनाते हैं, जिन्हें प्रथम तथा द्वितीय तालु या गलतोरणिका टांसिल कहते हैं। द्वितीय गलतोरणिका-टांसिल के मुक्त तल में, जो ग्रसनी के सामने होती है, बहुत से गर्त की तरह के अवदाब या दरी होते हैं जो टांसिल के पूरे देह से गुजरते हैं (चित्र 68)। शल्की उपकला, जो टांसिल के मुक्त तल को अस्तरित करती है, दरी को भी अस्तरित करती है। जिह्वा के आधार पर लिम्फेडिनाइड ऊतकों का इसी तरह का संग्रह चौथा या जिह्वीय टांसिल कहलाता है। इन चार टांसिलों तथा श्लेष्मा-कला में लसीका फालिकिल से बना लसीकाभ ऊतकों के वलय की तरह की शृँखला को ग्रसनी-लसीकाभवलय कहते हैं।

जिह्वा के आधार से पीछे की तरफ प्रसारित तल ओरोग्रसनी को लैरिंगोग्रसनी या हाइपोग्रसनी से अलग करता है जो नीचे स्थित होता है और पीछे ईसोफेगस में खुलता है। ग्रसनी का निचला हिस्सा स्वरयंत्र (लैरिंक्स) में खुलता है। नासा-ग्रसनी की श्लेष्मा-कला स्तरित स्तंभाकार रोमक उपकला से बनी होती है, जब कि इसके दूसरे दो विभाग स्तरित शल्की उपकला से अस्तरित होते हैं। ग्रसनी-श्लेष्मा में अनगिनत श्लेष्मा-ग्रंथियाँ होती हैं।

संकीर्णक पेशियां ग्रसनी-श्लेष्मा के अन्दर रहती हैं तथा ग्रसनी के मध्य तथा निम्न भागों को संकुचित कर भोजन को ईसोफेगस में ढकेलने का काम करती हैं।

## ग्रसनी का क्रिया-विज्ञान

ग्रसनी हवा तथा भोजन के मार्ग तथा आवाज के लिए अनुनाद-कक्ष का कार्य करती है। ग्रसनी में भोजन तथा वायु के मार्ग का नियमन करने के लिए एक प्रतिवर्तक्रिया-विधि होती है क्योंकि ग्रसनी में पोषक-पथ तथा श्वसन-पथ एक दूसरे से होकर गुजरते हैं। आराम में नासा-ग्रसनी मुख-गुहा में खुलती है, जबकि निगलने में तथा कुछ स्वरों तथा व्यंजनों के उच्चारण

करने में कोमल तालु, पश्च ग्रसनी-भित्ति के सामने की तरफ खिंच जाती है तथा नासा-ग्रसनी को ओरोग्रसनी की तरफ से पूरी तरह बन्द कर देती है, तथा इस तरह भोजन को नासा-ग्रसनी तथा नासा में जाने से, जैसा कि कोमल तालु के लकवे की स्थिति में (मसलन डिप्थीरिया के बाद) हो सकता है, रोकती है।

पोषण ग्रास का जाना लैरिंक्स के बन्द होने के साथ होता है। यह थोड़ा जिह्वा के आधार के पास आ जाता है और इसका दाब एपीग्लोटिस को लैरिंक्स के संकीर्ण प्रवेश पर संपीडित कर देता है, जिससे ग्रास ईसोफेगस में चला जाता है।

ग्रसनी जो कि कोमल तालु और जिह्वा के आधार पर स्वादतंत्रिका-अंतों से भरी होती है, स्वाद के अंग के तौर पर भी काम करती है तथा तेज ताप या रासायनिक क्षोभ होने पर या आगंतुक शल्य के प्रविष्ट हो जाने पर प्रतिवर्त पेशी संकीर्णन का सुरक्षात्मक कार्य भी करता है।

ग्रसनी के लसीकाभ वलय का ठीक-ठीक कार्य क्या है—यह सवाल अभी विचार-विमर्श का विषय है। अधिकांश लेखक "रक्षात्मक सिद्धान्त" में विश्वास करते हैं, जिसके अनुसार टांसिल तथा अन्य लिम्फेडिनाइड संरचनाएं जीवाणु-संक्रमण के खिलाफ रक्षात्मक बाधा के तौर पर काम करती हैं। दूसरी ओर, विकृत अवस्थाओं में टांसिल अपनी दरियों के साथ, जिनमें बराबर जीवाणु रहते हैं, संक्रमण के लिए प्रवेश-मार्ग का काम करते हैं तथा टांसिल-शोथ और पूरे शारीरिक रोगों में संबंध का कारण बनते हैं। संक्षेप में, ग्रसनी की लिम्फेडिनाइड संरचनाओं की क्रिया को दूसरे अंगों की ऐसी ही फालिकूलर संरचनाओं से अलग कर के नहीं देखा जा सकता; उदाहरणार्थ क्षुद्रान्त के पेयर पैच, जो लसीकाकोशिकाएं पैदा करते हैं, तथा ऐसा समझा जाता है कि खून में प्रवेश कर रहे, संक्रामक टांसिल को प्रभावहीन कर देते हैं। इस कारण वैकृत तौर पर परिवर्तित टांसिल को हटाने से शरीर को कोई महत्वपूर्ण हानि पूरे तौर पर क्रियात्मक मूल की दृष्टि से नहीं होती है जैसा कि रोजबरोज के व्यवहार से देखने को मिलता है।

लसीकाभ वलय तथा पोषक पथ की लिम्फेडिनाइड संरचनाएं वैकृत टांसिल की दोषपूर्ण क्रिया की, साथ ही उसको पूरी तरह निकाल देने की क्षतिपूर्ति कर देते हैं।

नासा-ग्रसनी तथा मुख-गुहा का क्रियात्मक परीक्षण, चबाने और निगलने

को छोड कर, मुख्यत: एक स्वाद-परीक्षण के जरिये करते हैं जिसमें चीनी, कुनैन, नमक तथा विनेजर घोल का प्रयोग करते हैं, जिससे पीठे तीखे तथा खट्टे पदार्थों के लिए स्वाद निश्चित होता है। घोल को ग्लास-स्टिक से जिह्वा के दोनों तरफ लगाते हैं तथा गन्ध-बोध को बन्द करने के लिए नाक को ठीक से बन्द कर देते हैं।

जिह्वा के अग्र और पश्च भाग का परीक्षण अलग-अलग करना चाहिए क्योंकि दोनों का तंत्रिका-संभरण अलग-अलग होता है।

## ग्रसनी के परीक्षण की विधियां

मुख-गुहा तथा ओरोग्रसनी का परीक्षण कृत्रिम और स्वाभाविक रोशनी के द्वारा की जा सकती है।

रोगी तथा रोशनी के स्रोत को उसी स्थिति में रखते हैं जैसे कि नाक की परीक्षा में; शीर्ष-दर्पण का उपयोग भी उसी तरह करते हैं। मुख-गुहा की परीक्षा, जो कि ग्रसनी की परीक्षा के लिए आवश्यक है, ओष्ठों तथा मुँह के प्रघाण के निरीक्षण से शुरू होती है। श्लेष्मा का रंग नोट करने, खरोंचों, विद्रधियों या फिस्चुला का पता लगाने और मसूढ़ों तथा दांतों का निरीक्षण करने के लिए एक स्पैचूला या टंग-डिप्रेसर का उपयोग मुंह के कोनों को पीछे मोड़ने के लिए करते हैं और हल्के सहारे से ऊपरी और निचले ओष्ठों को मोड़ कर रखते हैं। जिह्वा तथा कठोर एवं कोमल तालुओं का निरीक्षण भी करना चाहिए। मुख-गुहा के फर्श के परीक्षण में स्पैचुला का उपयोग जिह्वा के शीर्ष को ऊपर उठाने के लिए करते हैं। जिनका परीक्षण इसके बाद करते हैं, वे भाग हैं—गलतोरणिका टांसिल तथा पश्च ग्रसनी-भित्ति। यहाँ स्पैचुला का उपयोग जिह्वा के पृष्ठ को धीरे से नीचे दबाने के लिये करते हैं। स्पैचुला को मुंह के अन्दर बहुत भीतर तक नहीं घुमाना चाहिए अन्यथा गैग (उबकाई) प्रतिवर्त हो जा सकता है। रोगी को अपनी जिह्वा बाहर नहीं निकालनी चाहिए या सांस नहीं रोकनी चाहिए, क्योंकि इससे परीक्षण में बाधा पहुँचेगी।

ऐसे हठी बच्चे को, जो अपने दांतों को पूरी तरह बन्द करते परीक्षण नहीं कराता, वैसी ही स्थिति में मजबूती से पकड़ कर रखना चाहिये जैसी स्थिति में एडिनाइड उच्छेदन में रखते हैं (चित्र 71)। नाक को दबाने से अगर सांस लेने के लिए वह मुँह नहीं खोलता है तो मुँह

के कोनों में स्पैचुला को पश्च मोलार के पीछे घुसाते हैं और जिह्वा के आधार तक ढकेलते हैं। बच्चे को उबकाई सी आती है और वह अपना मुँह खोल देता है। अब चिकित्सक जिह्वा को स्पैचुला से दबा सकता है ताकि ग्रसनी का परीक्षण कर सके।

चापों सहित कोमल तालु, कोमल तालु की गतिशीलता तथा मुंह की छत में संभावित नालव्रण, क्षत-चिन्ह या विदर पर ध्यान दिया जाता है। ग्रसनी-श्लेष्मा का सामान्य रंग गुलाबी-लाल या गुलाबी रहता है जबकि अलिजिह्वा या गलतोरणिका-स्तंभों का रंग ज्यादा गहरा होता है।

गलतोरणिका टांसिल के परीक्षण में उनकी श्लेष्मा-कला के रंग तथा उनके आकार, गलतोरणिका-स्तंभों से उनके आसंजन तथा टांसिली दरियों की अन्तर्वस्तु पर ध्यान देते हैं।

गलतोरणिका-स्तंभों के बीच छिपे टांसिल के मुक्त तल के साथ ही दरियों की अन्तर्वस्तु के निरीक्षण के लिए स्पैचुला या भोथरे हुक से अग्र स्तंभ को आगे की तरफ खींचते हैं तथा स्पैचुला को अग्र स्तंभ पर धीरे से दबाते हैं ताकि टांसिल को उसके क्षेत्र से हटाया जा सके तथा उसके गहरे गर्तों से अन्तर्वस्तुओं को निकाला जा सके। जब ग्रसनी के लैरींजियल हिस्से का निरीक्षण किया जा रहा होता है तब जिह्वा को मजबूती से नीचे तथा बाहर की तरफ, अगर संभव हो तो वक्रित स्पैचुला या एक नासोत्तर दर्पण से दबाते हैं, जैसा कि लैरिंजोस्कोपी में होता है।

मुख-गुहा तथा ग्रसनी के परीक्षण में साथ ही यह जान लेना भी जरूरी होता है कि उपमैक्सीलरी क्षेत्र तथा ग्रीवा के पार्श्व हिस्से की हालत क्या है, ताकि बढ़े हुए लसीका पर्वों, अर्बुद अतिवृद्धियों या विक्षेपों तथा फ्लेगमोन्स आदि का पता चल सके।

## एडिनाइड का अतिविकसन

नासाग्रसनी-भित्ति के ऊपरी भाग में तीसरा या ग्रसनी टांसिल होता है जो ऐसे पीले या लाल समूहों से बना होता है जिन्हें लंबे विदर अलग करते हैं। नाक तथा नासा-ग्रसनी के बार-बार होने वाले शोथ के कारण टांसिल में बहुधा अतिवृद्धि हो जाती है; यह पश्च नासाद्वार तथा यूस्टेशियन नली के द्वार को अवरुद्ध कर देता है तथा नासा ग्रसनी के बड़े भाग को भर देता है।

बच्चों के संक्रामक रोग, जैसे मीजिल्स, स्कार्लेट ज्वर, इन्फ्लूएंजा तथा

डिप्थीरिया आदि, कभी-कभी एडिनाइड के तेजी से विकास को प्रेरित करते हैं। ये अतिवृद्धि आम तौर पर तीन से आठ या दस साल के बच्चों में पायी जाती है, लेकिन यह जीवन के पहले वर्ष या यौवनारंभ के बाद भी हो सकती है, जबतक सामान्यतः एडिनाइड खत्म हो जाने की प्रवृत्ति रखते हैं।

लक्षण. एडिनाइड के द्वारा उत्पन्न लक्षण मुख्यतः वे ही होते हैं, जो नासा-अवरोध या लगातार नासा-शोथ के, तथा इन पर सामान्य संरक्षी उपचार का असर नहीं होता है। नासा अवरोध के परिणामस्वरूप एडिनाइड वाले बच्चे सोते समय मुंह खुला रखते हैं तथा जगे रहने पर भी मुंह को आधा खुला रखते हैं, जिससे उनके नासा-ओष्ठ वलि चपटे हो जाते हैं तथा उनके चेहरे की अभिव्यक्ति उदास और मन्द हो जाती है। लगातार मुंह से सांस लेने से कठोर तालु ऊंची चाप वाला तथा संकीर्ण हो जाता है, जिसका मतलब है तथाकथित "गोथिक" तालु का बन जाता है। ग्रसनी टांसिल में अतिविकसन के साथ-साथ बहुधा दूसरी लसीकीय संरचनाओं में भी वृद्धि होने लगती है। सर्वोपरि गलतोरणिका-टांसिल में इस हालत में नासा-अवरोध और भी ज्यादा हो जाता है। इस तरह के मुख-श्वसन से बच्चे के शरीर की बनावट पर, खास तौर पर उसकी छाती के आकार पर, बुरा असर पड़ता है। यही कारण है कि एडिनाइड हुए बच्चे शारीरिक तौर पर कमजोर तथा मानसिक तौर पर मन्द दिखते हैं। उनमें बहुत से तंत्रिका-विकार, खास तौर पर रात्रि में असंयत मूत्रता, हो जाते हैं जिसे प्रतिवर्त-विक्षिप्ति समझा जाना चाहिए। वे बहुधा सिर-दर्द तथा ध्यान जमा पाने में असमर्थता की शिकायत करते हैं।

एडिनाइड के पुटकों तथा गर्तों में जीवाणुओं के अनगिनत संग्रह रहते हैं जो नासा-ग्रसनी के बहुधा हो जाने वाले तथा तीव्र शोथ के लिए जिम्मेदार होते हैं। एडिनाइड अतिवृद्धि से, जो मध्यकर्ण-संवातन में हस्तक्षेप करती है, धीरे-धीरे श्रवण-हानि या मध्य कर्ण के बार-बार होने वाले शोथ हो सकते हैं। पश्च नासा-द्वार की तरफ नासा-अवरोध होने के कारण बच्चा अनुनासिका के साथ बोलता है (रोधज अनुनासिका-दोष)

निदान. ऊपर वर्णित लक्षणों के अतिरिक्त निदान, नासा-दर्शन पर, मुख्यतः नासोत्तर दर्पण-परीक्षण पर आधारित होता है। यह नासा-ग्रसनी का सीधा दृश्य दिखाता है जो छत से लटके तथा पश्च नासा-द्वार को कम या ज्यादा सीमा तक अवरुद्ध करने वाले एडिनाइड अतिविकसन से भरी
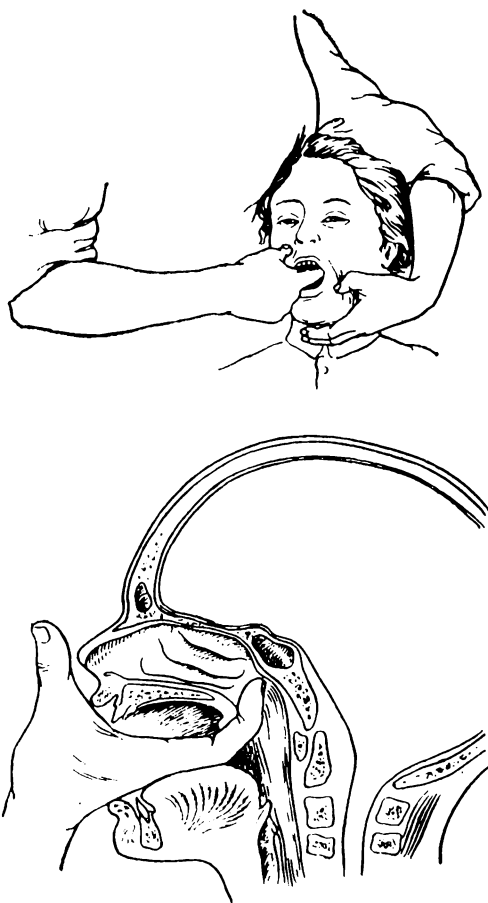
चित्र 69. नासा-ग्रसनी अंगुली परिस्पर्शन

रहती है। पश्च नासा-दर्शन बच्चों में बहुधा असंभव होता है, जिस हालत में नासा-ग्रसनी का परिस्पर्शन करने के लिए अंगुली का प्रयोग करते हैं (चित्र 69)। यह एडिनाइड को पहचानने की तथा यह निश्चित करने की आसान विधि है कि वे पेस्टी हैं या कम कोमल गाढ़ता युक्त।

उपचार. अधिकांश मामलों में एडिनाइड का उपचार शल्य-चिकित्सा के द्वारा करते हैं। एडिनाइड उच्छेदन के लिए संकेत एडिनाइड के आकार पर उतना निर्भर नहीं होना चाहिए जितना कि उनके द्वारा पैदा किये जाने

वाले आकारिकी विक्षोभों में इसकी संभावना रहती है, जैसे लगातार बने रहने वाले नासा-शोथ में, जो संरक्षी उपचार की नहीं सुनता, तथा मध्य कर्ण के बार-बार होने वाले शोथ हैं।

शस्त्रकर्म आम तौर पर सबसे खाली पेट में पांच आकारों में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के ऐसे एडिनोटोमों की सहायता से करते हैं जो नासा-ग्रसनी के आकार में फिट कर जाते हैं (चित्र 70)।

चित्र 70. पांच आकारों में एडिनोटोम

रोगी बच्चे को चादर से लपेट कर एक सहायक मजबूती से पकड़े रहता है, वह बच्चे के पैरों को अपने पैरों के बीच फंसा कर एक हाथ से उसके सिर तथा दूसरे हाथ से छाती और बाहों को यथास्थान पर रखता है (चित्र 71)। शस्त्रकर्म के दौरान बच्चे को सिर को हिलाने या पीछे करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। जिह्वा को स्पैचुला के दबाने के बाद एडिनोटोम को नासा-ग्रसनी में कोमल तालु के पीछे डालते हैं तथा ठीक मध्य रेखा में रख कर नासा-ग्रसनी की छत तक दबाते हैं, कुछ आगे तक फिर तेज झटके से आगे-पीछे तक एडिनाइडों को नासा-ग्रसनी की पश्च भित्ति और छत के साथ चलते हुए काट देते हैं तथा खींच लेते हैं (चित्र 72)। एक कोन्टोटोम से नासा-ग्रसनी के ऊपर लटके ऊतकों को भी कटर देते हैं (चित्र 73)। रक्तस्राव आम तौर पर कम होता है और उसे आसानी से नियंत्रण में लाया जा सकता है।

चित्र 71. एडिनाइड उच्छेदन में रोगी की स्थिति

एडिनाइड उच्छेदन रक्तोत्पादक रोगों में, खासतौर पर हिमोफीलिया में, प्रतिदिष्ट है
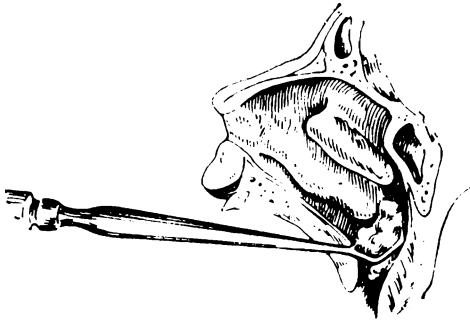
चित्र 72. एडिनाइड को निकालना

तथा स्कंदन के लिए इसमें एक प्रारंभिक रक्त-परीक्षण की जरूरत होती है।

शस्त्र कर्म के बाद बच्चे को एक समय में एक नासा-द्वार को हल्के से झिड़क कर नाक से खुन निकालने ग्रौर हाइड्रोजन से गरारा करने के
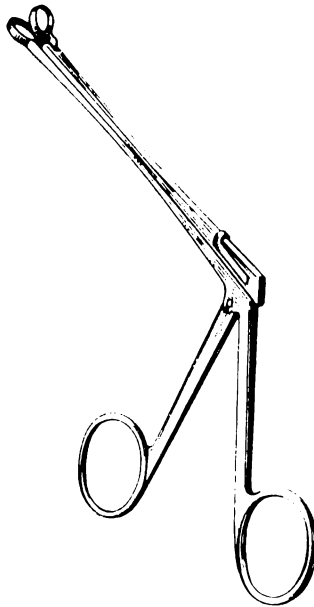
चित्र 73. कोन्कोटोम

लिए कहते हैं। फिर बच्चे के नाक को रूई से तबतक पक करके रखते हैं जबतक कि रक्तस्राव पूरी तरह बन्द न हो जाये; उसे बिस्तरे पर 2-3 घंटे तक शांत पड़ा रहने के लिए कहते हैं।

अगर रक्तस्राव चलता रहे तो रक्त को **निगलना** नहीं चाहिए, बल्कि बेसिन में थूक देना चाहिए।

बाद की देखभाल का काम मां-बाप को अपने जिम्मे ले लेना चाहिए। उन्हें यह निर्देश दिया जाना चाहिए कि बच्चे को 2-3 दिन तक बिस्तर पर रखें, उसे ठंडा तथा तरल खाना दें तथा उसके रहने वाले कमरे को भीगे कपड़े से पोंछ लें। इन कदमों का उद्देश्य रक्तस्राव तथा बच्चे की नासा-ग्रसनी के खुले घाव में संक्रमण होने से रोकना है। सामान्य शारीरिक तापमान तथा अच्छी सामान्य अवस्था होने पर बच्चा शस्त्रकर्म के छठे या सातवें दिन स्कूल जा सकता है।

शस्त्रकर्म के तुरंत बाद नासा श्वसन तथा श्रवण पूर्ण रूप से ठीक हो जाते हैं तथा बाद में बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास में सुधार हो जाता है।

एडिनाइड को हटाने के बाद भी बच्चे के अच्छे गठन को बढ़ाने वाले कदमों पर ध्यान देना चाहिए।

एडिनाइड उच्छेदन के बाद कुछ बच्चों से श्वास-व्यायाम कराया जाता है, ताकि वे नासा-श्वसन करने की आदत डाल लें।

अगर एडिनाइड को शल्यक्रिया द्वारा हटाने में गंभीर प्रतिनिर्देश हों तो एक्सरे-चिकित्सा कुछ सहायक हो सकती है।

## गलतोरणिका-टांसिल की अतिवृद्धि

ग्रसनी-टांसिल की तरह ही गलतोरणिका-टांसिल की अतिवृद्धि भी बच्चों में ज्यादा आम है। इस अवस्था में टांसिल काफी बढ़े हुए होते हैं तथा गलतोरणिका स्तंभों से आगे वहिर्सरण करते हैं या मध्य रेखा में संपर्क में रहते हैं (चित्र 74)। बच्चों में अतिवृद्धि टांसिल में सामान्यत: कोई शोथ चिन्ह नहीं होता है। समय के साथ ये क्रियात्मक तौर पर हुए अतिवृद्धित टांसिल सिकुड़ कर सामान्य आकृति के हो जाते हैं। यह प्रत्यावर्तन देर से भी हो सकता है, अत: उस स्थिति में वयस्क रोगियों में तुलनात्मक तौर पर बड़े टांसिल पाये जा सकते हैं।

उपचार. स्वास्थ्य-वर्धन प्राथमिक कदम है जिसमें स्वास्थ्यकर विधान,
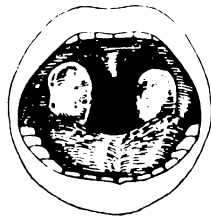
चित्र 74. गलतोरणिका टांसिल की अतिवृद्धि
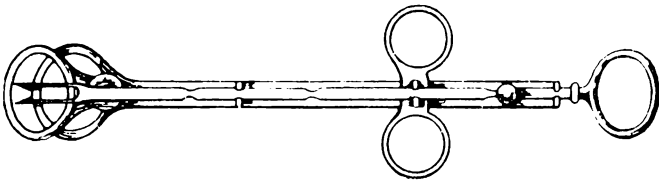
चित्र 75. टांसिलोटोम
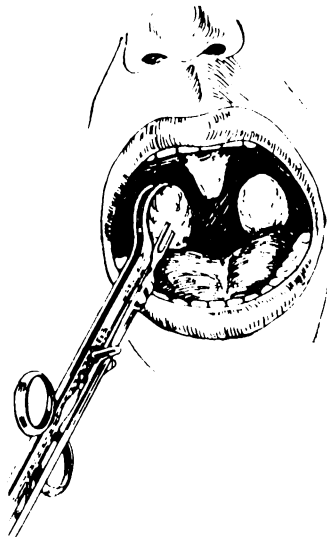
चित्र 76. टाँसिलोटोमी

उपयुक्त पोषण, शिशु स्वास्थ्य केन्द्रों में आराम, आदि शामिल हैं। ऐसे बच्चों में, जिनमें गलतोरणिका-टांसिल में बहुत अधिक अतिवृद्धि हो, जो बातचीत, सांस लेने और भोजन के मार्ग में हस्तक्षेप करती है, टांसिल उच्छेदन जरूर किया जाना चाहिए; नासा-ग्रसनी के अवकाश-क्षेत्र में वट्टिसरित होते हुए रिडन्डेन्ट ऊतकों को टांसिलोटोम से निकाल देना चाहिए (चित्र 75, 76)।

## ग्रसनी में आगंतुक शल्य

आगंतुक शल्य ग्रसनी में न सिर्फ मुंह के रास्ते, जो सबसे आम मार्ग है, बल्कि नासा, लैरिंक्स तथा ईसोफेगस के रास्ते भी घुसते हैं। ग्रसनी में निवेशित होने वाले आगंतुक शल्य, जैसे मछली का कांटा, फल व पत्थर के टुकड़े, अन्न आदि, आम तौर पर खाने के दौरान प्रवेश करते हैं। ग्रसनी में प्रवेश करने वाले अन्य आगंतुक शल्यों में, नकली दांतों के टुकड़े, सिक्के, छोटे खिलौने तथा अन्य पदार्थ हैं, जिन्हें बच्चे खेलते समय मुंह में रख लेते हैं या नेल, ड्राइंग पिन, तथा बटन जिन्हें वयस्क, खास तौर पर जूता बनाने वाले या दर्जी, मुंह में रख लेते हैं।

आगंतुक शल्यों के खाने के साथ मुंह के द्वारा घुसने का खतरा ऐसे मामलों में ज्यादा रहता है जहां दांत-विहीन निचले जबड़े में नकली दांत लगे होते हैं जो कठोर तालु के एहसास को खत्म कर देते हैं। इसके अतिरिक्त खाते समय अचानक खांसी, छींकने या बात करने, जिससे चबाने से ध्यान बंट जाता है, के कारण भी आगंतुक शल्य ग्रसनी में आ जाते हैं। आगंतुक शल्य, जो ग्रसनी में निवेशित होते हैं, आम तौर पर तेज होते हैं तथा गलतोरणिका-श्लेष्मा, टांसिल, गलतोरणिका-स्तंभ में फंसे रहते हैं या ईसोफेगस अथवा लैरिंक्स के प्रवेश-द्वार पर निवेशित होते हैं। बड़े या चिकने आगंतुक शल्य बहुधा ईसोफेगस के प्रवेश-द्वार तक पहुंच जाते हैं और ईसोफेगस में फंस जाते हैं।

आगंतुक शल्य नासा-ग्रसनी में कम ही निवेशित होते हैं। ये आगंतुक शल्य उपकरणों के टूटे हुए टुकड़े हो सकते हैं, जो नासा से प्रवेश करते हैं, भोजन के अवशेष और कभी-कभी हिचकी से उदर से निकले हुए पिन-वर्म आदि होते हैं। कभी-कभी गन्दे तालाबों या सिंचाई के गड्ढों के गन्दे पानी को पीने से जोंक जैसा जीवित प्राणी भी नासा-ग्रसनी में प्रवेश कर जाते हैं।

अलग-अलग विशेषताओं के आधार पर आगंतुक शल्य अलग-अलग लक्षण उत्पन्न करते हैं। श्लेष्मा-कला में तेज आगंतुक शल्य होने की स्थिति में रोगी कम या ज्यादा चुभने वाला दर्द महसूस करता है जो निगलने पर विशेष तौर पर तेज हो जाता है। अन्य मामलों में एक आगंतुक शल्य श्लेष्मा-शोथ उत्पन्न कर सकता है, जिसमें अतिरक्तता, सूजन तथा बढ़ा हुआ स्राव हो सकता है जो कि फिर खांसी, रूद्धता और कभी-कभी वमन भी पैदा कर दे सकता है। अगर एक बड़ा आगंतुक शल्य, निचली ग्रसनी में लैरिंक्स के प्रवेश द्वार पर निवेशित हो, तो अचानक श्वासावरोध के लक्षण भी उत्पन्न कर सकता है।

उपचार. आगंतुक शल्य का स्थान ग्रसनी का संपूर्ण और बार-बार परीक्षण करके निश्चित करने के बाद उसे एक सीधे या कोणीय फारसेप्स की सहायता से ब्लेड में निकट संपर्क करके निकाल देते हैं। रोगी को कई बार हटाये गये आगंतुक शल्य द्वारा छोड़ी गयी खरोंचों तथा दाह के कारण तकलीफ होती है जो आगंतुक शल्य के रहने के समान ही होती है। बाद की देख-भाल के अंतर्गत एन्टिसेप्टिक गरारे करते हैं तथा सौम्य आहार देते हैं।

## ग्रसनी के तीव्र शोथ

ग्रसनी-श्लेष्मा के शोथ तीव्र या चिरकारी हो सकते हैं।

**तीव्र ग्रसनी-शोथ.** ग्रसनी-श्लेष्मा का तीव्र शोथ अपने आप में शायद ही कभी होता है। आम तौर पर यह नासा तथा नासा-ग्रसनी के तीव्र प्रतिश्याय केटार के नीचे की तरफ बढ़ने से होता है। तीव्र ग्रसनी-शोथ गले में विभिन्न प्रकार के स्वप्रत्ययी लक्षण पैदा कर सकता है, जैसे गले का सूखना, हल्का दर्द या तनाव, गले का दाह आदि। शारीरिक परीक्षण में श्लेष्मा-कला की अतिरक्तता पायी जाती है जो कुछ स्थानों पर श्लेष्मा के सपूय स्राव से आच्छादित होती है। अलग-अलग फालिक्स प्रत्येक ग्रसनी-श्लेष्मा पर लाल कणों की तरह दिखते हैं। युवुला लाल, सूजी हुई तथा थोड़ी इडिमेटस होती है। शारीरिक तापमान या तो सामान्य होता है या थोड़ा बढ़ा होता है तथा हल्की शारीरिक बेचैनी होती है। तीव्र ग्रसनी-शोथ बहुधा टांसिल-शोथ का पूर्व लक्षण होता है या फिर इसके साथ-साथ होता है।

उपचार. यह टांसिल-शोथ के उपचार के समान ही होता है, जैसे पूर्ण

आराम, तरल तथा अर्ध तरल, उष्ण, सौम्य आहार, सैलिसिलीक तथा सल्फोनामाइड दवाओं को देना, उष्ण संपीड को गले में लगाना तथा निम्नलिखित एंटिसेप्टिक गरारे का उपयोग करना

Rp. Dec. radicis Althaeae 400.0
Natrii benzoici 6.0
Glycerini 10.0
T — rae Opii benzoici 3.0

**निर्देश: गरारे करना**

Rp. Kalii hypermanganici 1.0

**निर्देश: एक गिलास पानी में 2-3 क्रिस्टल डाल कर गरारे करना।**

पानी को थोड़ा गरम कर लेना चाहिए और सिर को थोड़ा पीछे करके गरारे करने चाहिए ताकि ग्रसनी के सबसे दूर के हिस्से की भी सिंचाई हो सके।

## प्रतिश्यायी, रिक्तिका तथा पुटकीय टांसिल-शोथ

टांसिल-शोथ एक संक्रामक रोग है, जिसमें ग्रसनी लसीकाभ संरचनाओं, सर्वोपरि गलतोरणिका-टांसिल का शोथ होता है तथा क्षेत्रीय लसीका-ग्रंथियों में सूजन रहती है।

ग्रसनी में शोथ कई प्रकार के विकारी लक्षणों को ग्रसनी-श्लेष्मा में एडिनाइड ऊतकों की उपस्थिति के कारण, जो प्रक्रिया में पूरी तरह या आंशिक तौर पर शामिल रह सकते हैं, प्रदर्शित करता है। शोथ विसरित या सतही हो सकता है जब यह टांसिल के तल तथा उनकी दरियों को प्रभावित करता है या यह मुख्यत: एडिनाइड ऊतकों, टांसिली पारेनचीमा, जिससे फालिकल गुंथे रहते हैं, को समेटता है।

टांसिल-शोथ का कारण स्ट्रेप्टोकोकी या, कुछ मामलों में स्टेफाइलोकोकी और न्यूमोकोकी द्वारा प्रकोप होता है, जब कि इसके प्रवर्तनपूर्व कारक हैं – गलतोरणिका के श्लेष्माग्राहकों के तापीय, रासायनिक या यांत्रिक क्षोभ तथा घटा हुआ शारीरिक प्रतिरोध। संक्रमण बाहरी कारकों द्वारा लाया जा सकता है या टांसिली दरियों, मुंह तथा ग्रसनी में बराबर रहने वाले जीवाणुओं की उग्रता के बढ़ जाने के कारण भी हो सकता है। संक्रमण

का स्रोत नाक, परानासा-विवरों या दन्त-क्षरणों में सपूयता भी हो सकती है।

टांसिल-शोथ कई बार गंभीर ग्राकारिकी क्षोभ के तौर पर विकसित होता है (जैसा कि हृदय, जोड़ों तथा वृक्क जैसे ग्रंगों में बहुधा होने वाले उपद्रवों से) तथा इस तथ्य से पता चलता है कि गलतोरणिका में स्थानीय चिन्हों के होने के पहले गंभीर व्याकुलता, ज्वर, सिरदर्द या रूमेटिक दर्द हो जाता है।

टांसिल-शोथ केटारल (प्रतिश्यायी), रिक्तिकीय तथा पुटकीय प्रकारों का हो सकता है, ये इस बात पर निर्भर करते हैं कि उसकी कठिनता क्या है तथा गलतोरणिका-टांसिल पर पैंची कला की उपस्थिति या ग्रनुपस्थिति, इसका चरित्र तथा स्थान कया है।

केटारल टांसिल-शोथ. रोगी पहले गले के सूखने तथा दाह की शिकायत करता है तथा फिर निगलने पर गले के हल्के दर्द की शिकायत करता है। तापमान ग्राम तौर पर ग्रवज्वरी रहता है, जबकि बच्चों में उच्च ज्वर ज्यादा सामान्य होता है तथा उनमें वमन शुरू के लक्षणों में से एक है। बहुधा सिरदर्द तथा मंदबुद्धिता हो जाती है। रोग तीन से चार रोज तक के लिए बना रहता है। रोग की हल्की स्थिति में ग्रसनी के परीक्षण से थोड़ा सूजा हुग्रा ग्रौर लाल टांसिल दिखता है जिसका तल पीले श्लेष्मा-स्राव से ग्राच्छादित रहता है। रोग की तीव्र स्थिति में श्लेष्मा पर बिन्दुकित रक्तस्राव होता है, साथ ही युवुला ग्रौर गलतोरणिका स्तंभों का इडिमा होता है। मैन्डीबूलर कोनों के नीचे के लसीकापर्वों में सूजन ग्रा जाती है तथा दाब वेदना होती है।

कई संक्रामक रोगों में केटारल टांसिल-शोथ लगभग बराबर ही उपस्थित रहता है। स्कार्लेट ज्वर में यह विचित्र पथ ग्रपनाता है। शुरू में शोथज लालिमा की कोमल तालु के केन्द्र में ग्रच्छी रूप-रेखा बनी दिखती है, जबकि बिना साथ के टांसिल-शोथ में टांसिल-श्लेष्मा सबसे ज्यादा प्रभावित होती है। एक या दो दिन के ग्रन्दर केटारल (प्रतिश्यायी) टांसिल शोथ के द्वारा स्कार्लेट ज्वर में मौजूद चमकीली ग्रौर सीमित लालिका समाप्त हो जाती है तथा ग्रतिरक्तता बड़े क्षेत्र में फैल कर टांसिल तथा ग्रसनी की पश्च भित्ति पर प्रकोप कर देती है।

स्कार्लेट ज्वर की विशिष्ट त्वचा-पित्तिका पहले 23-24 घंटे के ग्रन्दर दिखने लगती हैं। मीजिल्स में गलतोरणिका की ग्रतिरक्तता चित्तीदार होती

है और रोग शुरू होने के दो या तीन दिन बाद यह सामान्य इनेन्थिमा के हिस्से के तौर पर होता है।

रिक्तिकीय टांसिल-शोथ में सामान्य लक्षण ज्यादा स्पष्ट होते हैं। आकारिकी विक्षोभ केटारल टांसिल-शोथ के मुकाबले ज्यादा होता है तथा निगलते समय दर्द तथा सिर-दर्द बहुत ज्यादा होते हैं। ज्वर भी काफी होता है, जो कि बच्चों में 40° सें० तक चला जाता है। रोग बहुधा चौथे या पांचवे रोज विलुप्त हो जाता है। आरंभिक लक्षणों के शुरू होने के तुरन्त बाद होने वाला गले का दर्द भोजन निगलते समय विशेष रूप से हो जाता है तथा कभी-कभी कान को प्रभावित करता है। जीवाणु, विशल्कित उपकला-कोशिकाएं तथा श्वेत कोशिकाएं दरियों को भर देती हैं तथा थोड़े सूजे हुए और लाल टांसिली श्लेष्मा के ऊपर उजले और पीले धब्बे की तरह फैल जाते हैं। पीली उजली कलाओं या चिपकने से बना अनवरत आवरण बहुधा टांसिल के मुक्त तल को उनकी सीमा के बाहर गये बिना आच्छादित कर लेता है। ऐसे मामलों में कोमल तालु तथा गलतोरणिका-स्तंभों में स्पष्ट रक्ताधिक्यता तथा अत्यधिक शोफ हो जाता है। रिक्तिकीय टांसिल-शोथ में टांसिली पारेनचीमा के विकार से टांसिल की सूजन तथा अतिवृद्धि हो जाती है। रिक्तिका में मुखों में पैचों का बनना, इस रोग को डिप्थीरिया से अलग करता है, क्योंकि डिप्थीरिया में आरंभिक विक्षति टांसिली श्लेष्मा के उन्नत भागों तक ही सीमित रहती है। क्षेत्रीय लसीका-ग्रंथियां सूज जाती हैं तथा उनमें दाब-वेदना हो जाती है। रिक्तिकीय टांसिल-शोथ एक अत्यंत सांसर्जिक तीव्र संक्रामक रोग है जो परिवारों तथा अस्पतालों में बहुधा फल जाने से साबित होता है।

पुटकीय टांसिल शोथ (रंगीन तालिका III, चित्र 1). यह अवस्था उसी संक्रामक रोग का दूसरा रूप है जो स्वतंत्र रूप से या रिक्तिकीय टांसिल शोथ के साथ-साथ होता है। बहुत से गोल या जरा उन्नत, पिन-शीर्ष के आकार की पीली या पीली-उजली पर्विकाएं, जो कि सपूय टांसिली फालिकुल हैं, या विस्फोट, दोनों टांसिल की लाल तथा सूजी हुई श्लेष्मा पर हो जाते हैं। यह रोग पैंच के साथ टांसिल-शोथ के दूसरे प्रकारों से इस रूप में भिन्नता रखता है कि सपूय फालिकुल समान आकार तथा नियमित आकृति के होते हैं और टांसिल के मुक्त क्षेत्र तक ही सीमित रहते हैं। सपूयता की प्रक्रिया में पीले-उजले फालिकुल धीरे-धीरे आकार में बढ़ते हैं तथा ग्रसनी क्षेत्र में फूट जाते हैं। इनकी अन्तर्वस्तु के टांसिल

की संभोजी ऊतक-शैय्या में इवेकूयेशन से परिटांसिल-विद्रधि हो सकती है।

पुटकीय टांसिल-शोथ की शुरूग्रात बहुधा ग्रचानक ठंड के साथ 40° सें० या उससे भी ग्रधिक तक तापक्रम में तेज वृद्धि, गले में दाह, पीठ तथा हाथ-पांव में दर्द, सिर-दर्द तथा ग्राम व्याकुलता के साथ होती है। सबमन्डीकुलर लसीका-पर्व सूजे हुए होते हैं तथा उनमें दाब-वेदना होती है तथा पैंच भारी होते हैं जैसा कि रिक्तिकीय टांसिल-शोथ में होता है। इस ग्रवस्था में श्वेतकोशिकाग्रों, मुख्यतः न्यूट्राफील, की संख्या में भारी वृद्धि होती है।

पुटकीय टांसिल-शोथ ग्रसनी-टांसिल तथा जिह्वीय-टांसिल, दोनों पर ग्राक्रमण करता है। हालांकि इस रोग का पथ कठिन है, पर इसका ग्रन्त 5-7 दिनों में रोगी के पूरी तरह ठीक होने में ही ग्राम तौर पर होता है।

टांसिल-शोथ, स्थानीय तथा सामान्य चरित्र के बहुत से उपद्रव पैदा करता है।

स्थानीय उपद्रवों में परिटांसिल-विद्रधि, तीव्र मध्यकर्ण-शोथ तथा सामान्य उपद्रवों में हृद व संधायक रूमेटिज्म, वृक्कीय रोग तथा सेप्सिस शामिल हैं।

निदान. इस रोग को पहचानने में कठिनाई नहीं होती। रिक्तिकीय टांसिल-शोथ का निदान करते समय यह सावधानी बरतनी चाहिए कि गलती से इसे डिप्थीरिया न समझ लिया जाये। इनके बीच के ग्रन्तर की चर्चा डिप्थीरिया वाले भाग में की जायगी।

टांसिली सिफिलिस में बहुत कम व्याकुलता होती है; निगलने पर साधारण दर्द होता है तथा थोड़ा बुखार रहता है। गलतोरणिका स्तंभ तथा टांसिल चमकीले लाल होते हैं तथा धूसर-सफेद रंग के गोल पैपूलों से ग्राच्छादित होते हैं, जो गालों, मसूड़ों तथा जिह्वा की श्लेष्मा पर भी पाये जाते हैं। मैंडिबल के नीचे तथा ग्रीवा पर ग्रनगिनत सूजे हुए ठोस लसीका-पर्वों को महसूस किया जा सकता है। टांसिली सिफिलिस के निदान का परीक्षण, ग्राम परीक्षण तथा वासरमैन परीक्षण से किया जा सकता है।

पूर्वानुमान ग्राम तौर पर ग्रनुकूल होता है, लेकिन यह भी कदाचित सामान्य है कि टांसिल-शोथ के ठीक होने के बाद कई गंभीर ग्राकारिकी उपद्रव, जैसे रूमेटाइड संधि-शोथ, रूमेटिक एन्डोग्रार्डाइटिस, वृक्कशोथ या सेप्टिको पायेमिया ग्रादि, हो सकते हैं।

कम या ज्यादा कठिन टांसिल-शोथ के लगभग सभी मामलों में रक्त-

परीक्षाएं करनी चाहिए क्योंकि यह अवस्था रक्त की गंभीर बीमारी, ल्यूकीमिया, आदि का लक्षण हो सकती है।

उपचार. रोगों को उपद्रव से बचाने के लिए रोग-निरोधी कदम के तौर पर विस्तार पर आराम करते रहने की तथा पतले दलिये का भोजन लेने की सलाह देनी चाहिए तथा उसे एसिटाइलसैलीसिलिक अम्ल ( या एस्प्रीन ) को कैफीन के साथ मुंह के रास्ते देना चाहिए।

Rp. Aspirini 0.5

Coffeini natrio-benzoici 0.1

M. f. pulv.

D.t.d.N 10

निर्देश: एक पाउडर डोज 2 या 3 बार प्रतिदिन.

छोटे बच्चों को सोडियम सैलीसीलेट का घोल देते हैं। गले की सिंचाई करने के लिये हल्के एन्टीसेप्टिक जैसे बोरिक अम्ल, सोडियम बेन्जोएट तथा अन्य घोल के गरारे कराते हैं।

Rp. Hydrogenii hyperoxydati 3% medic. 100.0

निर्देश: एक गिलास पानी में एक या दो पूरे चम्मच गरारे के लिये.

Rp. Acidi borici 25.0

निर्देश: उष्ण उबले हुए पानी के एक गिलास में एक चम्मच गरारे के लिए.

Rp. Gramicidini 2.0

D. t. d. N. 6 in amp.

निर्देश: एक एम्प्यूल के अन्तर्वस्तु को एक गिलास पानी में घुला कर गरारे के लिए.

Rp. Natrii benzoici 25.0

निर्देश: एक गिलास पानी में आधा चम्मच गरारे के लिए.

बच्चों को काफी मात्रा में उष्ण पेय देते हैं। ग्रीवा पर एक उष्ण संपीड देना प्रभावकारी होता है, जो बेहतर हो कि एक तिहाई एल्कोहल और दो तिहाई पानी के घोल में सोक किया हुआ हो। इसके साथ ही गर्म 2 प्रतिशत बेकिंग सोडा घोल से वाष्प-अभिश्वसन या मृदुविरेचक देना भी

उपयोगी रहता है। हृदय तथा वृक्क की अवस्था पर नजर रखनी चाहिए तथा वृक्क की अवस्था पर नजर पेशाब का परीक्षण करके रखते हैं। गर्म सम्पीड में वैकृत परिवर्तन वाले अंग में, यानी टांसिल में, अंतर्संचरण और रक्ताधिक्य कम करने में सहायता मिलती है। इसके पश्चात विकारी प्रक्रिया में तुरन्त सुधार हो जाता है और वेदना कम हो जाती है।

टांसिलर संक्रमण के स्ट्रेप्टोकोकिक गुण के कारण स्ट्रेप्टोसाइड और दूसरी सल्फोनामाइड औषधियों और अंतर्पेशी इंजेक्शन द्वारा पेनिसिलीन, और गोली के रूप में बायोमाइसिन और टेरामाइसिन दिये जाने चाहिए। स्ट्रेप्टोसीड, सल्फाथायाजोल और सल्फाडिमेलीन को कुछ दिनों तक 0.3 से 0.6 ग्राम मात्रा में दिन में पांच या छह बार देना चाहिए। बच्चों को इन्हें कम मात्रा में देना चाहिए।

रोग-निरोध. टांसिल-शोथ की रोकथाम देह को मजबूत और विभिन्न हानिकारक वाह्य प्रभावों का प्रतिरोध कर सकने योग्य बनाने के सामान्य नियमों का पालन करके की जा सकती है। ये नियम निम्नलिखित हैं:

(1) स्वच्छता और तकनीकी नियमों का उद्योगों में पूरा पालन, विशेष कार्यों के लिए उपयुक्तता की जांच, टांसिलशोथ के प्रति सुग्राही लोगों का पंजीकरण और उपचार;

(2) ज्यादा स्वास्थ्यदायक रहन-सहन की व्यवस्था, व्यक्तिगत स्वास्थ्य और देह प्रबलता;

(3) टांसिलशोथ से मिले-जुले शोथों, जैसे चिरकारी टांसिल-अतिवृद्धि सपूय हिग्माराइटिस, एडिनाइड अतिविकसन, दंत-क्षरण आदि का जो ऊर्ध्व श्वसन नली को प्रभावित करते हैं, उपचार।

हालांकि टांसिलशोथ अत्यंत सांसर्गिक नहीं है, फिर भी रोगी को पृथक करना और उसे खाने के और दूसरे बर्तन देना बेहतर होता है। स्वस्थ लोग, खासकर बच्चे, रोग के प्रति काफी सुग्राही होते हैं इसलिए उन्हें रोगी से दूर रखना चाहिए। टांसिल का तीव्र शोथ टांसिल तक ही सीमित नहीं रहता है, यह संपूर्ण ग्रसनी के लिम्फेडिनाइड ऊतक का शोथ भी हो सकता है। हालांकि अलग-अलग टांसिलों के अपने विशिष्ट नैदानिक लक्षण भी हो सकते हैं।

**तीव्र ग्रसनी टांसिल शोथ.** ये अवस्था आम तौर पर बच्चों में, खासकर ग्रसनी-टांसिल की अतिवृद्धि के मामले में, देखी जाती है और इसे तीव्र एडिनाइड शोथ या पश्च नासा-एडिनाइडिटिस कहते हैं। इसके लक्षण हैं,

ज्वर, कृशता और नासा-शोथ; नासा-ग्रसनी में कष्टदायक संवेदन के साथ खांसी और कर्णार्ति रहते हैं। ग्रीवा के लसीका-पर्व फूले और स्पर्शसह्य रहते हैं।

उपचार. इसका उपचार तीव्र नासा-शोथ के उपचार के समान होता है।

**तीव्र जिह्वा टांसिल-शोथ.** यह अवस्था काफी कम पायी जाती है। इसके आम लक्षण दूसरे प्रकार के टांसिल-शोथों के समान हैं; निगरण में स्थानीय दर्द होता है, स्पैचुला से दबाने पर जिह्वा के आधार पर काफी दाब-वेदना होती है, जिह्वाटांसिल तेज लाल और फूला नजर आता है, कई बार इस पर पीले बिन्दु चारों ओर रिक्तिका टांसिलशोथ की तरह नजर आते हैं।

उपचार. इसका उपचार शोथी गलतोरणिका टांसिलों के उपचार के समान होता है।

**व्रणश्लेष्मयुक्त ऐन्जीना (विनसेन्टस एन्जीना).** यह रोग कोमल तालु और टांसिलों की श्लेष्मा में और कभी-कभी मसूड़ों में, पश्च ग्रसनी-भित्तियों और गालों में व्रण पैदा करता है। यह तर्कुरूपी बैसीलस और मौखिक स्पाइरोकीट के बीच सहजीवन से होता है जो कम उग्र अवस्था में मौखिक श्लेष्मा के पुटकों में रहते हैं।

इस अवस्था में काफी परिगलन-धब्बे (पीले या सफेद रंग के) टांसिलों और कोमल तालु पर देखे जाते हैं। ये परिगलन-धब्बे जल्दी ही मिल जाते हैं और श्लेष्मा पर छिछले या कभी-कभी गहरे व्रण बनाते हैं, जो दर्दनाक तो नहीं होते, पर दुर्गन्धमय साँस और लालास्राव पैदा करते हैं। ताप अवज्वर या सामान्य रहता है और बहुत कम आकारिकीय परिवर्तन होते हैं। क्षेत्रीय लसीका-पर्व फूले होते हैं और इनमें दाब वेदना रहती है।

यह रोग सामान्यतः एक हफ्ते तक या बढ़ कर कुछ हफ्ते तक या अधिक भी रह सकता है।

व्रणश्लेष्मयुक्त ऐन्जीना या तो कभी-कभी होता है या फिर जानपदिकों में होता है। फिनलैण्ड में 1888 में इस रोग के फैलाव को देखते हुए, प्रसिद्ध रूसी चिकित्सक एस० पी० बोट्किन ने इसे "फिनिश क्विन्सी" कहा था।

एन० पी० सीमानोव्स्की ने, जो इस विषय पर शोध-प्रबन्ध लिखने वाले पहले रूसी थे, 1890 में सेन्ट-पीटर्सबर्ग में व्रणश्लेष्मयुक्त ऐन्जीना का वर्णन किया था।

रूसी चिकित्सकों, खासकर फिलातोव और दूसरों, द्वारा इकट्ठे किये

गये **प्रारंभिक** सबूतों के अनुसार मुख गुहा और ग्रसनी के व्रण सव्रण मुखपाक के साथ होते हैं। इस प्रकार व्रणश्लेष्मयुक्त ऐन्जीना की मौखिक श्लेष्मा की व्रणोत्पत्ति के साथ समानता 1898 में विन्सेंट द्वारा रोग के कीटाणु के आविष्कार के बहुत पहले सिद्ध की जा चुकी थी।

निदान. निदान प्रयोगशाला में व्रण की अन्तर्वस्तुओं के आलेप-परीक्षण से, जिसमें तर्कु-रूपी बैसीलस और स्पाइरोकीट दिखायी देते हैं, सिद्ध हो चुका है। कई बार बाहरी सबूतों से डिप्थीरिया, सिफिलिस, कैन्सर और व्रण श्लेष्मयुक्त ऐन्जीना में भेद करना काफी कठिन हो जाता है।

उपचार. हल्के केसों में, रोग कुछ दिनों तक हल्के कीटाणुरोधी हाइड्रोजन पेरोक्साइड, पोटेशियम क्लोरेट, बोरिक एसीड या पोटाशियम परमैंगनेट के गरारों से ठीक हो जाता है। ज्यादा गहरे केसों में वृहत व्रणोत्पत्ति और तेज बुखार होने पर साल्वर्सान के विलयन को व्रण पर पेंट करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है या इसे अतर्पेशी इंजेक्शन से दिया जाता है। सबसे असरदार उपाय है पेनिसिलीन का अंतर्पेशी इंजेक्शन।

**अकणीश्वेतकोशिक मुखपाक.** इसमें अचानक ज्वर, कभी-कभी कंपकंपी और कण्ठदाह हो जाते हैं। गले के परीक्षण से काफी सूजी श्लेष्मा, जो सफेद रंग की और परिगलन धब्बों से पूर्ण रहती है, सामने आती है। गहरे व्रण बाद में बनते हैं, जो टांसिल तक सीमित नहीं रहते, बल्कि ग्रसनी, मुखगुहा और स्वरयंत्र तक फैल जाते हैं। गहरा आकारिक विकार रहता है और ज्वर पूति प्रकार का होता है।

रक्त के परीक्षण में (ऐसी स्थिति में लगभग हमेशा ही) रक्त में कणीय श्वेतकोशिकाओं या कणिका-कोशिकाओं में जबर्दस्त गिरावट आती है या इसका पूर्ण अभाव रहता है। रक्त में श्वेत कोशिकाओं की संख्या घटकर 6000 और 7000 से 500 प्रति क्यूबिक मि० मि० या इससे भी कम हो जाती है। रक्त-परीक्षण में यह रोग गलती से डिप्थीरिया या व्रण-श्लेष्म ऐन्जीना का द्योतक समझा जा सकता है।

यह काफी गहरा रोग काफी कम देखा जाता है। और इसके आधारी कारण अभी भी अज्ञात हैं। यह चार या पांच दिनों में कई हफ्तों तक रहता है और उपचार नहीं होने पर घातक हो सकता है।

उपचार. यह रक्त-आधान, अस्थि-मज्जा के एक्सरे विकिरण से किया जाता है। श्वेतकोशिका बहुलता को बढ़ाने के लिए पेन्टोक्साइल 0.3 ग्राम मात्रा में चार बार रोज दी जाती है। स्थानीय उपचार में गरारे करना

ग्रौर व्रण को 5 प्रतिशत कोकेन विलयन से पेंट करना ग्रौर ग्रार्थोफार्म या एनीस्थीसिन पाउडर से छिड़काव करना शामिल है। ग्रंतर्पेशी पेनिसिलिन इंजेक्शनों ने चिकित्सा को इस रोग के उपचार में नया हथियार दिया, नहीं तो ग्राज तक इसका उपचार काफी निराशाजनक समझा जाता था।

## संक्रामक एककेन्द्रककोशिक्ता ग्रौर लिस्टेरियोसिस में टांसिल-शोथ

संक्रामक एककेन्द्रकोशिक्ता मुख्यत: कदाचनिक रोग है, हालांकि कभी-कभी यही जानपदिकों में, छोटे समुदायों या परिवार में, देखा जा सकता है। सबसे पहले एन० एफ० फिलातोव ने 1885 में इसे ग्रन्थिल ज्वर कहकर इसका वर्णन किया था, क्योंकि इसमें लसीका पर्व फूले रहते हैं ग्रौर रक्त में विशिष्ट परिवर्तन होते हैं।

हेतुकी. हाल में हुए क्लीनिकल ग्रौर जीवाणु-विज्ञानी परीक्षणों ने सिद्ध किया है कि यह रोग विषाणु के द्वारा होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि एककेन्द्रककोशिक्ता लिस्टेरियोसिस का एक रूप है ग्रौर यह लिस्टिरिया नामक जीनस के जीवाणु द्वारा होता है। यह संभावना तर्कपूर्ण है, क्योंकि एककेन्द्रककोशिक्ता ग्रौर लिस्टीरियोसिस के लक्षणों में भी समानता होती है। पहला रोग हल्का है ग्रौर इसमें लिस्टेरियोसिस के ग्राम उपद्रव कम देखे जाते हैं।

**लक्षणों का रूप ग्रौर मार्ग.** एककेन्द्रककोशिक्ता मुख्यत: 10 से 30 वर्ष की ग्रायु वालों में पायी जाती है ग्रौर बिन्दु-संक्रमण के द्वारा होती है। रोग के विभिन्न, कभी-कभी हल्के, नैदानिक रूप हैं। प्ररूपी ग्राम केसों में प्रारंभ में शीतकंप, सिरदर्द ग्रौर 39° से 40° सेंटीग्रेड के बीच तेज ज्वर रहता है जो बाद में ग्रल्पविसर्गी हो जाता है। सबसे प्ररूपी लक्षण है ग्राम तौर पर फूला हुग्रा ग्रौर स्पर्श-ग्रसह्य ग्रीवा। ग्रवप्रधोहनु ग्रौर दूसरे लसीकापर्व ग्रौर साथ ही प्लीहा ग्रौर कभी-कभी यकृत का निवर्धन देखा जाता है।

एककेन्द्रककोशिक्ता में टांसिल शोथ ज्यादातर तीसरे या चौथे दिन दिखाई पड़ता है। यह केटारल, रिक्तिका ग्रौर क्वासीमेम्बरेनस डिप्थीरिया से मिलता-जुलता हो सकता है, क्योंकि धब्बे गलतोरणिका-स्तंभों, युवुला ग्रौर कोमल तालु तक फैल सकते हैं। ज्यादा गहरे केसों में व्रणो-परिगलन रूप देखा जाता है जिसमें टांसिल के पिंड में गहरा व्रण रहता हैं, सलेटी-हरी उपकला से वह ग्राच्छादित रहता है ग्रौर मुंह से दुर्गन्ध निकलती है।

ग्रसनी में इन परिवर्तनों से कष्टदायक वेदना होती है ग्रौर लसीका-पर्वों में वृहत विवर्धन होता है।

निदान. इसका ग्राधार रक्त का परीक्षण है, जिससे इस रोग ग्रौर श्वेत रक्तता, कणीश्वेतकोशिका की हीनता, टुलेरीमिया ग्रौर ब्रूसेलोसिस में भेद किया जा सके। रक्त में मध्यरूपी श्वेतकोशिका बहुलता 15 000 से 20 000 दिखायी पड़ती है, जिसमें एक केन्द्रककोशिकाग्रों की प्रधानता रहती है। वे पूरी श्वेत कोशिकाग्रों का 50 से 90 प्रतिशत भी हो सकती हैं। लोहित कोशिका का गणन सामान्य रहता है।

रोग दो या तीन हफ्ते तक रहता है, इसके बाद धीरे-धीरे ज्वर कम हो जाता है, टांसिल-शोथ के स्थानीय लक्षण कम हो जाते हैं, दर्द रुक जाता है, प्लीहा घट कर सामान्य ग्राकार की हो जाती है, फूले लसीका पर्व धीरे-धीरे स्पर्शातीत हो जाते हैं, हालांकि रक्त की स्थिति सामान्य होने में ज्यादा समय लगता है।

उपचार. यह लक्षणों को ग्राराम देने तक सीमित हैं। द्वितीयक संक्रमण को रोकने के लिए प्रतिजीवी ग्रौषधियां, जैसे पेनिसिलिन ग्रौर ग्रारसेनिक की ग्रधस्त्वक सूई ग्रौर ग्लूकोज ग्रौर एस्कोर्बिक ग्रम्ल की ग्रंतर्शिरा सूई दी जाती हैं। सल्फोनामाइड ग्रौषधियों से रक्तोत्पत्ति पर कुप्रभाव पड़ता है, इसलिए इन्हें नहीं देना चाहिए।

**पूयी-एन्जीना (पोषणज विषालु ग्रश्वेत कोशिकारक्तता).** इस रोग के ग्रारंभ में ग्रचानक 39° से 40° सेंटीग्रेड तक बुखार होता है, कण्ठ में शोथी ग्रौर परिगलन चिन्ह होते हैं, रूधिर-चिन्हित विस्फोट होता है ग्रौर नाक ग्रौर मुंह से गहरा रक्त-ग्रास्राव होता है।

एन्जीनल ग्रवस्था रोगी की शुरूग्रात नहीं है ग्रौर भोजन-विषालुता से होती है जो तीन हफ्तों तक बिना किसी महत्वपूर्ण चिन्ह के बढ़ती है।

यह रोग धान्य भोजन, जैसे बाजरा, गेहूं, राई, जौ, फाफर ग्रौर जई से होता है।

ऐसे धान को लेने से, खासकर ज्वर को लेने से मुंह कड़वा हो जाता है, मुंह में ग्रसनी में, ईसोफेगस ग्रौर पेट में जलन होती है ग्रौर जीभ में झुनझुनी रहती है। इन लक्षणों के साथ मितली, वमन ग्रौर सरदर्द रहते हैं। ऐसा भोजन ग्रागे लेने से हालांकि लक्षण नहीं बढ़ते हैं, क्योंकि ये प्रतिरक्षित हो जाते हैं।

हालांकि दूसरे मामलों में ऐसा खाना खाने के दो या तीन हफ्तों बाद

सिरदर्द ग्रौर कृशता होती है। कीड़ा काटने जैसा बिन्दुकित रक्तस्राव त्वचा पर दिखाई देता है। पूयी एन्जीना की ग्रारंभ की ग्रवस्था में भी रक्त परीक्षण पर श्वेत कोशिका का गणन धीरे-धीरे कम होता दिखाई पड़ता है।

यदि सर्दी में खराब हुए धान का प्रयोग नहीं रोका जाता ग्रौर उपचार तुरन्त प्रारंभ नहीं किया जाता है तो एक, दो या तीन हफ्तों के बाद पूयी एन्जीनल संलक्षण देखने में ग्राते हैं। टांसिलों पर दिखने वाली सफेद या पीली भूरी कला जो कि परिगलन के प्रारंभ में शुरू होती है, दरग्रसल 24 घंटों में गहरे व्रणों में शीघ्र रक्तस्रवण पैदा कर देती है। व्रणोत्पत्ति न सिर्फ टांसिलों पर ग्रसर डालती है, जो कि तुरन्त कम हो जाते हैं बल्कि, यह दूसरे लिम्फाडिनाइड ऊतकों के समूहों, जैसे तालु, ग्रसनी ग्रौर ईसोफेगियल श्लेष्मा ग्रौर मुख-गुहा पर भी ग्रसर डालती है।

रोग की शुरूग्रात के समय भोजन की किसी भी विषालु वस्तु को हटाने से, एन्जीनल लक्षणों की शुरूग्रात के पहले ग्रक्सर रोग में सुधार हो जाता है।

विकसित पूयी ऐन्जीना ग्रधिकतर मृत्युकारक होती है।

इस हालत में चिकित्सा सहायता के ग्रंतर्गत मूल रूप से लेउकोपेनिक ग्रवस्था में सेप्टिक एन्जीना प्रारंभिक निदान उन जनपदों के निवासियों का व्यापक परीक्षण जहाँ सर्दी द्वारा खराब हो गये ग्रन्न का खाने के लिए प्रयोग किया गया हो, तथा लेउकोपेनिया का पता लगाने के लिए खून का परीक्षण, ग्राते हैं।

उपचार. इस रोग के प्रथम लक्षण पैदा होने पर भोजन से विषालु पदार्थ हटा लेने चाहिए ग्रौर पेट को साफ करने के लिए बड़ी मात्रा में मैग्नेशियम सल्फेट ग्रौर सोडियम सल्फेट दिये जाते हैं। भोजन स्वास्थ्य-वर्धक, ग्रौर प्रोटीन ग्रौर विटामिन से युक्त होना चाहिए, पेय काफी मात्रा में दिया जाना चाहिए ताकि विषालु पदार्थ देह से जल्दी निकल जाये। गरारों, संवेदनाहरण मरहमों के ग्रलावा स्थानीय उपचार में व्रणों पर स्ट्रेप्टोसाइड ग्रौर सल्फाडिमेजीन पाउडर लगाना शामिल हैं।

पेनिसिलिन ग्रौर पेंटोक्साइल के ग्रंतर्पेशी इन्जेक्शन देने चाहिए ; रक्तस्रावण को 200-300 मि० ली० की मात्रा में रक्त-ग्राधान ग्रौर कैलशियम क्लोराइड का ग्रन्तर्शिरा इन्जेक्शन देकर रोका जा सकता है; हृदय विकार के लिए कपूर, केफीन ग्रौर स्ट्राइखनीन देने चाहिए।

रोग-निरोध. पूति एन्जीना के नियंत्रण का प्रमुख तरीका रोग-निरोध है जो, समय तथा सावधानी से सभी धान्यों के संलवन तथा जनता को यह समझाने के द्वारा कि जाड़ों में (बर्फ से) बर्बाद हो गये धान्यों का खाने में प्रयोग करना कितना खतरनाक है, किया जा सकता है। विष की रासायनिक प्रकृति अभी तक स्थापित नहीं की जा सकी है। सिर्फ उसका उष्मा से प्रतिरोध स्पष्ट है, क्योंकि जाड़ों में बर्बाद अन्न को न तो पकाने, न उबालने या अन्य किसी पाक संबंधी विधि से इसकी विषालुता में कोई कमी आती है।

## पेरिटांसिली विद्रधि या क्विंसी

पेरिटांसिली विद्रधि चिरकारी टांसिल-शोथ या तीव्र टांसिल-शोथ के बाद आम तौर पर देखी जाती है। संक्रमण टांसिल-दरी से टांसिल-शैय्या के संयोजी ऊतक में जाकर शोथ-प्रक्रिया प्रारंभ करता है, जिसमें बाद में विद्रधि बन जाती है।

लक्षण. क्विंसी में सबसे आम लक्षण हैं बढ़ती हुई वेदना। इस रोगी को, जो अभी-अभी टांसिलशोथ से उठा हो, निगरण में कष्ट होने लगता है जो सामान्यतः एकतरफा होता है और बुखार बढ़ता जाता है।

आधी कोमल तालु काफी लाल हो जाती है, और अधिकाधिक फूलती जाती है। धीरे-धीरे टांसिल पर आ जाती है और शोफयुक्त युवुला को दूसरी ओर कर देती है (रंगीन तालिका III चित्र 2)। इस रोग में गह्वरी या पुटकीय टांसिलशोथ से अधिक तीव्र पीड़ा होती है और इसे तब महसूस किया जाता है जब रोगी निश्चेष्ट होता है। तीव्र कष्टदायक वेदना होती है जो बारंबार कान की ओर जाती है और निगरण, खांसने आदि से बढ़ जाती है। मुंह दर्द के साथ काफी धीरे-धीरे खुलता है और रोगी का सिर उस ओर झुक जाता है जिस ओर दर्द होता है। रोगी के तरफ के लसीका-पर्व फूले और स्पर्शासह्य होते हैं। कोमल तालु की गतिहीनता से स्वर दब जाता है और भोजन के निगरण में भी कष्ट होने लगता है, यहाँ तक कि वह असंभव हो जाता है।

टांसिल की संयोजी ऊतक-शैय्या में विद्रधि अधिकतर टांसिल के ऊपर और आगे या पीछे बनती है (चित्र 77 a)। यह संयोजी ऊतक में टांसिल के निचले स्तंभ पर या आगे की ओर भी हो सकती है।

अग्र ऊर्ध्व विद्रधि में सबसे अधिक लाली कोमल तालु और अग्र
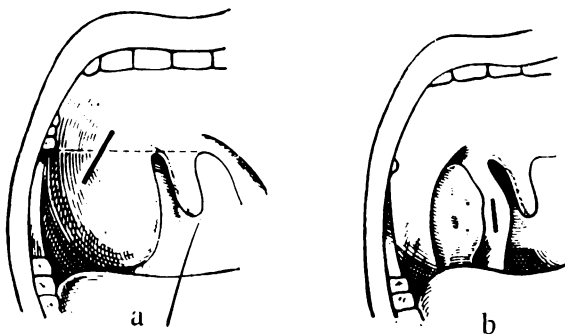
चित्र 77. परिटांसिली विद्रधि

a अग्र-ऊर्ध्व परिटांसिली विद्रधि ; b पश्च परिटांसिली विद्रधि. लाइन छेदन के स्थल की द्योतक है।

गलतोरणिका स्तम्भ में होती है। टांसिल के पीछे की विद्रधि को अंडाकार आकार की ओर पश्च स्तंभ में काफी स्पर्शसह्य और लाली के साथ पहचाना जाता है, जबकि कोमल तालु और अग्र गलतोरणिका स्तंभ में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होते (चित्र 77 b)। विद्रधि पांच या सात दिनों में शीर्ष पर आ जाती है। इसकी प्रगति में प्ररूपी कष्टदायक वेदना, अत्यधिक अंतर्संचरण और किसी स्थान पर कोमलता देखने में आते हैं। विद्रधि का या तो अग्र स्तंभ से विदार होता है या टांसिल के ऊपर से निकास होता है। विद्रधि के अग्र स्तंभ और टांसिल-आच्छादन के बीच द्वार पूय इवेक्यूऐशन के लिए अपर्याप्त होता है; ठीक होने में सहायता करने के लिए उसका विवर्धन किया जाना चाहिए।

निदान. क्विंसी को पहचानने में कोई विशेष परेशानी नहीं होती। परिटांसिली विद्रधि के पहले टांसिलशोथ होता है, जिसमें एकतरफा ललायी रहती है, जबकि सूजन और बढ़ता दर्द और तेज ज्वर इस अवस्था के वास्तविक कारण को दिखाते हैं।

उपचार. यह शोथ की अवस्था पर निर्भर करता है। प्रारंभ में अंतर्संचरण अवस्था में, इस प्रक्रिया को प्रति 24 घंटों में 3 से 6 ग्राम की डोज देकर उचित सल्फोनामाइड चिकित्सा द्वारा इस प्रक्रिया को रोका जाता है। बार-बार विद्रधियां बनने पर सल्फोनामाइड और पेनिसिलिन के पर्याप्त मात्रा में प्रयोग से प्रक्रिया कम हो जाती है और विद्रधि का पकना कम हो जाता
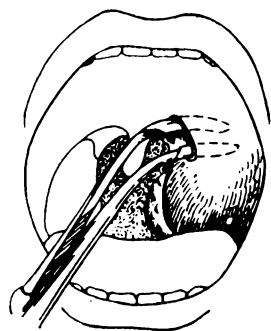
चित्र 78. अग्र ऊर्ध्व पेरिटांसिली विद्रधि को अधिःटांसिली खात से खोलना

है, पर परिटांसिली संयोजी ऊतक में शोथ दो या तीन हफ्तों में भी कम नहीं होता है। पेनिसिलीन की अपेक्षाकृत बड़ी मात्रा में (50 000 से 100 000 इकाई की खुराक हर 24 घंटे में 6-8 बार) अंतर्पेशी सूई लगाने पर कुछक घंटों में ही फायदा होता है और रोग ठीक हो जाता है। पेनिसिलीन की जगह सिन्थोमाइसिन का 0.5 ग्रा० में प्रयोग असरदार होता है और चार पांच दिनों में शोथी अंतर्संचरण समाप्त हो जाता है। शोथ-प्रक्रिया में कमी से काफी आच्छादित विद्रधि बनती और जल्द ही सुधार भी हो जाता है। सभी प्रकार के ताप-उपचार दिये जाते हैं, ताकि अंतर्संचरण कम हो जाये और विद्रधि पक जाये, खासकर तब, जब प्रतिजीवी औषधियां इस्तेमाल नहीं की जातीं। ग्रीवा में गर्म संपीड लगाये जाते हैं और 2 प्रतिशत बेकिंग सोडा के विलयन का अभिश्वसन प्रत्येक दो या तीन घंटों पर दिया जाता है, गर्म एवं शान्त तनु बोरिक अम्ल, पोटेशियम परमैंगनेट और बेकिंग विलयनों आदि से गरारे किये जाते हैं।

रोगी को भोजन में गर्म तरल या दलिया आदि दिया जाना चाहिए। ज्यादा दर्द होने पर एस्पिरीन (कैफिन के साथ) 0.5 ग्रा० मात्रा में कई बार दी जाती है। सोते समय ल्यूमिनाल, मोरफिन या ब्रोमिन दिये जाते हैं।

पकी हुई विद्रधि को कुंठित प्रोब या मुड़े हुए फोरसेप्स के साथ अधिटान्सिली खात से टांसिली केप्सूल के विदार से निकाला जाता है (चित्र 78)। अग्र पेरिटांसिली विद्रधि का छेदन अग्र गलतोरणिका स्तंभ में 1 या 2 सें० मी० कोर के बाहर सबसे उभरे हुए और कोमल भाग पर खोला

जाता है। जब कोमल क्षेत्र नहीं पहचाना जाता तो छेदन मध्य रेखा में जीभ के आधार और पश्च चर्वणक में 1 या 2 सें० मी० की गहराई में किया जाता है।

क्विन्सी के उपद्रवों में रक्तस्राव है जो पूय द्वारा पश्च ग्रसनी-भित्तियों पर संक्षारण से, गहरे ग्रीवा फ्लेग्मोन, स्वरयंत्र के शोफ और पूतिता के कारण होता है।

रोग-निरोध. मुख का स्वास्थ्य काफी महत्वपूर्ण है, साथ ही चिरकारी टांसिल-शोथ, दंत-क्षारण और परानासा विवरों में सपूयता का उपचार भी। परिटांसिली विद्रधि के बार-बार होने से गलतुण्डिका उच्छेदन आवश्यक हो जाता है, यानी क्विन्सी में सुधार के तीन या चार हफ्ते बाद टांसिलों से पूरा हटा दिया जाता है।

यहां पर संकेत हो, गलतोरणिका-टांसिलों के परिटांसिली विद्रधि के रहते भी हटाया जा सकता है। विद्रधि दुबारा न होने के निरोध के लिए भी इस प्रक्रिया को किया जाता है।

**जिह्वीय टांसिल विद्रधि.** जिह्वीय टांसिलों के शोथों और घातों से जिह्वा के आधार पर फ्लेग्मोन पैदा हो सकते हैं, जो गलतोरणिका-टांसिलों पर होने वाले फ्लेग्मोन के समान होते हैं। इस अवस्था में गहरी कृशता, तेज ज्वर, सिरदर्द, निगरण और बोलने पर तीव्र वेदना के लक्षण होते हैं। पहले जिह्वा का आधार लाल, फूला और शोफयुक्त हो जाता है। शोफ कभी-कभी स्वरयंत्र और एपिग्लोटिस पर पहुंच कर घुटन से मृत्यु का कारण बन सकता है। विद्रधि ग्रीवा के एक ओर बढ़कर स्पर्शासह्य सूजन और मुख-गुहा और अधोहनु कोण में लालायी पैदा करती है।

उपचार. इस अवस्था का उपचार परिटांसिली विद्रधि की तरह ही किया जाता है।

**पश्च ग्रसनी-विद्रधि.** यह विद्रधि सामान्यतः कृश और दुबले शिशुओं और छोटे बच्चों में देखी जाती है। यह पश्च ग्रसनी-भित्ति में लसीका-पर्वों की सपूयता यानी तथाकथित पश्च ग्रसनी-क्षेत्र पर प्रभाव से होती है। यहां संक्रमण नासा-गुहा के लसीका-मार्गों द्वारा प्रवेश करता है—कभी-कभी प्रतिश्याय के बाद, या मुख-गुहा में विदरों और खरोंचों से, जो कि बच्चों में मुख की अच्छी देखभाल न होने से होते हैं। पांच या छः वर्ष के बच्चों में पश्च ग्रसनी-विद्रधियां बहुत कम देखी जाती हैं, क्योंकि इनमें पूर्व मेरुदण्ड-लसीकापर्व में शोष हो जाता है।
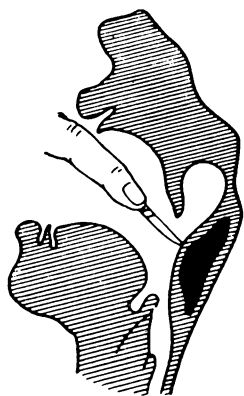
चित्र 79. पश्च ग्रसनी विद्रधि का छिद्र

लक्षण. छोटे बच्चों में विद्रधि से 39° से 40° सें० तक ज्वर रहता है। चूंकि निगरण कष्टदायक होता है, इसलिए बच्चे का गला रूद्ध हो सकता है और वह भोजन लेना बन्द कर सकता है, जिसके नाक और स्वरयंत्र में जाने का खतरा रहता है। इसके अलावा, गहरा नासा अवरोध, दबी आवाज और घर्धराहट, जो खासकर नींद में सुनाई देती है, देखे जाते हैं। अंतिम लक्षण माँ-बाप को चिंतित बना देता है और डाक्टर को निदान करने में सहायता करता है। यदि पश्च ग्रसनी-विद्रधि का संदेह हो तो अक्सर पश्च ग्रसनी-भित्ति का परीक्षण ही पर्याप्त नहीं होता, अतः ग्रसनी और नासा-ग्रसनी का अंगुली से परिस्पर्शन करना चाहिए और नासा-ग्रसनी का अंगुल और कोमल तालु और ग्रसनी के एक तरफ पेस्टी जैसी और स्पर्शतरंग सूजन पायी जाती है। विद्रधि ग्रसनी की क्षैतिज मध्य रेखा में या उसके निचले भाग में होती है। रोगी-पार्श्व में क्षेत्रीय लसीका-पर्व फूले रहते हैं। वयस्कों में पश्च ग्रसनी में अंतर्संचरण रूपी विद्रधियां पायी जाती हैं जैसे यक्ष्मा और सिफिलिटिक स्पान्डिलाइटिस। ऐसे केसों में मार्ग निश्चेष्ट और बुखार कम रहता है, ग्रीवा दृढ़ रहती है और सिर को मोड़ने पर दर्द होता है।

उपचार. विद्रधि का छेदन निदान होते ही करना चाहिए ताकि स्वतः-विदार के खतरे को रोका जा सके। क्योंकि इससे पूय के अचानक स्वरयंत्र को भरने से खासकर नींद में दम घुटने का खतरा रहता है और निम्न श्वसन-नली में पूय चूषण से निमोनिया हो सकता है।

विद्रधि में स्केलपल से, जिसमें सटने वाला प्लास्टर अन्त से 0.5 सें० मी० पर लगा रहता है, विद्रधि को खोला जाता है (चित्र 79)। छिद्र को फोरसेप्स द्वारा विस्फारित किया जाता है और बच्चे के सिर को तेजी से नीचे धकेल कर पूय को स्वरयंत्र से आगे मोड़ दिया जाता है। दो या तीन दिन बाद घाव के सटे ओष्ठों को अलग हटाना और जमे हुए पूय को निकालना आवश्यक हो जाता है। विद्रधि को खोलने के बाद, सुधार शीघ्र होता है।

अंतर्संचरण विद्रधियों को ग्रसनी की ओर से नहीं खोलना चाहिए, क्योंकि इससे द्वितीयक संक्रमण और नालव्रण बन जाता है। इनका छेदनों और चूषण द्वारा उपचार किया जाता है। इसके बाद 5 से 10 मि० लि० आयडोफार्म इमल्शन या स्ट्रेप्टोमाइसिन विलयन से आधान किया जाता है।

## गलतोरणिका डिप्थीरिया

डिप्थीरिया लौफलर बैसीलस के कारण होने वाला तीव्र संक्रमण रोग है, जिसके क्लीनिकल चिन्ह दूसरे और सातवें दिन के बीच देखे जाते हैं। इस रोग का संचार या तो सीधे संपर्क द्वारा होता है, जब रोगी खांसने, छींकने और बात करने से खखार-कणों द्वारा रोग को फैलाता है या फिर उसके द्वारा काम में लायी गयी वस्तुओं के द्वारा अप्रत्यक्ष सम्पर्क से यह रोग फैलता है। रोग स्वास्थ्य और ठीक हुए वाहकों द्वारा भी फैलाया जाता है। रोग आम तौर पर गलतोरणिका और टांसिलों में खासकर दो से छः वर्षों की आयु वाले बच्चों में मुख्यतः पाया जाता है।

स्तनपोषित बच्चों और वयस्कों में गलतोरणिका डिप्थीरिया तुलनात्मक तौर पर बहुत कम पाया जाता है।

रोग का क्लीनिकल रूप और गहराई भिन्न-भिन्न होते हैं इसलिए इसे स्थानीय, विसरित, विषालु और रक्तस्रावी रूपों में विभाजित किया जाता है।

हल्के रूप, जैसे स्थानीय डिप्थीरिया, रिक्तिका या पुटकीय टांसिलशोथ के समान होते हैं और भेद केवल देह-ताप में होता है जो अवज्वरीय रहता है और वयस्कों में सामान्य भी रह सकता है। इस अवस्था में सलेटी या सलेटी-सफेद धब्बों वाली कला मध्यरूपी सूजे और रक्ताधिक्य टांसिल-सतह में पायी जाती है और थोड़ा आकारिकी विक्षोभ रहता है। कण्ठ में वेदना गहरी नहीं होती है। अवद्रधोह्नु लसीका-पर्व थोड़े सूजे रहते हैं और रोग तीन-चार दिनों में विलुप्त हो जाता है। ज्यादातर टांसिलों पर अलग-अलग धब्बे मिलकर सफेद, सलेटी सफेद या कभी-कभी पीले टापू बनाते हैं जो बढ़कर घनी अभिलग्न पपड़ी बनाते हैं। ये पपड़ियां न सिर्फ टांसिल की स्वच्छन्द सतह पर पायी जाती हैं, बल्कि तथाकथित विसरित रूप में गलतोरणिका स्तंभों और कोमलतालु में फैल सकती हैं और श्लेष्मा की सतह से उठ जाती हैं (रंगीन तालिका III चित्र 3, 4)। टांसिल पर से उपकला को हटाने पर रक्तस्राव प्रारंभ हो जाता है।

गहरे रूप, जो कि विषालु कहलाते हैं, 39°-40° सेंटीग्रेड तक का तेज ज्वर पीलापन, उदासीनता और दुर्गन्ध के साथ तीव्र आकारिकी विक्षोभ पैदा करते हैं। दुर्बल, तेज, लयहीन नब्ज विषालु हृदय रोग के द्योतक हैं। रोग के प्रारंभिक दिनों में काफी फूले और लाल टांसिल पाये जाते हैं, जिन पर वृहत मैली सलेटी कला रहती है जो स्वरयंत्र और श्वास-प्रणाल पर भी फैलती है और यह अवस्था अवरोहित रूप कहलाती है। लसीका-पर्व फूले रहते हैं और ग्रीवा का कोशिकीय ऊतक शोफयुक्त होता है। डिप्थीरिटिक प्रक्रिया के स्थल पर कभी-कभी परिगलित हो जाते हैं, कला का मैला, सलेटी रंग रहता है और दुर्गन्धमय आस्राव नासा और मुख-गुहा से निकलता है।

डिप्थीरिया के रक्तस्रावी रूप में श्लेष्मा-कला और त्वचा में रक्तस्राव होता है और कला-धब्बे रक्त से संतृप्त हो जाते हैं।

विषालु रूप में कोशिकीय ऊतक का शोफ क्लेविक्ल के नीचे तक फैलता है, रक्तस्रावी रूप में भी रोगी बच्चे की जान बचाना मुश्किल हो जाता है। यदि सीरमी उपचार समय पर प्रारंभ किया जाये तो विसरित रूप में, जिसमें ग्रीवा कोशिकीय ऊतक में शोफ नहीं होता, सुधार निश्चित होता है।

रिक्तिका-टांसिल के शोथ से डिप्थीरिया के स्थानीय विसरित रूप का भेद करना बहुत आवश्यक होता है, खासकर तब, जब रिक्तिका टांसिल वृहत कला बनाता है। गलतोरणिका-डिप्थीरिया और अग्र टांसिल-शोथ में भेद को सुगम बनाने के लिये दोनों रोगों के प्ररूपी लक्षणों की तालिका आगे दी गयी है। इस स्कीम में प्रत्येक लक्षण अलग से देखने पर विशिष्ट व्याधिज्ञापक नहीं हैं पर सारे लक्षणों को एक साथ देखकर निर्णय करने पर भेद करने में सहायता मिलेगी।

बिना गहरी बेचैनी के तेज ज्वर टांसिल-शोथ में देखा जाता है जबकि 37° से 38° सेन्टीग्रेड से अधिक का मध्यरूपी ज्वर गहरी कृशता होने पर डिप्थीरिया की ओर संकेत करता है।

टांसिलशोथ में कला-धब्बे ज्यादा छिछले होते हैं और आसानी से हटाये जा सकते हैं जबकि डिप्थीरिया में स्थूल कला-श्लेष्मा सतह के ऊपर रहती है और इसे हटाने में परेशानी होती है। टांसिलशोथ में कला कभी-कभी टांसिल की खुली सतह के आगे फैलती है। अगर थोड़ा सा भी संदेह हो, तो कण्ठद्रव्य लेकर डिप्थीरिया बैसीलस की जांच कर लेनी चाहिए।

उपचार. निदान को साबित करते समय या संदेहजनक केसों के जीवाणु-विज्ञानी की रिपोर्ट के लिए रुके बगैर डिप्थीरिया रोधी सीरम दे देना चाहिए।

सीरम को गर्म करके अंतर्पेशी इंजेक्शन द्वारा दिया जाता है। गलतोरणिका-डिप्थीरिया के स्थानीय रूप में सीरमी मात्रा 5000-8000 वि० यू० (विषालुरोधी यूनिट) है।

विसरित रूप में शुरूआती मात्रा 10000 से 15000 वि० यू० रहती है, विषालु डिप्थीरिया के गहरे मामलों में एक प्राथमिक डोज 30000 वि० यू० की दी जाती है और बाद में अगली डोज 12 या 24 घंटों बाद या जरूरत पड़ने पर 6 घंटों बाद दी जाती है।

रक्तस्रावी रूप में एक डोज 40000 से 50000 वि० यू० की दी जाती है। बाद में जबतक कि प्रक्रिया में उलट न हो जाये तबतक रोग की गहराई के अनुसार छोटी मात्रा दी जाती है।

एक साल से छोटे बच्चों या एक से दो साल के बच्चों को क्रमशः एक-चौथाई या आधी मात्रा दी जाती है।

तीव्रगाही घटना को रोकने के लिए, बेजरेदका के तरीके का प्रयोग किया जाता है जिसमें 1 मि० लि० सीरम का इन्जेक्शन पूरी चिकित्सार्थ मात्रा के एक या दो घंटे पहले दिया जाता है।

आज, विलगित यानी बिनाप्रोटीन की और किण्व प्रक्रिया युक्त सीरम, जो डायफर्म कहलाते हैं, जिसमें ऐंटिटाक्सिन काफी उच्च सांद्रण में पाया जाता है, को बड़ी मात्रा में एंटिटाक्सिन इंजेक्शन देने के काम में लाया जाता हैं। इस सीरम की अभिक्रिया सबसे कम होती है।

बड़े बच्चों में स्थानीय उपचार में कीटाणु-रोधी गरारे तनु बोरिक अम्ल, बोरैक्स या हाइड्रोजन पेरोक्साइड द्वारा किये जाते हैं।

छोटे बच्चों में, इन्हीं विलयनों या 2 प्रतिशत बैकिंग सोडा-विलयन की स्प्रे-सिरिंजिंग द्वारा मुंह को साफ रखा जाता है।

डिप्थीरिया का सबसे गंभीर उपद्रव है हृद्‌यवाहिका तंत्र में विक्षति (हृद्‌पेशीशोथ) और अपवृक्कता के लक्षण। इसलिये सभी डिप्थीरिया रोगियों को बिस्तर में रखना चाहिए और हृदय-उत्तेजक जैसे कैफीन, कपूर, स्ट्रीकनीन आदि दिये जाने चाहिए, जैसा रोग लक्षणों से संकेत मिलता है।

सीरम के इंजेक्शन के सात से बारह दिनों के बीच सीरमी-रोग हो

**डिप्थीरिया और रक्तिका टांसिलशोथ के विशिष्ट लक्षणों की तालिका**

| लक्षण | टांसिलशोथ | डिप्थीरिया |
|---|---|---|
| फूले टांसिल | डिप्थीरिया से कम अधिकतम दो तरफा। | ज्यादा गहरे साथ में गलतोरणिका स्तंभों, युवुला और कोमल तालु में शोफ। एक तरफा भी हो सकते हैं। |
| धब्बे | खुले क्षेत्र में फैलते हैं। | टांसिल के आगे गलतोरणिका स्तंभों, कोमल तालु और पश्च ग्रसनी भित्ति में एक फैलते हैं।* |
| धब्बों का रंग | पीला | सफेद, सलेटी सफेद या मैला सलेटी। |
| धब्बों की अभिलनता | धब्बे छिछले होते हैं और जल्दी निकल जाते हैं। | धब्बे गहरे होते हैं, श्लेष्मा में परिगलन होता है, प्ररूपी केसों में ये कठिनाई से निकलते हैं और रक्तस्रावी सतह छोड़ते हैं। |
| निगरण कष्ट | तेज | हल्का |
| क्षेत्रीय लसीका पर्व | फूले हुए, सवितगत पर्व आसानी से परिस्पर्शित और काफी दाब-वेदना वाले | रोग के प्रारंभ से दोनों ओर फूले हुए, अवत्वक ऊतक में शोफ, ग्रीवा के आकार सपाट हो जाते हैं। |
| आकारिकी विक्षोभ | डिप्थीरिया से कम | विषालु रूप में काफी गहरा |
| ज्वर | 39-40° सेन्टीग्रेड तक | अवज्वरीय से 40° सेन्टीग्रेड तक, ज्यादा स्थायी |
| नाड़ी दर | ज्वर के अनुपात में | पहले धीरे, फिर तालहीनता रूपी |
| जीवाणु विज्ञान परीक्षण का नतीजा | नकारात्मक (लोफ्लर बैसीलस के लिए) | अधिक केसों में सकारात्मक |

* जहाँ धब्बे टांसिल से आगे बढ़ते हैं वहां त्वचा के परीक्षण से स्कारलेट ज्वर और व्रण-श्लेष्मा ऐन्जीना में भेद किया जाता है।

सकता है जिसमें कि पित्ती, पित्तिकाएं, बुखार, और संधियों में दर्द होता है।

खुजली को गर्म स्नान, कैल्शियम क्लोराइड के मौखिक, या अंत:शिरा इंजेक्शन द्वारा ठीक किया जा सकता है। संधियों में दर्द को गर्म पानी की थैलियों और गर्म संपीडों द्वारा ठीक किया जा सकता है।

कुछ मामलों में सुधार के तीन-चार हफ्तों के बाद कुछ समय तक कोमल तालु का आंशिक अंगघात रह सकता है, तब तरल भोजन नाक में चला जाता है और स्वर अनुनासिक हो जाता है।

इस आघात के हल्के रूप स्वतः ठीक हो जाते हैं, जबकि ज्यादा गहरे रूपों के लिए विद्युत उपचार किया जाता है या आर्सेनिक और स्ट्रीकनीन औषधियां मुंह से टी-रे स्ट्रीकनी रूप में बच्चे की उम्र के सालों की जितनी बूंदें दिन में दो या तीन बार दी जाती हैं।

रोग-निरोध और परिचर्या. डिप्थीरिया के रोगी को तुरन्त पृथक किया जाता है, और उसे अस्पताल में रखना बेहतर रहता है।

यदि अस्पताल में भर्ती करने में विलम्ब हो तो कुछ ही घंटों के लिए पहले रोगी को डिप्थीरिया-रोधी सीरम की सूई दी जाती है क्योंकि शीघ्र सीरम देना प्रभावशील उपचार के लिए आवश्यक होता है।

जो भी डिप्थीरिया रोगी के सम्पर्क में आता है उसका जीवाणु-विज्ञानी परीक्षण किया जाता है। उनको पृथक रखा जाता है और क्वारेन्टाइन से उन्हें 7 से 10 दिन बाद तभी छुट्टी दी जाती है जब सारे लक्षण समाप्त हो जायें और जीवाणुविज्ञानी-परीक्षण नकारात्मक हो।

रोगी को अस्पताल में भर्ती करके उसके घर को कीटाणु-रहित किया जाता है।

यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि डिप्थीरिया बैसीलाई क्रियाशील वाहकों के द्वारा ही नहीं स्वास्थ्य लाभी द्वारा भी फैलाये जा सकते हैं और ये समाज के लिये खतरा होते हैं। यह अवस्था बैसीलाई-वाहक अवस्था कहलाती है।

इस अवस्था का उन्मूलन इस रोग की रोकथाम की मुख्य समस्या है। इस अवस्था की प्रगति अक्सर बच्चे की गहरी बीमारी के बाद कमजोरी नाक, ग्रसनी और टांसिलों की वैकृत अवस्था पर निर्भर करती है। बैसीलाई का तात्कालिक नाश प्रतिजोवी औषधियों के स्थानीय, अंतर्पेशी और संयुक्त उपयोग से हो सकता है। नासा-गुहा पर पेनीसीलिन और

स्ट्रेप्टोमाइसिन का एरोसोल रूप में स्प्रे किया जाता है, जबकि लीवोमाइसिटिन, बायोमाइसिन, टेट्रासाईक्लीन या एरीथ्रोमाईसिन को मुंह से 0.2 ग्र० की 3 मात्राओं में पांच या छः दिनों तक दिये जाते हैं। चिकित्सार्थ उपायों में डिप्थीरिया टाक्सोइड से बार-बार प्रतिरोग-क्षमता बढ़ाने की सलाह दी जाती है।

चूंकि डिप्थीरिया-वाहकों से कोई विश्वसनीय सुरक्षा नहीं है, इसलिए उनको पृथक करना, यदि बच्चे हों तो उन्हें स्कूल न भेजना, जहां तक संभव हो उन्हें खुली हवा में रखना, बैसीलाई-हीन करना जरूरी होते हैं। कीटाणु-रोधी गरारे भी सहायक होते हैं।

बच्चे को बेसीलाईयुक्त तभी घोषित करना चाहिए जब उसके नाक और गले से द्रव्य के कुछ दिनों के अन्तराल पर लिए जाने वाले तीन परीक्षणों से यह सिद्ध हो गया हो।

अगर जीवाणुविज्ञानी-परीक्षण नकारात्मक सिद्ध हो जाये तो डिप्थीरिया के रोगियों को लक्षण समाप्त होने के हफ्ते भर बाद अस्पताल से छुट्टी दे देनी चाहिए। डिप्थीरिया के विषय में और उसकी रोकथाम के विषय में अधिक से अधिक लोगों को जानकारी देना आवश्यक है। सहायक स्टाफ को डिप्थीरिया के रोगी की देखभाल के नियम अच्छी तरह समझाने चाहिए, इंचार्जों को चाहिए कि रोगी से संपर्क के बाद अपने हाथ मर्क्यूरी बाइक्लोराइड विलयन 1:1000 से धो लें। किसी को भी रोगी के बिस्तर पर नहीं बैठने देना चाहिए, दर्शक नहीं आने देने चाहिए, न ही रोगी के बर्तनों को वार्ड और कमरे से बाहर ले जाना चाहिए। रोगी के नाक और मुंह को साफ करने वाली गाज और रूई को तुरन्त जला देना चाहिये।

रोगी का ताप और नाड़ी-दर पर सावधानीपूर्वक नजर रखनी चाहिए क्योंकि हृदय की कम क्रियाशीलता डिप्थीरिया का सबसे खतरनाक लक्षण होती है। खुराक में तरल या दूध, शोरबा, मक्खन और जेली शामिल होते हैं, जिनमें पर्याप्त मात्रा में विटामिन होते हैं, खासकर विटामिन "सी", जिसे एस्कोर्बिक एसिड दवाइयों में देना चाहिए।

## ग्रसनी के चिरकारी शोथ

**चिरकारी टांसिल-शोथ.** चिरकारी टांसिल-शोथ या गलतोरणिका-टांसिल का शोथ वयस्कों में तीव्र टांसिल शोथ के बार-बार होने वाले आक्रमण के फलस्वरूप उत्पन्न एक आम रोग है। विकारी प्रक्रिया टांसिली दरियों
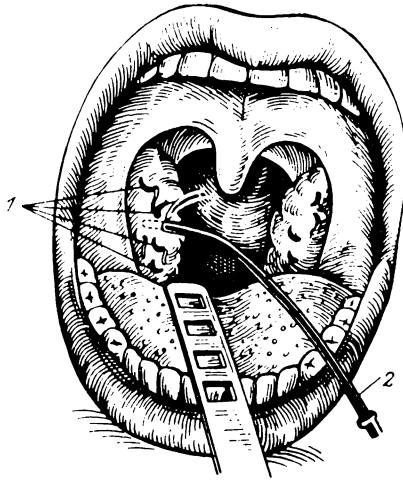
चित्र 80. टांसिल दरियों की सिंचाई (1) टांसिल दरियां ; (2) सिंचाई केनूला

तक सीमित रहती है या मुख्यत: टांसिली पेरेन्काइमा को प्रभावित कर सकती है।

दरियों की शल्की उपकला शल्कों में निकल कर दुर्गन्धित किलाटी समूह बनाती है जो दरियों को प्लग करती है तथा उसमें अनगिनत जीवाणु और श्वेत कोशिकाएं होती हैं। दरियों के विस्तार के फलस्वरूप टांसिल छिद्रपूर्ण तथा स्पंजी नजर आता है तथा गलतोरणिका-स्तंभ बहुधा टांसिल की मुक्त सतह से जुड़ जाते हैं। ये दरियां उग्र स्ट्रेप्टोकोकी तथा स्टेफाइलोकोकी के रहने तथा विस्तार के लिए सुविधाजनक स्थान हो जाते हैं तथा उनकी गतिविधियों से टांसिल की शोथज-प्रक्रिया बनी रहती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में, जैसे ठंड लगने पर या घटी हुई शारीरिक प्रतिरोध-क्षमता आदि की स्थिति में, ये जीवाणु प्रकोपन पैदा कर सकते हैं, जैसे तीव्र टांसिल-शोथ, परिटांसिली विद्रधि या बहुत सी आम शिकायतें, जैसे संक्रामक बहु-संधिशोथ, रूमेटिक हृदय तथा वृक्क-शोथ आदि।

चिरकारी टांसिल-शोथ वाले रोगी बहुधा, टांसिली-क्षेत्र में तकलीफ, निगलने पर दर्द तथा कभी-कभी दुर्गन्धपूर्ण सांस की शिकायत करते हैं। बहुधा गले में आगंतुक शल्य बने होने का एहसास तथा प्रतिवर्त ओटाल्जिया

होता है जो बढ़े हुए किलाती प्लग के दबाव के कारण उत्पन्न होते हैं। चिरकारी टांसिल-शोथ के बहुधा होने वाले प्रकोपन में सबमैन्डीबुलर तथा कशेरुका, दोनों लसीका ग्रंथियों में सूजन तथा दाब वेदना होता है। किन्तु कुछ रोगी रोग से अनभिज्ञ रहते हैं।

रोगी के इतिवृत्त में, टांसिल शोथ का बहुधा होना, परिटांसिली विद्रधि या आकारिकी रोगों के रूप में उपद्रवों का टांसिल शोथ के तुरन्त बाद होना, आदि शामिल रहते हैं। चिरकारी टांसिल शोथ से लम्बे समय तक रहने वाला हल्का ज्वर हो सकता है जो रात में चढ़ता हो, 5 या 6 महीने तक चले या और भी लम्बा हो, तथा आकारिकी विक्षोभ जैसे उदासी, काम करने में असमर्थता, सिरदर्द आदि उत्पन्न कर सकता है।

शिकायतें तथा पूर्ववृत्त आंकड़े अन्तिम निर्णय के लिए काफी नहीं होते, निदान को साबित करने के लिए दोनों टांसिलों का सावधानी से परीक्षण करना जरूरी होता है।

उपचार. यह संरक्षी या शल्यक्रिया वाला हो सकता है। संरक्षी उपचार के अन्तर्गत आयोडीन टिंक्चर के 5 प्रतिशत घोल, ट्राइक्लोर एसिटिक अम्ल 1 प्रतिशत, लूगोल घोल अथवा 1-3 प्रतिशत सिल्वर नाइट्रेट घोल से टांसिलर दरियों को पेन्ट करना शामिल हैं। अगर इसे नियमित रूप से किया जाये तो इस विधि से टांसिल सिकुड़ जाता है तथा प्लग बनना बन्द हो जाता है। टांसिलर दरियों का 4 प्रतिशत बोरिक अम्ल या पेनीसीलिन घोल, आदि से नियमित धोवन करने से भी ऐसे परिणाम प्राप्त होते हैं (चित्र 80)। गैल्वेनोकाटर से या कुंद नोक वाली वक्रित छुरिका से टांसिली दरियों का उच्छेदन करने तथा कोन्कोटोम से ऊतक टैगों को हटाने से भी काफी अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं।

बार-बार होने वाले परिटांसिली विद्रधि तथा टांसिल शोथ में, खास तौर पर तब, जब वे टांसिल-शोथ, रूमेटिक हृदय तथा वृक्कशोथ जैसे उपद्रवों को पैदा करने की स्थिति में हो जायें, टांसिल के पूर्ण उच्छेदन की जरूरत पड़ सकती है। इस शस्त्र कर्म के अन्तर्गत, जिसे टांसिल-उच्छेदन के नाम से जाना जाता है, टांसिलों का उनके कैप्सूल में पूर्ण इनूक्लियेशन होता है (चित्र 81)। टांसिल-शोथ को दुबारा होने से रोकने के लिए टांसिल-उच्छेदन लगभग सभी मामलों में एक विश्वस्त विधि है।

शस्त्रकर्म स्थानिक संवेदनाहरण करके अन्तरंग रोगी क्लीनीक में करते

हैं। यह शस्त्रकर्म रक्तोत्पादक रोगों या रक्त जमने में काफी देर होने वाले रोगियों में प्रतिदिष्ट है।

शस्त्रकर्म के बाद रोगी पर सावधानी से निगरानी रखनी चाहिए, क्योंकि शस्त्रकर्मोत्तर रक्तस्राव हो सकता है। रोगी को निगलने से मना कर देते हैं तथा लार को बेसिन या तौलिये में थूकने के लिये कहते हैं। रोगी को शस्त्रकर्म के पहले कम से कम 8-12 घंटे तक कोई भोजन नहीं करना चाहिए।

प्रारंभिक शस्त्रकर्मोत्तर अवधि में रोगी को अर्धतरल दलिया देते हैं। स्वाभाविक तौर पर आहार में काफी माता में विटामिन भी रहना चाहिए।

**चिरकारी ग्रसनी-शोथ.** ग्रसनी-श्लेष्मा का चिरकारी रोग केटारल (प्रतिश्यायी) अतिवृद्धित तथा शोषकर रूपों में होता है। उनकी हेतुकी
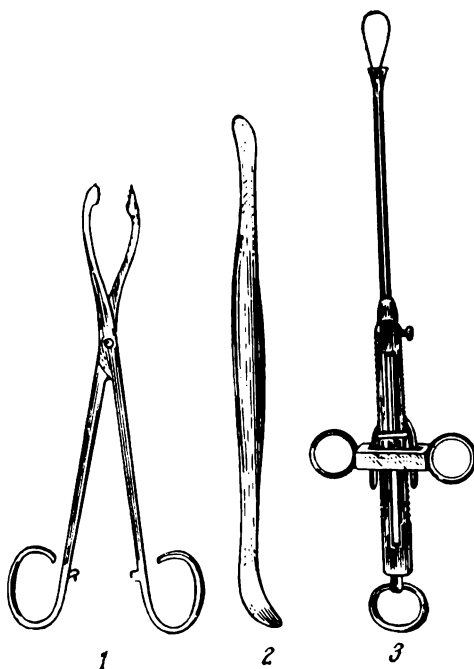
चित्र 81. टांसिल उच्छेदन के उपयोग में आने वाले उपकरण

(1) टांसिल को पकड़े रहने के लिए ग्रैस्पिंग फारसेप्स; (2) टांसिल को अलग करने के लिए इलेवेटर; (3) टांसिल स्नेयर

स्थानीय या दैहिक चरित्र की हो सकती है। स्थानीय हेतुकी में चिरकारी नासा-शोथ, परानासा-विवरों में सपूयता, चिरकारी टांसिल-शोथ आदि आते हैं। दैहिक हेतुकी में चयापचयी विक्षोभ तथा फुफुस, यकृत तथा वृक्क एवं हृदय के रोगों में शिरा-तंत्र में स्टेसिस आदि आते हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण कारण, प्रतिकूल वातावरण तथा व्यावसायिक संकट है जैसे शुष्क वायु, तापमान में तेज परिवर्तन तथा सीमेंट प्लांट, पोरसेलिन कारखाने तथा आटा मिलों आदि उद्योगों में पाया जाने वाला गन्दा वातावरण, आदि। रासायनिक उद्योग में वर्तमान वाष्प तथा गैस और तंबाकू एवं एल्कोहल के दुरूपयोग से ग्रसनी-श्लेष्मा पर बहुत बुरा असर पड़ सकता है।

लक्षण. चिरकारी ग्रसनी शोथ के शोषकर रूप में गले में गुदगुदी, खुजली तथा शुष्कता का एहसास होता है। अतिवर्धित रूप में प्रमुख शिकायत नासा-ग्रसनी में तंत्रश्लेष्मा-स्राव का काफी मात्रा में जमा होना है जिससे काफी खांसी तथा कफोत्सरण होता है, खासतौर पर सुबह के समय, जब इनके साथ-साथ उबकाई और कभी-कभी वमन भी हो सकता है।

अतिवर्धित रूप में श्लेष्मा लाल और स्थूल हो जाती है तथा पश्च ग्रसनी-भित्ति एक लसलसे श्लेष्मासपूयस्राव से आच्छादित हो जाती है जो नासा-ग्रसनी होकर नीचे आता है। शोषकर रूप में श्लेष्मा ऐसी सूखी तथा चमकदार होती है जैसे वह वार्निश की पतले फिल्म से आच्छादित हो। कभी-कभी यह श्यान, लगभग शुष्क पपड़ी से आच्छादित होती है, जिन्हें दवा लगाने के बावजूद निकालना मुश्किल होता है।

श्लेष्मा की लसीकाभ संरचनाओं में चिरकारी क्षोभ होने पर, बहुधा अलग-अलग फालिकुल की अतिवृद्धि हो जाती है जो पश्च ग्रसनी-भित्ति पर फैले हुए लाल कणों की तरह दिखते हैं तथा ये कणीय ग्रसनी-शोथ के लक्षण होते हैं। कभी-कभी पार्श्व ग्रसनी-पुटकों में स्थित एडिनाइड ऊतकों की अतिवृद्धि होती है जो इस केस में पश्च गलतोरणिका-स्तंभों के पीछे उन्नत चमकीले लाल तथा स्थूल बन्धनों की तरह दिखते हैं। इस अवस्था को पार्श्व ग्रसनी शोथ कहते हैं।

उपचार. पहली जरूरत अवस्था के मूल कारण को खत्म करने की होती है।

श्लेष्मा के स्थानीय उपचार के अन्तर्गत अभिलग्न स्राव को हटाना तथा

क्षोभ खत्म करने के लिए बेकिंग सोडा के उष्ण क्षारीय घोल, बोरेक्स तथा कमजोर 0.5-1 प्रतिशत सैलाइन घोल से गले का धोवन करना, आते हैं। इनके विवरण के लिए शोषकर नासा-शोथ के अध्याय को देखें।

निम्न गरारे की सलाह भी दी जाती है।

Rp. Natrii benzoici
Natrii biborici
Natrii bicarbonici āā 10.0
M. f. pulv.

निर्देश: एक गिलास गर्म पानी में आधा चम्मच गरारे के लिए।

Rp. Natrii benzoici 3.0
T-rae Opii simplicis gtt. XX
Aq. Amygdalarum amararum 2.0
Glycerini 10.0
Aq. Menthae 50.0
Aq. destill. 200.0

निर्देश: उष्ण गरारे के तौर पर दिन में तीन और चार बार उपयोग या बाइकारमिंट, एक या दो लौजेन्ज, आधा गिलास पानी में गरारे के लिए।

काफी मात्रा में स्राव होने पर हल्का एन्टिसेप्टिक या स्तंभक गरारे का उपयोग प्रतिदिन 2-3 बार करते हैं। इसके लिए एक गिलास उबलते पानी में एक चम्मच कैमोमाइल या सागा पत्तों का एक चम्मच, जो अभी मजबूत स्तंभक प्रभाव वाला हो, डालते हैं। इस तरह चाय बना कर उससे गरारे करते हैं। उष्ण धोवन से श्लेष्मा पर सहलाने वाला आरामदायक प्रभाव पड़ता है तथा यह गले में अतिसुग्राहिता तथा अरुचिकर संवेदना कम कर देता है।

छिद्रपूर्ण और अतिवर्धित श्लेष्मा पर 1%-2%-3%-5% सिल्वर नाइट्रेट घोल प्रत्येक 2-3 दिन पर एक बार पेंट कर देने से यह सिकुड़ जाती है। शोषकर रूप में, प्रारंभिक क्षार-गरारे के बाद 1 प्रतिशत आयोडीन ग्लिसरोल या द्रव पैट्रोलेटम में 1 प्रतिशत मेन्थोल घोल का उपयोग करते हैं।

**फैरिंगोमाइकोसिस.** इस रोग में एडिनाइड ऊतक की शल्की उपकला का श्रृंगीकरण होता है। अपरिवर्तित टांसिली तल तथा पश्च ग्रसनी-भित्ति के पार्श्व पुटकों तथा जिह्वा के आधार पर उजले या क्रीम रंग के चकत्ते या कांटों की तरह की उपवृद्धियां पायी जाती हैं। ये नुकीले या गोलाकार, कैल्सियमी अपवृद्धियां श्लेष्मा-तल के ऊपर स्पष्ट तौर पर निकली होती हैं, अपनी शैय्या से अच्छी तरह अभिलग्न रहती हैं। कांटों में फंगस– लेप्टोथ्रीक्स बूकेलिस–काफी संख्या में रहते हैं।

लक्षण. लेप्टोथ्रीक्स विक्षतियां आम तौर पर लक्षण रहित होती हैं तथा संयोग से, या जब वे थोड़ी चुभन की संवेदना देती हैं, तब पहचान ली जाती हैं। हालांकि यह अवस्था जोर से बनी रहती है तथा इस पर उपचार का ज्यादा असर नहीं होता है, फिर भी ये कोई गंभीर उपद्रव नहीं पैदा करतीं। फैरिंगोमाइकोसिस को बहुत बार रिक्तिका टांसिल-शोथ समझ लिया जाता है।

उपचार. इसका कोई खास असर अभी तक नहीं हुआ है। सामान्य विधियां हैं बिजली से काटराइजेशन या अपवृद्धियों पर 5 प्रतिशत आयोडीन टिंक्चर का उपयोग, क्षार गरारों का उपयोग, साथ में आयोडीन की पांच बूंदें एक गिलास पानी में डाल कर देना तथा मुंह से आयोडीन पांच बूंदों की मात्रा में दो या तीन सप्ताह तक देना। बहुधा विक्षतियां अपने आप ठीक हो जाती हैं।

## ग्रसनी के सुदम अर्बुद

सुदम ग्रसनी-अर्बुद, जो वृंतकित पैपिलोमा और तंतु-अर्बुद की तरह स्तंभों या कोमल तालु से बढ़ते हैं, खतरनाक नहीं होते।

उपचार. अर्बुद को शल्यक्रिया के द्वारा हटाते हैं।

**नासाग्रसनी का तंतु-अर्बुद.** नासा ग्रसनी तंतु अर्बुद एक विशेष प्रकार का अर्बुद है जो लगभग सिर्फ पुरुषों में 8 से 13 वर्ष की उम्र के बीच होता है और पूर्ण यौवनारंभ में (20 से 25 वर्ष के बीच) में होता है, जब अर्बुद, अगर वह अभी भी मौजूद है तो सिकुड़ने लगता है।

नासाग्रसनी के तंतु-अर्बुद का आवश्यक तत्व है घने संयोगी ऊतक जिसमें अनगिनत प्रत्यास्थ तंतु तथा रक्त कोशिकाएं होती हैं। अर्बुद, हिस्टोलोजिकस तौर पर सुदम होता है लेकिन इसके नैदानिक पथ के अन्तर्गत बिना

प्रनिरोध की वृद्धि तथा अगल-बगल के ऊतकों का नाश, शस्त्रकर्मोत्तर पुनरावृत्ति तथा बहुधा होने वाले तथा रोगी की जान को खतरे में डालने वाले बार-बार होने वाले रक्तस्राव आते हैं। जल्द ही दुर्दम अर्बुद के तौर पर इसको रखा जा सकता है।

लक्षण. आरंभिक रोग लक्षण है एकतरफा नासा अवरोध जिसके 4 या 6 महीने के बाद पूर्ण नासा-अवरोध हो जाता है तथा साथ ही कम या ज्यादा स्पष्ट कान के उपद्रव हो जाते हैं। विकसित रोग की स्थिति में, जिसमें अर्बुद का तेजी से बढ़ाव होता है; आंखें, कोमल तथा कठोर तालु उभर आते हैं तथा नाक फूल जाती है। रोग के शुरू में ही बार-बार रक्तस्राव होने से रोगी कमजोर पड़ जाता है तथा उसकी अवस्था और भी खराब हो जाती है।

निदान. अर्बुद आसानी से पहचाना जा सकता है। अग्र नासा-दर्शन में एक लाल चिकना अर्बुद नाक के एक तरफ मिलता है तथा प्रोबिंग करने पर तुरन्त रक्तस्राव करने लगता है। ग्रसनी का परीक्षण करते समय कोमल तालु में सूजन में अर्बुद का गुलाबी चिकना किनारा पीछे से झांकता हुआ कई बार देखा जा सकता है। अर्बुद पश्च नासाद्वार के पालिप से ज्यादा घनत्व तथा जुड़ने के विस्तृत क्षेत्र के कारण अलग पहचाना जा सकता है।

उपचार. उपचार शल्य क्रिया के द्वारा होता है। शस्त्रकर्म, अर्बुद के गहरे स्थित होने के कारण आधारी ऊतक से इसके ठीक से अभिलग्न होने तथा अत्यधिक रक्तस्राव के कारण कठिन होता है। नासाग्रसनी में स्थित छोटे अर्बुद नाक या मुंह के रास्ते निकाले जाते हैं।

ध्यान नहीं दिये जाने वाले केसों में जिसमें अर्बुद का जायगोमेटिक क्षेत्र तथा परानासा-विवरों पर प्रकोप हो गया हो, इसे हटाने का काम एक प्रारंभिक शल्यकर्म के बाद ही करते हैं जिससे असली अर्बुद तक पहुंचने का मार्ग बना दिया जाता है। यह मार्ग पार्श्व नासा-भित्ति को पूरी तरह हटा कर हिगमार के कोटर के द्वारा प्राप्त करते हैं। हाल ही में शल्यक्रिया-डायाथर्मी का प्रयोग अर्बुद हटाने के लिए सफलतापूर्वक किया गया है। रेडियाथेरापी, खास कर एक्स-रे भी, कभी-कभी असरदार होता है।

## ग्रसनी के दुर्दम अर्बुद

**नासा ग्रसनी का कैंसर.** यह रोग आम तौर पर 40 वर्ष की उम्र के बाद पाया जाता है, कम उम्र के व्यक्तियों में यह बहुत कम होता है। दुर्दम नासा-ग्रसनी अर्बुद के लक्षणों को अर्बुद की प्रगति तथा उसके साथ होने वाले क्रियात्मक विक्षोभ में ढूंढ़ा जाना चाहिए तथा उनके विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।

स्रोत के प्राथमिक स्थल के अनुसार प्रारंभिक लक्षणों को इन घटनाओं से जोड़ा जा सकता है: (1) यूस्टेशियन नली की बगल में अर्बुद की वृद्धि के कारण कर्णार्ति तथा श्रवण-दोष, जो कि प्रत्येक दस में से 6 केसों में हो जाता है; (2) पश्चनासा द्वार में अर्बुद की वृद्धि के कारण हुआ नासा-अवरोध; (3) तंत्रिकार्ति तथा लकवा। इसमें अर्बुद ऊपर की तरफ बढ़ता है तथा कपाल की प्रमस्तिष्क-तंत्रिकाओं पर दबाव डालता है। ये लक्षण कुछ केसों में अनुपस्थित रह सकते हैं तथा पहला विकारीचिन्ह ग्रीवा तथा सबमैन्डीबूलर क्षेत्र में "लिम्फोडिनाइड शोथ" हो सकता है जो सबसे नजदीक के लसीका पर्वों में विक्षेप के कारण उत्पन्न हो जाता है। ग्रैव लसीका-पर्वों में विक्षेप लसीकाउपकला के अर्बुदों में खास तौर पर शुरू में होता है।

रोगी पहले धीरे-धीरे नाक के एक हिस्से में और फिर दोनों हिस्सों में अवरोध की शिकायत करता है। नाक छिड़कने से रक्तसूत्रों से युक्त स्राव तथा कभी-कभी नासा-रक्तस्राव या पाइकोरस नासा-आस्राव होता है। रोगी को चिकित्सा सहायता लेने में आम तौर पर विलंब हो जाता है। पश्च नासा-दर्शन या अंगुली से पार स्पर्शन के द्वारा नासा-ग्रसनी के परीक्षण से, जो कि ऐसे रोग-स्थितियों पर अत्यंत आवश्यक होती है, एक छोटी या बड़ी मुंडित गुगुदी दिखती है जो जल्द ही विघटित हो जाती है, यह तार पारस्पर्शन से रक्तस्राव करती है तथा अन्ततः चारों ओर ऊतक में मिल जाती है।

शुरू में निदान तथा सही एक्स-रे चिकित्सा से नासाग्रसनी के दुर्दम अर्बुद के उपचार के बारे में पहले के मुकाबले स्थिति सुधरी है, जबकि पहले काफी निराशाजनक स्थिति थी। ठीक होना उद्दीपन चिकित्सा से, प्रभाजी मात्रा में बार-बार रक्ताधान के साथ, सुगमित हो सकता है जबकि ल्यूकोपेनिया से बचाव करने वाली औषधियों, जैसे पेन्टोक्सील, केम्पोलोन

चित्र 82. टांसिल का कैंसर

चित्र 83. टांसिल का सारकोमा

आदि का उपयोग करने से, अच्छी मात्रा में किरणन करने से उन केसों में सहायता मिलती है, जो अबतक असाध्य समझे जाते थे।

**मध्य तथा निम्न ग्रसनी में दुर्दम अर्बुद**. यह दुर्दम अर्बुद घने मुडित अन्तर्संचरण के रूप में होता है जो भोजन के गुजरने से अभिघातज क्षोभ होने पर बड़ी आसानी से व्रणोत्पत्ति करता है तथा कोमल तालु टांसिल (चित्र 82), ग्रसनी के पश्च तथा पार्श्व भित्तियों पर या इसके निचले भाग में, जिसे पायरी फार्म विवर कहते हैं, विकसित हो सकता है। अर्बुद में व्रणोत्पत्ति के शुरू होने पर यह दर्द करने लगता है, आकार में बड़ा हो जाता है तथा खाने के मार्ग में हस्तक्षेप करता है। विक्षेप शुरू में सबसे नजदीक की ग्रीवा में तथा करोटि के आधार पर स्थित लसीका ग्रन्थियों में होता है।

इन अर्बुदों को स्वस्थ ऊतकों से निकालने में बहुधा देर हो जाती है तथा इसका परिणाम प्रतिकूल हो सकता है। वाह्य कैरोटिड धमनी के प्रारंभिक वेधन के बाद एक्स-रे, रेडियम या रेडियो कोबाल्ट चिकित्सा ने आशा की नयी किरण जगायी है। यह उपचार अर्बुद की वृद्धि को कभी-कभी लम्बे समय तक रोक देता है तथा इस तरह जिन्दगी को थोड़ा और लम्बा कर देता है।

टांसिल का लिम्फोसारकोमा (चित्र 83) दूसरे प्रकार के ग्रसनी सारकोमा के मुकाबले ज्यादा होता है। तथा ज्यादातर यह नौजवान लोगों में होता है।

# स्वरयंत्र के रोग

## स्वरयंत्र की संरचना

लैरिंक्स या स्वरयंत्र श्वासनली का एक भाग है, जिसका ऊर्ध्व अन्त ग्रसनी में खुलता है, जिससे वह मुख और नासा गुहा से संचार करता है, जबकि इसका निचला अंत श्वास प्रणाल के ल्यूमेन में जारी रहता है। स्वरयंत्र ग्रीवा के अग्र भाग में चौथे और छठे ग्रीवा-कशेरुका के स्तर पर स्थित होता है। एक चौड़ी स्नायु इसे ऊपर हायोइड अस्थि से जोड़ती है।

स्वरयंत्री कंकाल उपास्थि से निर्मित होता है। ( चित्र 84 और 85 ) मूल उपास्थि क्रिकोइड है जो सिग्नैट वलय के आकार की होती है। इस का संकीर्ण भाग ऊपर की ओर मुखरित रहता है, जबकि चौड़ा, तथा-कथित सिग्नैटी भाग पीछे की ओर। इसके ऊपर थाइरोइड उपास्थि होती है जिसके दो पार्श्व होते हैं जो एक कोण पर जुड़े रहते हैं और उन की संधि पर एक भंगिका रहती है। चूंकि थाइरोइड उपास्थि के इस भाग पर केवल त्वचा रहती है, इसलिये इसे आसानी से अंगुलियों से छुआ जा सकता है और मर्दों में यह ग्रीवा के आगे निकली रहती है और "आदम का सेब" कहलाती है। क्रिकोइड के पश्च भाग की ऊपरी सतह पर दो एरिटिनोइड उपास्थियां होती हैं, जिन के आधार में दो प्रवर्ध होते हैं— पेशीय और स्वरीय। स्वरीय पेशी स्वर-प्रवर्ध से जुड़ी रहती है। इसके अलावा ग्रसनी छिद्र एक विशेष उपास्थि से ढका रहता है। इसे एपिग्लोटिस कहते हैं जो स्नायुओं से थाइरोइड उपास्थि की ऊपरी कोर की भंगिका से जुड़ा रहता है। सभी स्वरयंत्री उपास्थियाँ कई स्नायुओं से और उनकी संधियों से जुड़ी रहती हैं।

वास्तविक स्वर-रज्जु में स्वर और थाइरोएरिटिनोइड पेशियों के जोड़े
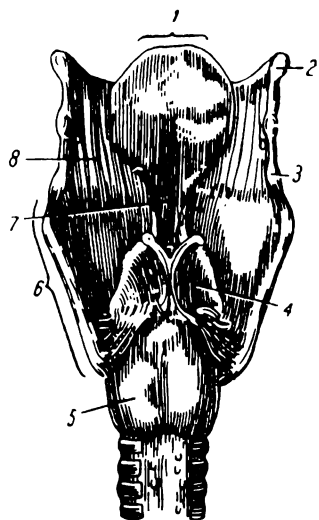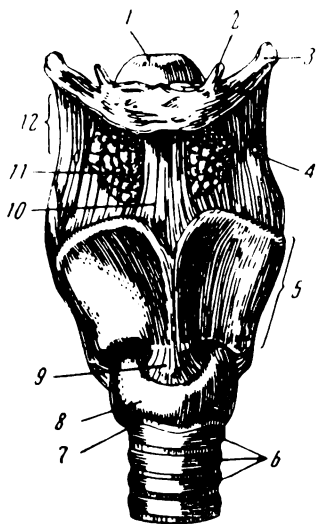
चित्र 84. लैरिंक्स (स्वरयंत्र) के स्नायु और संधियां (अग्र दृश्य)

(1) एपिग्लाटिस; (2) हायोइड अस्थि का लघ श्रृंग; (3) हायोइड अस्थि का वृहत श्रृंग; (4) थाइरोहायोइड कला में ऊर्ध्व स्वरयंत्र तंत्रिका के जाने के लिये छिद्र; (5) थाइरोइड उपास्थि; (6) श्वास प्रणाल उपास्थियां; (7) क्रिकाट्रेकियज स्नायु; (8) क्रिकाइड उपास्थि; (9) प्रत्यास्थ शंकु; (10) मध्य थाइरोहायोइड स्नायु; (11) वसा पिंड; (12) थाइरोहायोइड कला

चित्र 85. स्वरयंत्र के स्नायुओं और संधियों का पृष्ठ दृश्य

(1) एपिग्लोटिस; (2) हायोइड अस्थिका वृहत श्रृंग; (3) थाइरोइड उपास्थिका ऊर्ध्व श्रृंग; (4) एरिटिनाइड उपास्थि; (5) क्रिकाइड उपास्थि; (6) थाइरोइड उपास्थि; (7) एपि-ग्लोटिस का पेटीयोलस; (8) थाइरोहायोइड कला

स्वरयंत्री क्षेत्र में उत्सेधी रहते हैं। स्वर-रज्जु उस ओर के थाइरोइड उपास्थि की आन्तरिक सतह और एरिटिनोइड उपास्थि के स्वर प्रवर्धों के बीच खिंचे रहते हैं। श्वसन में स्वर-रज्जु त्रिकोणी छिद्र बनाते हैं जिस से वायु जाती है; यह कंठरेखा-छिद्र या कंठद्वार कहलाती है (चित्र 86)। ध्वनि उच्चारण में स्वर-रज्जु निकट चले आते हैं।
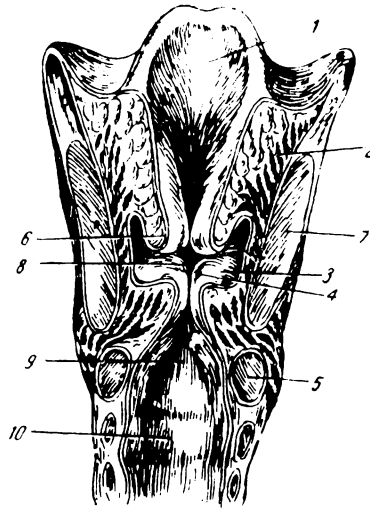
चित्र 86. लम्ब परिच्छेद में स्वरयंत्र

(1) एपिग्लाटिस ; (2) बहिरस्थ थाइरोएरिटिनाइड पेशी ; (3) मोर्गाग्नी निलय ; (4) वास्तविक स्वर रज्जु ; (5) क्रिकाइड उपास्थि ; (6) कृत्रिम स्नायु ; (7) थाइरोइड उपास्थि ; (8) कंठद्वार ; (9) अवकंठद्वार क्षेत्र ; (10) श्वासप्रणाल

वास्तविक स्वर-रज्जुओं के ऊपर मिथ्या स्वर-रज्जु होते हैं जो केवल श्लेष्मा के पुटक हैं। वास्तविक और कृत्रिम रज्जुओं के बीच में, पार्श्वों में, दो रेखा-छिद्र वाली जेबें होती हैं, जो तथाकथित मोर्गाग्नी का विलय कहलाती हैं। इनके श्लेष्मा में अनेक ग्रन्थियाँ होती हैं जो स्वर रज्जुओं को आर्द्र करती रहती हैं।

स्वरयंत्री पेशियाँ. इन को बहिरस्थ और अन्तर्स्थ पेशियों में विभाजित किया जाता है। पहला समूह स्वरयंत्र को कंकाल के दूसरे भागों से जोड़ता है। ये स्वरयंत्र को उठाते और नीचे करते हैं और किसी स्थिति में स्थिर करते हैं।

अन्तर्स्थ पेशियां स्वरयंत्र की बाहरी और भीतरी सतह से जुड़ी रहती हैं और इसकी सीमाओं के आगे नहीं जातीं। ये पेशियां श्वसन और स्वर उच्चारण में लैरिंक्स की क्रियाएं करती हैं। स्वरयंत्र की क्रियाओं के अनुसार
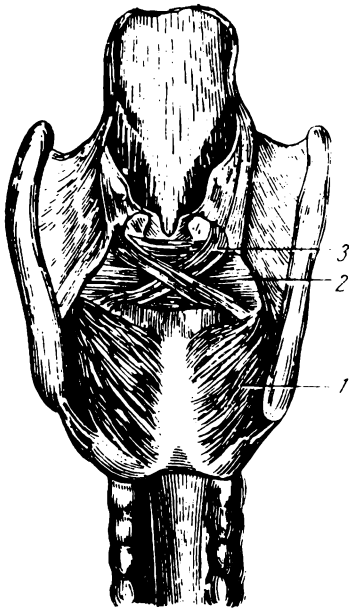
चित्र 87. स्वरयंत्री पेशियां
(1) पश्च क्रिकोएरिटनाइड पेशी; (2) अनुप्रस्थ अंतः एरिटनाइड पेशी; (3) तिर्यक अंतः एरिट-नाइड पेशियां
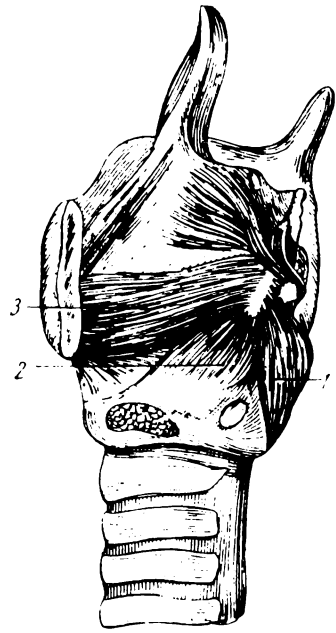
चित्र 88. स्वरयंत्री पेशियां
(1) पश्च क्रिकोएरिटनाइड पेशी; (2) पार्श्व क्रिकोएरिटनाइड पेशी; (3) अन्तःस्थ थाइरोएरिटनाइड पेशी

अन्तस्थ स्वरयंत्री पेशियों को कंठद्वार के संकीर्णकों और विस्फारकों में विभाजित किया जाता है। स्वरयंत्र की मूल श्वसन-क्रिया (यानी श्वसन) एक युग्मित पेशी, पश्च क्रिकोएरिटेनोइड पेशी या पश्च पेशी (चित्र 87) द्वारा की जाती है। यही एक पेशी है जो कंठद्वार को विस्फारित करती है, बाकी सभी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कंठद्वार को बन्द करती हैं (चित्र 88)। पश्च क्रिकोएरिटेनोइड पेशी की विरोधी पार्श्व क्रिकोएरिटेनोइड पेशी है जो स्वर-रज्जुओं को पास लाती है और कंठद्वार को संकीर्ण बनाती है। अत: एरिटेनोइड पेशियां, अनुप्रस्थ और तिर्यक, एरिटेनोइड उपास्थि को समीप लाकर कंठद्वार के पश्च भाग को बन्द करती है। स्वर-रज्जुओं के ऊपर लिखित स्वर या थाइरोएरिटेनोइड पेशी द्वारा तनाव में रखा

चित्र 89. स्वरयंत्री दर्पण और हस्तक

जाता है। अग्र क्रिकोथाइरोइड पेशी स्वर-रज्जु को तनावग्रस्त करती है, क्योंकि यह क्रिकोइड और थाइरोइड उपास्थियों से जुड़ी रहती है और इस के संकुचन से स्वरयंत्र अग्र-पश्च भाग में लम्बा हो जाता है। स्वरयंत्री श्लेष्मा में प्रत्यास्थ तन्तु होते हैं और यह रोमक स्तंभाकार उपकला से ढकी रहती है। वास्तविक स्वर-रज्जुओं, एरिटेनो-एपिग्लोटिक स्नायुओं, एरिटेनोइड उपास्थि की स्वरयंत्री सतह और अन्तःएरिटेनोइड क्षेत्र स्तरित शल्की उपकला से ढके रहते हैं।

स्वरयंत्र में तन्त्रिकाप्रेरण वेगस तंत्रिका की दो शाखाओं, यानी ऊर्ध्व और निम्न स्वरयंत्रतंत्रिकाओं द्वारा होता है। पहली मुख्यतः संवेदी तंत्रिका है जो पूरी स्वरयंत्री श्लेष्मा से संवेदन ग्रहण करती है। इस तंत्रिका की एक मोटर शाखा भी है जो अग्र क्रिकोएरिटेनोइड पेशी तक जाती है। बाकी सभी स्वरयंत्री पेशियों का तंत्रिका संभरण निम्न स्वरयंत्री तंत्रिका की शाखाओं द्वारा होता है।

स्वरयंत्र वायु-मार्ग ही का अंग नहीं है बल्कि यह ध्वनि-उच्चारण का भी अंग है। स्वर तनावग्रस्त स्वर-रज्जुओं के कंपन से पैदा होता है जो कि निश्वसन में वायु के कंठद्वार में संकीर्ण छिद्र में से गुज़रने से तनावग्रस्त होते हैं।

## स्वरयंत्र के परीक्षण की विधियां

स्वरयंत्र का परीक्षण सीधे दृष्टि-निरीक्षण या दर्पण लैरिजोस्कोपी के जरिये, जिस में स्वरयंत्री दर्पण दूसरे स्वरयंत्री उपकरण के हस्तक से जुड़ा रहता है, किया जाता है। (चित्र 89)

स्वरयंत्री परीक्षण में रोगी को थोड़ा आगे झुकने को कहा जाता है और उसकी जिह्वा को चौकोर गाज के सहारे बाकी परीक्षण में स्थिर रखा जाता है। दर्पण को, शीशे को नीचे की ओर कर के एल्कोहल लैम्प की ज्वाला या गर्म पानी से थोड़ा गर्माया जाता है ताकि इसे रोगी के मुँह में डालने पर उस की सांस से तुषारित नहीं हो।

स्वरयंत्री दर्पण को मुँह में शीशे को नीचे की ओर कर के क्षैतिज से 45 डिग्री पर रखा जाता है, इसकी पिछली सतह युवुला और कोमल तालु को पीछे और ऊपर की ओर करती है। यह सावधानी बरतनी चाहिये कि यह पश्च ग्रसनी-भित्ति को न छुए, नहीं तो उसका मुखरोध प्रतिवर्त हो सकता है। इस के साथ रोगी को धीरे-धीरे सांस लेने और "ई-ई-ई-ई-ई" बोलने को कहा जाता है। इस से एपिग्लोटिस ऊपर उठता है और यह दृश्य दर्पण में प्रतिवर्तित होता है (रंगीन तालिका IV चित्र 1)। जो सब से पहला अंग दिखाई देता है वह है एपिग्लोटिस और दर्पण की दिशा बदल कर सभी भागों का पूर्ण परीक्षण किया जा सकता है, इसके बाद स्वररज्जुओं और अन्तःएरिटेनोइड क्षेत्र का भी उसी तरह परीक्षण किया जाता है। स्वरयंत्र का परीक्षण तभी सफल माना जा सकता है जब सभी भागों का निरीक्षण कर लिया जाये और स्वररज्जु की शांत श्वसन और स्वर उच्चार में गतिशीलता को आंक लिया जाये (चित्र 90)। यह याद रखना आवश्यक है कि दर्पण लैरिन्जोस्कोपी में स्वरयंत्र के अग्र भाग ऊपर और पश्च भाग नीचे दिखाई देंगे। पार्श्व भाग दर्पण में परावर्तित हो कर अपना स्थान नहीं बदलते (चित्र 91 a, b)।

स्वरयंत्र को सीधी लैरिन्जोस्कोपी से भी जांचा जा सकता है, जिसमें बिना दर्पण के निरीक्षण किया जाता है। एक कोणीय स्पैचुला को जीभ के पीछे दबाया जाता है, ताकि वह आगे आ जाये। रोगी के सिर को धीरे-धीरे पीछे की ओर मोड़ा जाता है ताकि मुंह-गुहा, ग्रसनी और स्वरयंत्र एक लाइन में आ जायें। इस स्थिति में एपिग्लोटिस, एरिटेनोइड उपास्थि और स्वरयंत्र को एक-एक करके उचित प्रकाश की सहायता से जांचा जा सकता है। आधुनिक अभ्यास में कोणीय स्पैचुला के बजाए ज्यादा सुविधाजनक उपकरण लैरिन्जोस्कोप काम में लाया जाता है। स्वरयंत्री दर्पणों को उल्टी तरफ "K" लिखकर उबलते पानी में रखा जा सकता है। जो दर्पण उबलना नहीं सह सकते हैं उन्हें पूतिरोधी लायसोल और
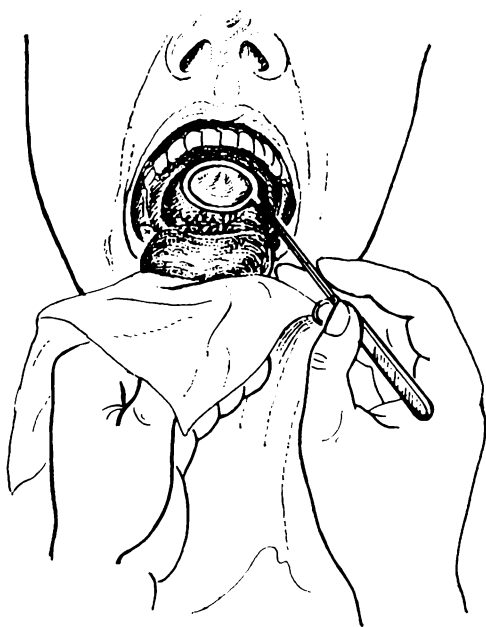
चित्र 90. दर्पण लैरिंन्जोस्कोपी
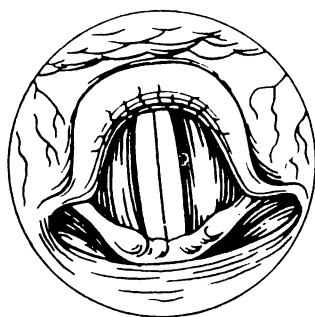
चित्र 91. स्वरयंत्र का दर्पण दृश्य
(a) स्वरउच्चार में ; (b) श्वसन में

कारबोलिक अम्ल विलयन में डालकर विसंक्रामित किया जाता है और चौकोर जाली से सुखाया जाता है।

## स्वरयंत्र रोगों के उपचार की सामान्य विधियां

स्वरयंत्र को भूजी स्वरयंत्री प्रोबों की सहायता से पेंट किया जाता है या फिर उसका स्नेहन किया जाता है जो कोमल धातु के बने होते हैं। इस से प्रोब को उचित रूप से मोड़ा जा सकता है। रूई को प्रोब के चारों ओर अच्छी तरह लपेटा जाता है ताकि स्नेहन में इसका फिसलना और उस से होने वाले हानिकारक परिणाम रोके जा सकें।

स्वरयंत्र में सभी हस्तोपचारों को, जिनमें स्नेहन भी शामिल है, दृष्टि-नियंत्रण में स्वरयंत्री दर्पण की सहायता से किया जाता है। जैसे ही दर्पण में रूई-युक्त स्वरयंत्री प्रोब दिखाई देता है, वैसे ही उसे जल्दी से एपिग्लोटिस के पीछे स्वरयंत्र में घुसाया जाता है। प्रोब और स्वर-रज्जु में संपर्क से खांसी होती है और कुछ मामलों में स्वरयंत्री आकर्ष भी हो जाता है। इसलिये, स्नेहन से पूर्व रोगी को इस आकर्ष और उसके हानिरहित गुण के बारे में बता देना ज़रूरी होता है। इस आकर्ष को जल्दी से रोकने के लिये, रोगी को अपनी श्वास को कुछ सेकेंडों के लिये रोकने को और फिर मुँह खोलकर लम्बी सांस लेने को कहा जाता है।

एक धातु-सिरे वाली स्वरयंत्री सिरिंज (चित्र 92) औषधि विलयनों में डालने और संवेदनाहरण के लिये काम में लायी जाती है। सिरे को प्रत्येक बार काम में लाने से पहले उबाला जा सकता है।

औषधि की एक छोटी सी मात्रा सिरिंज में डालकर स्वरयंत्र में 0.5-1 ग्राम
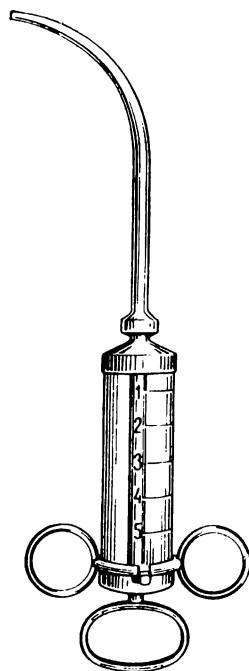
चित्र 92. स्वरयंत्री सिरिंज
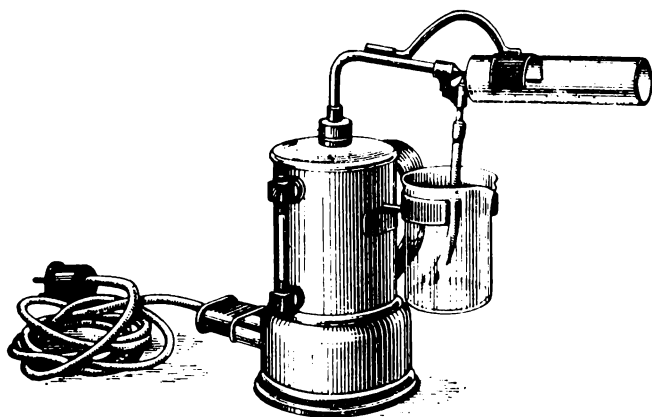
चित्र 93. विद्युत-वेपोराइजर ( अभिश्वसक )

की मात्रा में बिन्दुकित की जाती है। यह स्वरयंत्री स्नेहन से ज्यादा नाजुक प्रक्रिया है और इससे आकर्ष बहुत कम होता है।

लैरिंक्स में पाउडर का प्रधमन नाक में काम में लाये जाने वाले प्रधमक जैसे ही किया जाता है, पर इसकी चोंच मुड़ी हुई होती है, ताकि यह बाकी सभी स्वरयंत्री उपकरणों में फिट कर जाये। प्रधमक में पाउडर डाला जाता है। बाकी सभी हस्तोपचारों की तरह प्रधमन थोड़ा-सा को भी दृष्टि-नियंत्रण में किया जाता है। बल्ब के सम्पीडन से प्रधमक की नोक विस्थापित हो सकती है और पाउडर ग्रसनी में जा सकता है। लैरिन्जोस्कोपी में अनुभव से हासिल हुनर के साथ पाउडर हमेशा सही दिशा में जाता है। पाउडर को ज्यादा मात्रा में स्वरयंत्र में नहीं डालना चाहिये क्योंकि इससे स्वरयंत्र-आकर्ष हो जाता है।

स्वरयंत्री रोगों का उपचार ठंडे और वाष्प एटोमाइजरों से पुल्वराइज्ड औषधियों के अभिश्वसन द्वारा किया जाता है।

एक विशेष उपकरण को, जो अभिश्वसक कहलाता है ( चित्र 93 ), वाष्प अभिश्वसन के लिये काम में लाया जाता है। इसके निम्नलिखित भाग होते हैं: (1) जल-बायलर जो एल्कोहल या विद्युत ऊर्जा से गर्म किया जाता है, (2) धातु-नली जो समकोण पर मुड़ी रहती है और जल-बायलर से जुड़ी रहती है और (3) एक दूसरी नली जिसका एक
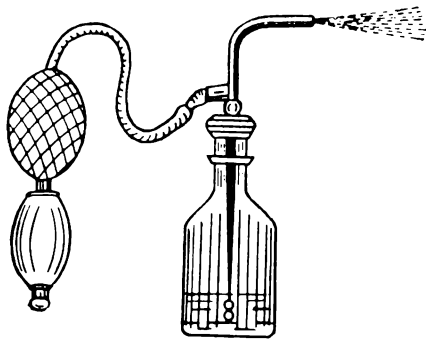
चित्र 94. एटोमाइजर

अन्त गिलास में रखी तरल औषधि में होता है और दूसरा संकीर्ण अन्त पहले नली के क्षैतिज भाग के पास रहता है। बायलर में बनी भाप पहली नली में जाती है, फिर दूसरी नली में गिलास से भाप खिंचती है और अन्त में रोगी की ओर की चौड़ी गिलास-नली से निकलती है। रोगी बारिक परिक्षेपित औषधि-पदार्थ का जो गर्म भाप में छोटी बून्दों की तरह पाया जाता है, अभिश्वसन करता है।

स्वरयंत्र, साथ ही नासा-ग्रसनी और ग्रसनी के औषधि-स्प्रे उचित एटोमाइजरों द्वारा किये जा सकते हैं। एटोमाइजर (चित्र 94) में प्लग हुई बोतल होती है जिस में पतली धातु-नली होती है जिसका निचला अन्त नीचे जाता है, और ऊपरी अन्त मुड़ा होता है और इसमें छलनीदार प्लेट लगी रहती है। पहली नली समकोण पर दूसरी नली से जुड़ी रहती है जो कि दो रबड़-बल्बों से लगी होती है। पहले बल्ब में हवा घुसने के लिये एक छेद और उसे निकलने से रोकने के लिये एक कपाट होता है; इसे दबाने पर हवा दूसरे बल्ब में आती है, जो संकोचन के कारण नली के बाहरी सिरे पर अनवरत वायु-प्रवाह बनाता रहता है। यह धारा बोतल से तरल को खींच कर आगे पतली फुहार (स्प्रे) के रूप में फेंकती हो। रोगी को स्प्रे-नली के ऊपरी अन्त को मुंह में रखने पर ज्यादा दूर न ले जाने को कहा जाता है ताकि गैगिंग न हो। बोतल को बायें हाथ में रखकर रबड़ बल्ब को दायें हाथ से 20-25 बार संपीडन किया जाता है। गर्म विलयनों और देह के तापक्रम पर स्थित विलयनों का स्प्रे किया जाता है। कुछ केसों में तेलीय विलयन का स्प्रे किया जाता है, ताकि श्लेष्मा-

कला जल्दी शुष्क न हो जाये। उसमें विशेष प्रकार के स्प्रेयरों का प्रयोग किया जाता है। शारीरिक संरचना को ध्यान में रखते हुए, सभी उपकरणों को सावधानी से स्वरयंत्र के उसके आकार के अनुसार मोड़ कर निवेशित किया जाता है। प्रत्येक निवेशन से पूर्व उपकरण की अच्छी तरह जांच कर ली जाती है और यह देख लिया जाता है ताकि उसके किसी भाग के आकस्मिक ढंग से श्वासप्रणाल और श्वसनी में चले जाने का खतरा न रहे।

## स्वरयंत्री रोगों के सामान्य लक्षण

स्वरयंत्री रोगों का सबसे खतरनाक लक्षण है श्वसनविक्षोभ, जो कंठद्वार की संकीर्णता के कारण होता है और शोफ, डिप्थीरिया, यक्ष्मा, आगंतुकशल्यों, अर्बुदों, विस्फाकरण पेशियों के दोनों ओर के घात और दूसरे रोगों में देखा जाता है। श्वसन-अवरोध हल्का और लक्षणरहित हो सकता है या गहरा होकर, लघु श्वसन, श्यावता और हृदय विकार पैदा कर सकता है।

स्वरयंत्री रोग का सबसे आम लक्षण है परिवर्तित स्वर। यह कम या ज्यादा रूक्ष हो सकता है या पूर्ण अस्वरता हो जा सकती है। ऐसे लक्षण उन स्वरयंत्री रोगों में पाये जाते हैं जो स्वर रज्जुओं की गतिशीलता और उनके संरूपण को बाधित करते हैं।

स्वरयंत्र के अन्दर या उसकी बाहरी सतह पर वेदना महसूस हो सकती है। अन्तःस्वरयंत्री वेदना, जो कई बार कर्ण तक विसरण करती है, फ्लैग्मोनों और व्रणोत्पत्ति प्रक्रियाओं, पर्युपास्थिशोथ और तीव्र आगंतुक शल्यों के कारण होती है। सब से प्रबल वेदना ऐरिटेनोइड उपास्थियों और ऐपिग्लोटिस की वाह्य सतह पर व्रणोत्पत्ति से होती है। तीव्र स्वरयंत्री शोथ में गले में खरोंच की, गुदगुदाने और जलन की अनुभूति होती है, जिससे खांसी हो सकती है।

स्वरयंत्री खांसी आर्द्र या शुष्क होती है। अधिकतर यह तीव्र शोथ या शुष्क चिरकारी केटार के प्रारंभ में देखी जाती है। उपकंठद्वार-क्षेत्र और श्वास-प्रणाल के शोथ और सूजन के साथ शुष्क, कर्कश खांसी देखी जाती है।

## तीव्र स्वरयंत्री शोथ

तीव्र स्वरयंत्री शोथ सब से अधिक ऊर्ध्व श्वसन-नली के तीव्र केटार में देखा जाता है। इस रोग के साथ देह में आंशिक या पूर्ण कंपकंपी होती है। यह तीक्ष्ण वाष्प, काफी गंदी हवा के अभिश्वसन, साथ ही स्वर-रज्जुओं की अतिव्यस्तता, जैसी कि लम्बे समय तक जोर से बात करने से हो सकती है, के कारण भी हो सकता है। स्वरयंत्री शोथ विकट संक्रामक रोगों, जैसे मीजिल्स, स्कारलेट ज्वर और टाइफाइड के कारण भी हो सकता है।

लक्षण और मार्ग. लैरिंजोस्कोपी से स्वरयंत्र श्लेष्मा की विसरित अति-रक्तता देखी जाती है, कम या ज्यादा फूले और रक्ताधिक्यपूर्ण वास्तविक स्वर-रज्जु और घने आस्राव के स्कन्द दिखते हैं। कई बार ध्वनि उपचार में स्वर-पेशियों के आंशिक घात के कारण स्वर-रज्जु पास नहीं आ पाते। स्वरयंत्री विक्षति के अनुसार स्वररूक्षता आ जाती है और खांसी के कारण स्वर खुरदरा हो जाता है। खांसी पहले तो शुष्क रहती है, बाद में गले में शुष्कता और जलन महसूस होती है। किंचित खँखार की मात्रा जिसका कफोत्सारण कठिन होता है, धीरे-धीरे बढ़ती है। तब इसका कफोत्सारण आसानी से हो सकता है और रोगी की सामान्य अवस्था में सुधार होता है।

बीमार होने की भावना के साथ सिरदर्द और हल्का ज्वर भी रहते हैं। यह रोग सामान्यत: सात से दस दिनों तक रहता है और अगर उचित उपचार किया जाये तो शीघ्र ही समाप्त हो जाता है।

उपचार. इसका मूल उपाय है उन सभी हानिकारक कारकों को हटाना जो इस रोग को पैदा करते हैं। रोगी को स्वरयंत्र को पूरा आराम देने के लिये कम से कम बोलना चाहिये ; यह प्रतिबंध पांच से दस दिनों तक रोग की गहराई को देखते हुए रखना चाहिये। रोगी को पहले पेनिसिलिन एरोसोली अभिश्वसन और बाद में क्षारीय अभिश्वसनों को दिन में कुछ बार लेने और ग्रीवा पर गर्म संपीड लगाने की सलाह दी जाती है।

निम्नलिखित नुस्खों को काम में लाया जा सकता है:

Rp. Cocaini hydrochlorici 0.1
Aq. Amygdalarum amararum 4.0
Glycerini puri 6.0

Aq. Menthae 50.0

Aq. destill. 150.0

निर्देश : भाप-अभिश्वसन के लिये।

यदि वेपोराइजर उपलब्ध न हो तो अभिश्वसन के लिये निम्नलिखित नुस्खे का प्रयोग करना चाहिए :

Rp. Mentholi crystallisati 1.0

Spiritus vini rectificati 10.0

निर्देश : दस से बीस बून्दों को एक गिलास उबलते पानी में डालकर भाप-अभिश्वसन करना।

ज्वररोधी और स्वापक औषधियां जैसे कोडीन पाउडर, ज्वर और खांसी के लिये दी जाती हैं तथा कफोत्सारण को बढ़ावा देने वाले मिक्सचर दिये जाते हैं।

कोडीन और डायोनिन को बून्दों या विलयनों के रूप में ब्रोमीन औषधियों के साथ काम में लाया जाता है।

Rp. Codeini puri 0.15

Aq. Amygdalarum amararum 15.0

निर्देश : दस या पन्द्रह बून्दें प्रति दिन दो या तीन बार।

Rp. Dionini 0.3

Aq. Laurocerasi 15.0

निर्देश : पन्द्रह से बीस बून्द प्रति दिन तीन बार।

Rp. Ammonii bromati 4.0-8.0

Codeini puri 0.15

Sirupi simplicis 8.0

Aq. destill 180.0

निर्देश : एक बड़ा चम्मच तीन से चार बार प्रति दिन।

यदि श्लेष्मा में गहरी शुष्कता हो और सूखी पपड़ियां बनें तो स्वरयंत्र में तेलीय विलयन का प्रयोग करना चाहिए जैसे :

Rp. Chloretoni 0.5

Mentholi crystallisati 1.0

Ol. olivari 50.0

निर्देश: स्वरयंत्री आधान के लिये।

कमरे का बारंबार संवातन और स्वच्छ ताजी हवा शीघ्र सुधार में सहायता करते हैं।

रोग-निरोध. देखें ऊर्ध्व श्वसन-नली के रोगों की रोकथाम संबंधी अध्याय (पृ० 150)।

## चिरकारी स्वरयंत्र-शोथ

चिरकारी स्वरयंत्र शोथ बारंबार तीव्र शोथों के परिणामस्वरूप होता है। इस के अलावा, चिरकारी स्वरयंत्री शोथ न हटाये जाने वाले कारकों से हो सकता है जो तीव्र स्वरयंत्री केटार (प्रतिश्याय) का कारण होते हैं, जैसा कि आदतन शराबियों और लगातार धूम्रपान करने वालों में देखा जाता है। व्यवसायिक स्वरयंत्री केटार कई बार गायकों, अध्यापकों और ऐसे लोगों में पाया जाता है जो धूल के वातावरण में काम करते हैं या रसायनिक पदार्थों से अनावरित रहते हैं। लम्बे काल तक चल रहे ऊपरी वायुमार्ग में शोथों, जैसे चिरकारी नासा प्रतिश्याय, परानासा विवर सपूयता, टांसिलशोथ, ग्रसनी-शोथ, आदि से साथ ही श्वसन नली के निचले भागों के शोथों, जैसे श्वासप्रणाल-शोथ, सपूय श्वसनी-शोथ, से स्वरयंत्र का चिरकारी शोथ पैदा हो जा सकता है।

रोग-लक्षण. ये तीव्र स्वरयंत्र-शोथ के समान, पर उससे हल्के होते हैं; कभी-कभी रोगी क्षेत्र में प्रकोपन होता है और स्थिति गंभीर हो जाती है।

चित्र 95. स्वर रज्जु पर पर्विकाएं

रोगी स्वररूक्षता की शिकायत करता है, जो कभी-कभी बढ़ जाती है, शीघ्र स्वर-थकान हो जाती है, कण्ठ में गुदगुदाने और खरोंच की अनुभूति होती है तथा खांसी लगातार रहती है।

स्वरयंत्री दपर्ण दिखाता है कि स्वरयंत्री श्लेष्मा धूसरलाल रंग की है और वह कुछ स्थानों पर सूजी रहती है, खासकर यह वास्तविक स्वर रज्जुओं और अन्त:एरिटेनोइड क्षेत्र में देखा जाता है। मिथ्या स्वर-रज्जु शोफयुक्त और सूजे हुए होते हैं तथा वास्तविक स्वर-रज्जुओं पर भी आंशिक रूप से आते हैं और ध्वनि-उच्चारण में बाधक होते हैं। शल्कित उपकला में छोटे धब्बे, जिन्हें पैकीडेर्मीया लैरिंजिस नाम से जाना जाता है, सब से ज्यादा पट्टकी उपकला क्षेत्र में, यानी वास्तविक स्वर-रज्जुओं और अन्त:एरिटेनोइड क्षेत्र में, देखे जाते हैं। श्लेष्मा में छोटी शोफ स्थूलताएं, जो गायक पर्विकाएं (चित्र 95) कहलाती हैं, कई बार स्वर-रज्जुओं पर आमने-सामने पायी जाती हैं। ये ध्वनि-उच्चारण को बाधित करती हैं और स्वररूक्षता पैदा कर देती हैं। श्लेष्मा-कला के शोष से पपड़ी बनती है, जिससे कष्टदायक खाँसी होती है। स्वरयंत्री शोथ के शोषकर रूप का ग्रसनी और नाक में शोषकर केटार के साथ उपचार किया जाता है।

उपचार. धूम्रपान, तेज पेयों और स्वर पर अधिक जोर देने पर रोक लगाने के जरिये केटार को चिरकारी बनाने वाले सभी प्रवर्तनपूर्व और आधारभूत कारणों को दूर करना जरूरी होता है। नाक और नासाग्रसनी का उपचार साथ-साथ करना चाहिये क्योंकि मुँह से श्वसन स्वरयंत्र के लिये हानिकारक होता है। स्वरयंत्री श्लेष्मा को हर दूसरे दिन 1 प्रतिशत, 2 प्रतिशत या 3 प्रतिशत सिल्वर नाइट्रेट या 1 प्रतिशत टेनिन विलयनों से पेंट किया जाता है, जिन्हें निम्नलिखित फार्मूले से बनाया जाता है:

Rp. Sol. Argenti nitrici 1-2-3% 10.0

निर्देश: स्वरयंत्री पेंटिंग के लिये।

Rp. Tannini 1.0

Glycerini 10.0

निर्देश: स्वरयंत्री पेंटिंग के लिये।

क्षारीय बैकिंग सोडा और नैट्रीयम बेन्जोइकम विलयनों के वाष्पों का, और साथ ही शोष और पपड़ीकरण के लिये आयोडिन और ग्लीसेरोल का प्रयोग किया जाता है।

स्वरयंत्र को ग्रायोडिन-ग्लीसेरोल से पेंट करने के ग्रलावा, जलीय ग्रायोडिन-ग्लीसेरोल विलयन से ग्राधान भी लाभदायक होता है, हालांकि इनका ग्रसर हल्का होता है। इस विलयन का फार्मूला निम्नलिखित है:

Rp. Jodi puri 0.15
Kalii jodati 1.0
Aq. destill.
Aq. Menthae a 100.0
Glycerini 10.0

निर्देश: स्वरयंत्री ग्राधान के लिये।

ग्रभिश्वसन ऊपर बताये गये उपकरणों द्वारा दिन में कुछ बार दिये जाते हैं। यदि ये उपलब्ध न हों तो दो या तीन गिलास भर उबलते पानी को बेसिन में डाला जाना चाहिए ग्रौर भाप को पेपर नली के द्वारा दो या तीन मिनट के लिये प्रतिदिन कुछ बार देना चाहिये। पेनिसिलिन चिरकारी स्वरयंत्र-शोथ के प्रकोपन के खिलाफ ग्रसरदार उपाय होता है।

रोग-निरोध. इस रोग को रोकने के लिये स्वरयंत्र का गर्म कमरे से निकलने पर ठंडे से ग्राकस्मिक ग्रनावरण रोकना चाहिए, गर्म स्नान के बाद तुषार में गाना नहीं गाना चाहिए, जोर से बात नहीं करनी चाहिए ग्रौर शुष्क ग्रौर धूल के वातावरण में स्वर पर खासकर नासा-श्वसन के ग्रभाव में लगातार जोर नहीं डालना चाहिए।

## स्वरयंत्री पर्युपास्थिय शोथ

स्वरयंत्री उपास्थियों में पर्युपास्थिय शोथ प्राथमिक तौर पर घात के पश्चात या द्वितीयक तौर पर तीव्र संक्रामक रोगों (टाइफाइड ग्रौर बच्चों के संक्रमणों) तथा चिरकारी शोथों (यक्ष्मा ग्रौर सिफिलिस) ग्रौर दुर्दम नयी वृद्धियों के बाद देखे जाते हैं।

रोग-लक्षण. तीव्र रूप में निगरण ग्रौर बोलने में वेदना तथा हल्का ज्वर रहते हैं। लैरिन्जोस्कोपी में शोथी क्षेत्रों में काफी शोफ रहता है जो श्लेष्मा के ग्रगल-बगल के क्षत्रों पर ग्राक्रमण करता है ग्रौर स्वरयंत्र में गहरा निकोचन पैदा करता है। शीघ्र विकसित होने वाला शोफ श्वसन-ग्रवरोध की उपस्थिति में श्वासावरोध पैदा कर सकता है तब शल्यक्रिया यानी श्वास-प्रणाल छेदन, जरूरी हो जाता है। दूसरे केसों में विद्रधियां

ग्रौर उपास्थि का पूर्ण या ग्रांशिक परिगलन ग्रौर नालव्रण हो जा सकते हैं। शोथ के बढ़ने के साथ क्षतांक हो जाता है, जिससे चिरकारी स्वरयंत्री संकीर्णता ग्रौर श्वासप्रणालछेदन-नली जाम हो जाती है।

उपचार. तीव्र केसों में शोथ के लक्षणों को बिस्तर में ग्राराम करा कर ग्रौर बर्फ चूसने को देकर ग्रौर ग्रीवा पर ठंडा संपीड लगाकर दूर किया जाता है। यदि श्वासा-ग्रवरोध के लक्षण हों तो श्वासप्रणाल का छेदन ग्रावश्यक हो जाता है। लैरिंक्स (स्वरयंत्र) की चिरकारी व्रण्य संकीर्णता में नलिका-ग्रवकाश को शल्यक्रिया द्वारा स्थापित किया जाता है।

## स्वरयंत्र के सुदम ग्रर्बुद

स्वरयंत्र के सुदम ग्रर्बुद ग्रधिकतर फाइब्रोमा ग्रौर पैपीलोमा के रूप में ग्रौर कभी-कभी एंजियोमा ग्रौर सिस्टों के रूप में होते हैं।

फाइब्रोमा (चित्र 96) एक छोटा ग्रर्बुद होता है, जिसका ग्राकार पिन-शीर्ष से मटर के दाने के बराबर तक रहता है। यह ग्राम तौर पर स्वर-रज्जुग्रों के ग्रग्र ग्रौर मध्य तिहाई भागों से विकसित होता है। यह हल्के गुलाबी या गुलाबी रंग का समतल समूह होता है जो एक वृंत या चौड़े ग्राधार से जुड़ा रहता है। यह ग्रधिकतर श्लेष्मा के चिरकारी क्षोभ से होता है।

पैपीलोमा (रंगीन तालिका IV) चित्र 2,. यह बहुमात्रा में होने वाला, सलेटीलाल रंग का ग्रर्बुद होता है जो मस्से या गुच्छेदार वृद्धि के तौर पर, गोभी के फूल या मुर्गे की कलगी से मिलते-जुलते रूप में प्रकट होता है। यह वास्तविक स्वररज्जु से या कंठद्वार या एपिग्लोटिस के किसी भी स्थान से पैदा हो सकते हैं।

चित्र 96. स्वरयंत्री फाइब्रोमा
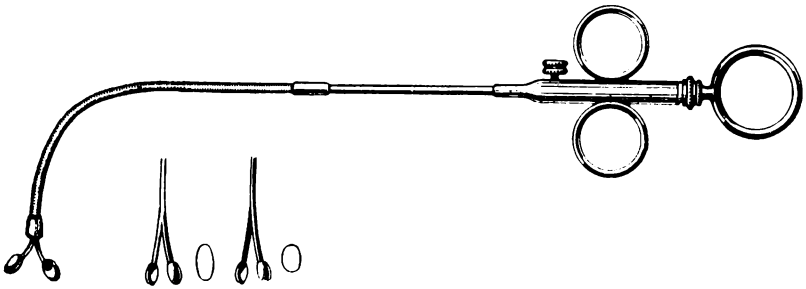
चित्र 97. स्वरयंत्री फारसेप्स

अधिकतर मामलों में यह रोग 2-8-10 वर्षों के बच्चों में प्रारंभ होता है और तेजी से विकसित होकर कुछ ही समय में पूरे कंठद्वार को भर लेता है।

ऐन्जियोमा. यह छोटा कोमल अर्बुद है जिसकी सतह खुरदरी होती है और रंग प्ररूपी बैंगनी।

स्वरयंत्र में छोटे सिस्टोस अर्बुद श्लेष्मा ग्रन्थियों के बाहरी छिद्रों के बन्द होने से होते हैं और ये नासा-श्लेष्मा के पालिपों के समान लगते हैं।

लक्षण. सुदम अर्बुद का सब से आम लक्षण है स्वररूक्षता। अस्वरता बाद में धीरे-धीरे होती है न कि आकस्मिक तौर पर और यदि अर्बुद कंठद्वार के ऊपर या नीचे हो तो स्वर रज्जु के बीच में दबने पर स्वरहानि होती है। पैपीलोमेटस अर्बुदों में, खासकर बच्चों में, पूर्ण अस्वरता और श्वसन अवरोध होते हैं जिस से श्वासप्रणाल-छेदन आवश्यक हो जाता है।

उपचार. संरक्षी उपचार अधिक असरदार नहीं होता। इसलिये शल्यक्रिया सुदम स्वरयंत्री अर्बुदों का मुख्य उपचार है, जिन्हें स्वरयंत्री फारसेप्स द्वारा हटाया जाता है। यह एन्डोलैरिन्जियल शल्यक्रिया कहलाती है (चित्र 97 और 98)। बच्चों में पैपीलोमेटस नई वृद्धियों को एन्डोलैरिन्जियल तरीके से हटाया जाता है, जबकि उपद्रवी केसों में स्वरयंत्र के वाह्य छेदन की जरूरत पड़ सकती है, जिसे स्वरयंत्र विदर कहते हैं। अर्बुद के उच्छेदन के बाद उसको दुबारा न होने देने के लिये एक्सरे चिकित्सा दी जाती है।

# स्वरयंत्र के दुर्दम अर्बुद

**स्वरयंत्र कैंसर.** यह अवस्था खासकर धूम्रपान करने वालों में 40 वर्षों की आयु के बाद देखी जाती है, हालांकि यह युवा लोगों में भी हो सकती है। स्वरयंत्री कैंसर के प्रारंभिक लक्षणों में हैं – रक्ताधिक्यता और एक स्वर-रज्जु में अन्तःसंचरण, साथ ही स्वर-रज्जुओं का सीमित और एकतरफा स्थिरीकरण और तनिक स्वररूक्षता, जो संवेदी उपचार से ठीक नहीं होती।

अर्बुद वृद्धि धीरे-धीरे होती है। पहले बहुत कम रक्ताधिक्य और अन्तः-संचरण अप्रकट तौर पर अगल-बगल के ऊतकों पर आक्रमण करता है। यह अवस्था महीनों तक रह सकती है।

रोग की ज्यादा विकसित स्थितियों में चिरकारी स्वरयंत्री-शोथ के अलावा एक अर्बुद प्रकट होता है जो गतिहीन घने अन्तःसंचरण की तरह स्वरयंत्र के एक अर्ध भाग पर पाया जाता है (रंगीन तालिका IV, चित्र 3)। इस अवस्था में स्वररूक्षता और बढ़ जाती है और पूर्ण अस्वरता हो सकती है।

अर्बुद के कुछ भागों में व्रणोत्पत्ति हो सकती है और सड़ने वाले ऊतक दुर्गन्ध पैदा करते हैं, कर्कश खांसी होती है और निगरण में वेदना होती है जो एरिटेनोइड उपास्थियों, एरिएपिग्लोटिक पुटकों और एपिग्लोटिस में व्रणोत्पत्ति में शीघ्र देखे जाते हैं। निकटम लसीका पर्व फूले और त्वचा से सटे रहते हैं। रोगी की द्वितीयक न्यूमोनिया से, या अर्बुद की वृद्धि या सड़न से हुए श्वासावरोध और रक्तस्राव से मृत्यु होती है।
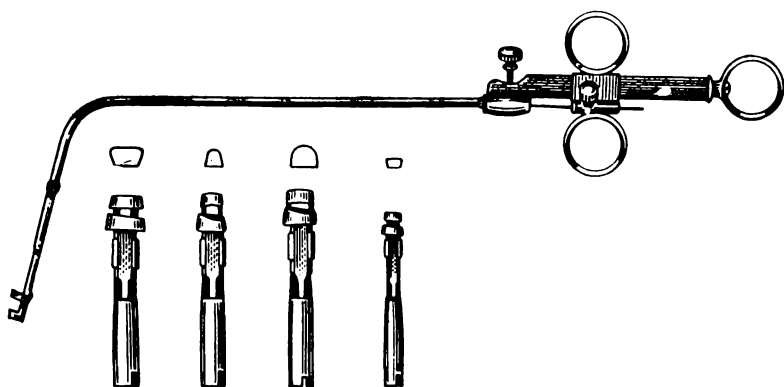
चित्र 98. मुड़े स्वरयंत्री फारसेप्स बदलने वाले अंतटुकड़ों के साथ

निदान. कई बार स्वरयंत्री कैंसर को, खासकर प्रारंभिक अवस्थाओं में, पहचानना बहुत कठिन होता है। संदेहजनक केसों में निदान को बायोप्सी से साबित किया जा सकता है। रोगी की प्रारंभिक अवस्था में शल्यक्रिया और रेडियमथैरेपी से जान बचायी जा सकती है।

प्राज्ञान. स्वरयंत्री कैंसर संबंधी पूर्वकथन करना कठिन होता है, खासकर यदि निदान देर से होता है और यदि परिस्वरयंत्री लसीका-पर्व इस प्रक्रिया में सम्मिलित हों। प्रारंभिक अवस्था में प्राज्ञान ज्यादा अनुकूल होता है।

उपचार. इसके लिये एक ही आशा है कि जल्द से जल्द शल्यक्रिया या एक्स-रे और स्वरयंत्र की रेडियमथैरेपी की जाये। एक आम शल्य क्रिया है स्वरयंत्र के एक भाग को या पूरे स्वरयंत्र को निकाल देना। ज्यादा सीमित उच्छेदन रोग की प्रारंभिक अवस्था में ही लाभदायक हो सकता है।

**स्वरयंत्र का सार्कोमा.** यह रोग काफी कम देखा जाता है। वाह्य तौर पर यह स्वरयंत्री फाइब्रोमा और कभी-कभी एन्जियोमा से मिलता है।

यह बचपन में ज्यादा पाया जाता है और शीघ्र वृद्धि से यह जल्द ही श्वसन-अवरोध पैदा कर सकता है।

बाहर से देखने पर पता लगाना कठिन होता है। उपचार शल्यक्रिया या संरक्षी दोनों ही से हो सकता है। संरक्षी उपचार में एक्स-रे, रेडियम आदि सम्मिलित हैं। पुनरावृत्तियां दोनों उपचारों के बाद देखी जाती हैं।

## स्वरयंत्र की तीव्र और चिरकारी संकीर्णताएं

स्वरयंत्र की तीव्र संकीर्णता शीघ्र होती है और कभी-कभी ल्यूमैन को सिकुड़ा बना कर श्वासावरोध पैदा कर देती है।

कंठद्वार में निकोचन स्वरयंत्र में शोथी परिवर्तनों से कंठद्वार के आकस्मिक आकर्ष से हो सकता है या स्वरयंत्री मोटर-तंत्रिकाओं की विक्षति या आघात का परिणाम हो सकता है।

वयस्कों में स्वरयंत्री शोथों से (स्वरयंत्र के अलग-अलग भागों के विकार – श्लेष्मा-कला के शोथ, एपिग्लोटिस और एरिटेनोइड उपास्थियों के शोफ – के मामलों में) काफी श्वसन-कठिनाई होती है। (रंगीन तालिका IV, चित्र 4)। ऐसी सूजनें विभिन्न संक्रामक रोगों, एरिसिपेलास स्वरयंत्री

चित्र 99. कृत्रिम क्रूप (अवकंठद्वार शोष स्वरयंत्री श्लेष्मा में)

फ्लेग्मोन इन्फ्लूएंजा, आघातों और आगंतुक शल्यों के कारण होती हैं। स्वरयंत्री संकीर्णता में होने वाला कष्ट, श्वास में घरघर, कष्टदायक प्रश्वसन होते हैं जबकि नीचे वाली श्वसनियों में संकीर्णता से निःश्वसन में अवरोध रहता है। पहले आक्सीजन की कमी का मुआवजा, धीरे लम्बी सांसें लेकर दिया जाता है। लम्बे काल तक संकीर्णता से स्वरयंत्र प्रत्येक श्वास में ऊपर और नीचे धक्का देता है और प्रत्येक प्रश्वसन में अंतरा पर्शुका और अधिजत्रुक क्षेत्र काफी अन्दर खिंचते हैं। बाद में श्वासावरोध के बुरे चिन्ह जैसे श्यावता, धीमा और छिछला श्वसन और बेहोशी दिखायी पड़ते हैं।

बच्चों में स्वरयंत्र की तीव्र संकीर्णता कृत्रिम और वास्तविक डिप्थीरिक क्रूप के बाद होती है। कृत्रिम क्रूप जुकाम या इन्फ्लूएंजा के आकस्मिक आक्रमण के बाद, खास कर रात में जब बच्चा सोया रहता है, देखा जाता है। बच्चा कर्कश खांसी और गहरे श्वासकष्ट के साथ उठता है। श्वसन के गहरे अवरोध में श्यावता, काफी बेचैनी और कभी-कभी आक्षेप देखे जाते हैं। कष्टमय श्वास अधिकतर कुछ मिनट से आधे घंटे तक रहता है, कभी-कभी एक या दो घंटे और कभी-कभी रात में कई बार हो सकता है। कृत्रिम क्रप के मामलों में अस्वरता नहीं रहती क्योंकि शोफ अवकंठद्वार क्षेत्र तक ही सीमित रहता है (चित्र 99)। बच्चों में कष्टमय श्वास का शीघ्र बढ़ना उनके श्वास-प्रणाल और स्वरयंत्र के संकीर्ण ल्यूमैन के कारण होता है।

स्वरयंत्री डिप्थीरिया में, जो कि वास्तविक या डिप्थीरिक क्रूप के रूप में जाना जाता है, श्वासावरोध और कष्टमय श्वास के लक्षण धीरे-धीरे
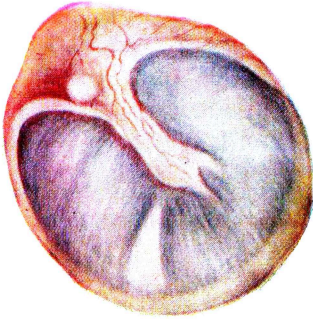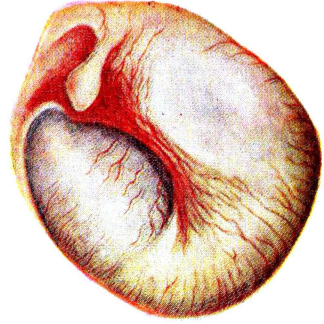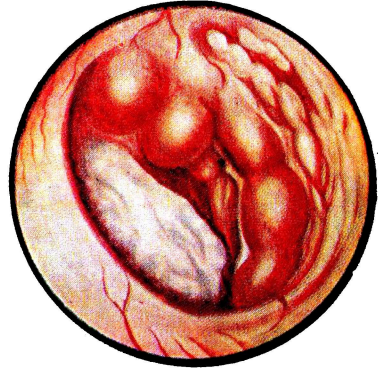
तालिका I

(1) सामान्य कर्ण-पटह ;

(2) (a, b, c) तीव्र मध्यकर्ण शोथ ;

(2a) रक्तवाहिकाओं का विकसित संभरण ;

(2b) निर्दिष्ट बिन्दुओं और कर्ण-पटह प्रसार की समाप्ति ;

(2c) कर्ण-पटह का छेदन के एक दिन बाद का दृश्य
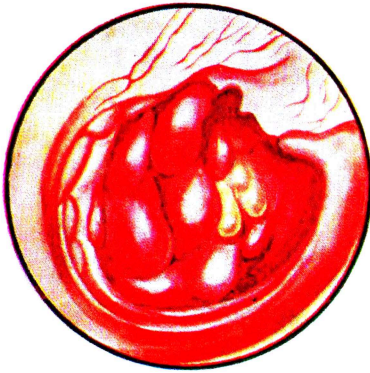
तालिका II

चिरकारी सपूय मध्यकर्ण शोथ में कर्ण-पटह वेधन के विभिन्न रूप :

(1) छोटा केन्द्रीय वेधन ;

(2) बड़ा केन्द्रीय वेधन, शोथी मध्यकर्ण श्लेष्मा दिख रही है,

(3) बड़ा केन्द्रीय वेधन, मध्य-कर्ण से आते कणांकुर दिखते हैं, श्रवण अस्थिकाओं का नाश हो गया है, आस्राव श्लेष्मपूय है।

(4) वृहत किनारे का वेधन जिसके साथ पार्श्व एटिक भित्ति का नाश हो गया है जिससे कोलिस्टेटोमा और कणांकुर दिखाई दे रहे हैं।
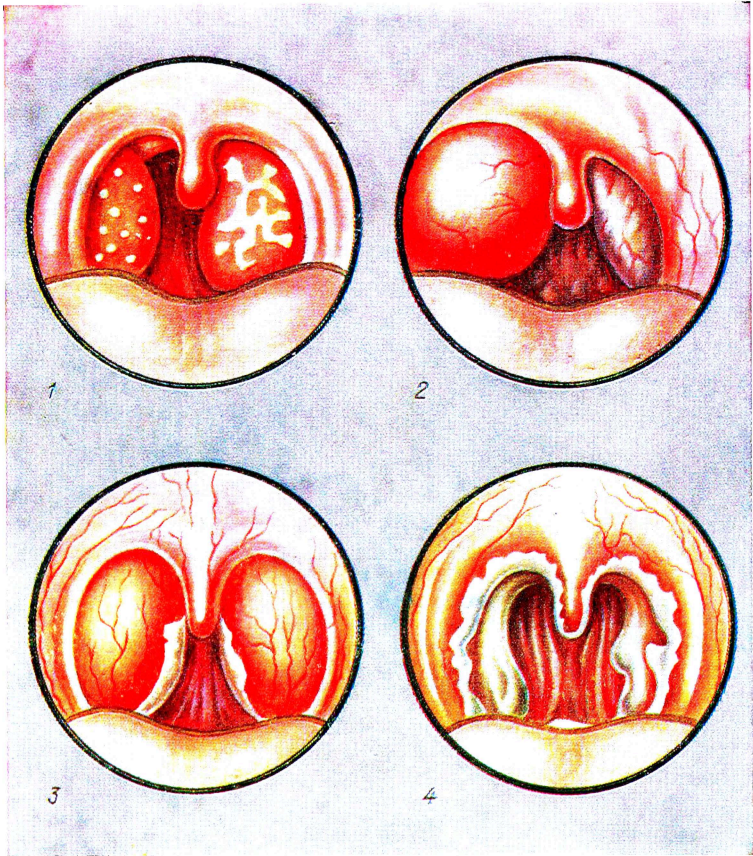
तालिका III

(1) दायीं ओर—फालिकुलर टांसिल शोथ, बायीं ओर—रिक्तिका टांसिल-शोथ ;

(2) परिटांसिली विद्रधि (दायीं ओर की) ;

(3) गलतोरणिका डिप्थीरिया का स्थानीय रूप ;

(4) गलतोरणिका डिप्थीरिया का विषालु रूप ।
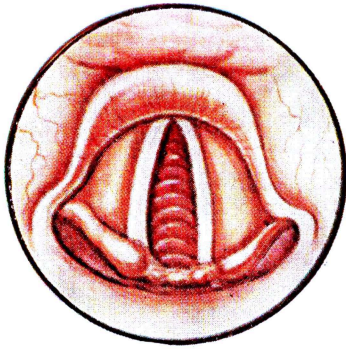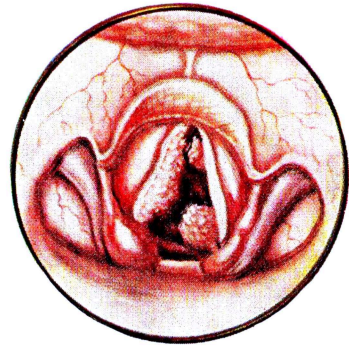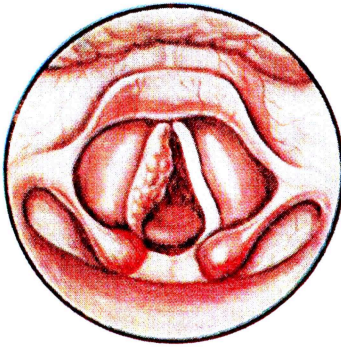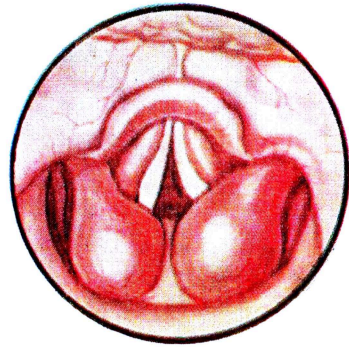
तालिका IV
(1) सामान्य स्वरयंत्र, शांत श्वसन में ;
(2) स्वरयंत्री पैपीलोमा ;
(3) स्वरयंत्री कार्सिनोमा ;
(4) स्वरयंत्र का शोथी शोफ (शोफी एरिटनाइड उपास्थियां)

पैदा होते हैं और इनके साथ अस्वरता भी रहती है। गहरी कृशता और कई अतिरिक्त लक्षण, जो मादकता के द्योतक हैं, कृत्रिम क्रूप का स्वरयंत्र के डिप्थीरिया के भेद करने में सहायक होते हैं।

स्वरयंत्री शोफ में, खासकर बच्चों में, तात्कालिक चिकित्सा सहायता की आवश्यक्ता होती है। बच्चे को तुरन्त बिठा दिया जाता है और हवा को आर्द्र बनाने के लिये कमरे में गीली चादरें टांग दी जाती हैं। पैरों को गर्म पानी में डालकर या पिंडलियों में सरसों का प्लास्टर लगाकर रखा जाता है। स्वेदजनक औषधियां भी सहायक हो सकती हैं। समय पर सावधानी बरतने से कृत्रिम क्रूप के दूसरे प्रकोप को रोका जा सकता है। बच्चों में बहुत ही कम मामलों में नाल-प्रवेशन और श्वासप्रणाल-छेदन, अगर रिवलसेंट और शामक औषधियों से आराम न पहुँचे, तभी जरूरी होता है। स्वरयंत्र के डिप्थीरिया का उपचार है फौरन डिप्थीरिया अवरोधी सीरम देना। संकीर्ण श्वसन-अवरोध में श्वासावरोध की गहरी अवस्था के लिये रुके बिना नलिका-प्रवेशन या श्वासप्रणाल-छेदन करना चाहिए।

वयस्कों में स्वरयंत्र का शोफ होने पर रिवल्सेंट, गर्म पैर-स्नान, सरसों का प्लास्टर आदि देना चाहिए। चिपकनेवाले खखार को कम करने के लिये अभिश्वसन दिये जाते हैं। एक असरदार उपचार है पेनिसिलीन का अन्तर्पेशी इन्जेक्शन 100 000 यूनिट मात्रा में प्रत्येक चार घंटों पर देना। यदि संवेदी उपचार असफल रहता है तो श्वासप्रणाल-छेदन आवश्यक हो जाता है। कंठद्वार का निकोचन कई ऐसे कारणों से भी हो सकता है जिनका संबंध तीव्र स्वरयंत्र-शोथ से नहीं होता। यह कंठद्वार की दोनों विस्फारण-पेशियों के अंगघात में हो सकते हैं, जैसाकि टाइफाइड, सिफिलिस थाइरोइड ग्रन्थि पर अपरेशन, या थोड़े कंठद्वार आकर्ष के बाद देखा जाता है, जो कि स्वरयंत्र के विभिन्न औषधियों या क्षोभी गैसों के अभिश्वसन के बाद देखा जाता है।

अर्बुदों की चिरकारी संकीर्णता में (जैसे स्वरयंत्र की यक्ष्मा और सिफिलिस में) कष्टमय श्वास धीरे शुरूआत वाला होता है, क्योंकि देह का आक्सीजन की कमी से अनुकूलन हो जाता है।

उपचार. स्वरयंत्री संकीर्णता के उपचार के दो उद्देश्य होते हैं: एक—रोगी को कष्टमय श्वास से तात्कालिक राहत देना और दूसरा—संकीर्णता का कारण समाप्त करना। पेनिसिलीन के अंतर्पेशी इंजेक्शन को सभी शोथ-प्रक्रियाओं में दिया जाता है। संकीर्णता के गंभीर मामलों में तात्कालिक

सहायता के लिये नाल-प्रवेशन और श्वासप्रणाल-उच्छेदन अविलम्ब करना चाहिए ताकि आक्सीजन की कमी से हृदय के रुकने और लगातार संकीर्णता के कारण देह-प्रतिरोध में कमी होने को रोका जा सके।

## स्वरयंत्र के मोटर विकार

स्वरयंत्री पेशियों के मोटर विकारों में उनकी क्रिया में काफी वृद्धि हो सकती है या, इसके विपरीत, कम क्रिया-क्षमता या उसका प्रभाव, यानी अंगघात, हो सकते हैं।

स्वरयंत्र की तंत्रिका प्रणाली की प्रतिवर्त-प्रतिग्राहिता आम तौर पर बच्चों में देखी जाती है और यह आकारिकी रोगों, जैसे कि स्पास्मोफीलिया रिकेट्स कुकुर-खांसी आदि का लक्षण है। यह कंठद्वार के आकर्ष बन्द होने से बढ़ जाता है और कभी-कभी श्यावता भी हो जाती है। स्वरयंत्री आकर्ष स्वरयंत्र के प्रतिवर्त-क्षोभ, आगंतुक शल्य कौटरी के प्रयोग, हानिकारक और क्षोभी गैसों के अभिश्वसन आदि से हो सकता है। रोग की दूसरी स्थितियों में स्वरयंत्री आकर्ष केन्द्रीय तंत्रिका-प्रणाली में पैदा हो सकता है जैसे कि हिस्टीरिया, मिर्गी, टेबिस डोरसेलिस टेटनस और दूसरे रोगों में। उपचार का उद्देश्य मूल रोग को ठीक करना है।

स्वरयंत्री पेशियों में कमजोरी या अंगघात उन की विक्षतियों या क्षोभी तंत्रिका-संभरण से हो सकता है। क्रिया-घातों जो कि अधिकतर रोगियों में कंठद्वार की संकीर्णक पेशियों के रोग से होता है और अंगी अंगघातों जो कि स्वरयंत्री तंत्रिकाओं की विक्षति से खासकर कंठद्वार की विस्फारक पेशियों की विक्षति से होते हैं, के बीच भेद करना आवश्यक है।

स्वरयंत्री मोटर क्रिया के क्षोभ केन्द्रीय और परिसरीय तंत्रिका प्रणालियों में हो सकते हैं। केन्द्रीय अंगघात का कारण सिरिन्जोमाइलिया, टेबिस, हिस्टीरिया और गुम्मा, अर्बुद, प्रमस्तिष्क कार्टेक्स का रक्तस्राव, वेरोलियस का सेतु, मैड्यूला ओबलोंगाटा और कभी-कभी मस्तिष्क स्तंभ के दूसरे भागों के रोग हो सकते हैं। कभी-कभी निम्न स्वरयंत्री तंत्रिका का अंगघात केन्द्रीय मूल का होता है और इसके साथ दूसरी अगल-बगल की मस्तिष्को-प्रमस्तिष्क तंत्रिकाओं (जैसे 9, 10, 11, 12 मस्तिष्क तंत्रिकाओं) में विक्षति देखी जाती है।

यदि केन्द्रीय तंत्रिका प्रणाली की विक्षति का संदेह हो तो लैरिन्जोस्कोपिक
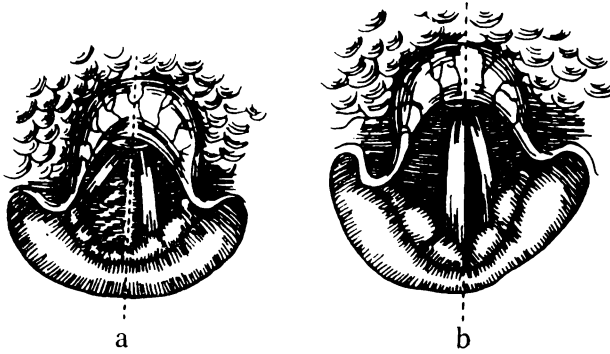
चित्र 100. स्वरयंत्र की बायीं ग्रोर का ग्रंगघात

(a) शांत श्वसन में; (b) स्वर उच्चारण में

दृश्य से मुख्य रोग का निदान साबित करने के लिये ग्रतिरिक्त जानकारी मिल जाती है।

परिसरीय ग्रंगघात. यह परावर्ती कंठ-तंत्रिका में ग्रंगघात से जिसका कि तुलनात्मक तौर पर लम्बा पथ होता है, हो सकता है। यह मध्यस्थानिका ग्रर्बुदों से, एग्रोटिक एन्यूरिज्मों, ईसोफेगस के गोइटर-ग्रौर कारसिनोमा के बाद, या तंत्रिका के रोग से, टेबिस में, एल्कोहोलिक ग्रौर सिफिलिटिक न्यूराईटिस ग्रौर रूमेटी मूल के न्यूराईटिस से हो सकता है। निम्न कंठ-तंत्रिका की विक्षतियां गोइटर को हटाने में हो सकती हैं। स्वरयंत्री परीक्षण से यह पता चलता है कि ग्रंगघात-ग्रस्त ग्रोर की स्वर-रज्जु ग्रपरिवर्तित होने के बजाय श्वसन ग्रौर स्वर उच्चार के समय की स्थितियों के बीच मध्य में रहती है, जिसे कि मध्यवर्ती स्थिति कहते हैं, जो केडावरिक स्थिति कहलाती है (चित्र 100 a, b)।

एक तरफा ग्रंगघात परावर्ती तंत्रिका में बहुत कम नैदानिक लक्षण पैदा करते हैं। स्वर-रज्जुग्रों में काफी कम स्वररूक्षता, जल्द स्वर-थकान ग्रौर खुला श्वसन रहते हैं। दोनों ग्रोर के ग्रंगघात से रोगी की जान पर खतरा हो सकता है ग्रौर श्वासप्रणाल-छेदन ग्रावश्यक हो जाता है, क्योंकि दोनों स्वर-रज्जु मध्य रेखा के इतना पास होते हैं कि कंठद्वार को श्वासावरोध की सीमा तक संकीर्ण बना सकते हैं।
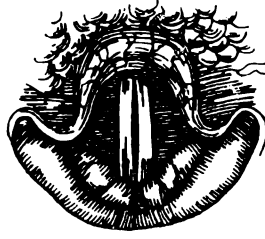
तंत्रिका विकृति या कायिक ग्रंगघातों के ग्रलावा, स्वरयंत्र ग्रौर स्वर-

चित्र 101. स्वरपेशियों का दोनों तरफ का आंशिक घात

रज्जुओं में तमाम तरह के शोथों से बार-बार पेशीविकृति या क्रियात्मक अंगघात हो सकते हैं, जैसा कि वक्ताओं, गायकों, अध्यापकों आदि में देखा जाता है। विक्षति अधिकतर स्वर पेशियों पर प्रभाव डालती है।

दो स्वर-रज्जुओं के आंशिक अंगघात से दोनों स्वर-उच्चारण में पूरी तरह निकट नहीं आ सकते हैं और इन में कंठद्वार लम्बा अंडाकार रूप लेता है और दोनों अंतों पर कम हो जाता है (चित्र 101)। स्वर रूक्ष हो जाता है और कुछ मामलों में पूर्ण अस्वरता भी हो जाती है।

यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि पेशी-विकृति और कायिक अंगघात बहुत समान लक्षण पैदा करते हैं और लैरिन्जोस्कोपी में भी समान चिन्ह दिखाते हैं। यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि निम्न तंत्रिका के लकवे से आकारिकी और गंभीर क्षोभ पैदा होते हैं।

उपचार. प्राथमिक उपाय रोगों के कारणों को हटाना है। लम्बे काल तक स्वर को आराम देना, चिरकारी शोथ का उपचार, गेल्वेनिक और फेराडिक करेंट के साथ विद्युत चिकित्सा करने से जल्दी उपचार होता है। रोग के प्रारंभ में ये उपाय ज्यादा असरदार होते हैं। स्वरयंत्र पेशियों के तंत्रिका-विकृति वाले लकवे में सुधार मुख्य रोग के उपचार पर निर्भर करता है।

# ऊर्ध्व श्वसनी नली में यक्ष्मा

## नाक में यक्ष्मा

नाक में यक्ष्मा फेफड़ों में प्राथमिक फोकस के कारण होने वाले अधिकतर द्वितीय संक्रमण हैं। नाक की प्राथमिक यक्ष्मा बहुत कम देखने में आती है।

यह स्थिति नासा-गुहा में अंतर्संचरण या व्रणोत्पत्ति पैदा करती है। अंतर्संचरण विभिन्न आकारों का होता है और कई बार अर्बुद के आकार का (ट्यूबरकूलोमा) भी होता है। ट्यूबरकुलों के टूटने और श्लेष्मा में अंतर्संचरण से व्रणोत्पत्ति हो सकती है। यक्ष्मा-व्रण नासा-पट के उपास्थि-भाग में पाये जाते हैं।

रोग के प्रारंभ में स्वप्रत्ययी लक्षणों का एकदम अभाव होता है। रोग के बढ़ने के साथ अंतर्संचरण बढ़ता है और कम या ज्यादा नासा अवरोध हो जाता है। अंतर्संचरण और व्रणों के टूटने से सपूय और रक्तयुक्त नासा आस्राव होता है, जो बाद में पपड़ी बनाता है। आस्राव आम तौर पर गंधहीन होता है। नासा-यक्ष्मा के निदान की पुष्टि बायोप्सी से होती है, जिससे सामान्य व्रण और दुर्दम अर्बुद में भेद किया जा सकता है।

## ग्रसनी का यक्ष्मा

ग्रसनी-यक्ष्मा द्वितीयक संक्रमण है, जो गह्वर फुप्फुसी यक्ष्मा में खखार द्वारा लाया जाता है या रक्त और लसीका-प्रवाह द्वारा फैलता है। ग्रसनी के यक्ष्मा-अंतर्संचरण से कोई ज्यादा स्वप्रत्यय लक्षण नहीं होते और रोगी के परीक्षण से ही यक्ष्मा-व्रण दिखायी देते हैं। ये कोमल तालु, गलतोरणिका टांसिलों, पश्च ग्रसनी-भित्ति तक या टांसिलों तक सीमित रहते हैं। यक्ष्मा-व्रण छिछले होते हैं और कुछ दंतिल या "मूषकचर्वित" जैसे दिखते हैं, कोर नीचे की ओर होती है और रंग हल्का गुलाबी रहता है।

ये व्रण संश्लेषित हो जाते हैं और शीघ्र वृहत क्षेत्रों पर प्रकोप करते हैं। निगरण करने में वेदना होती है। स्ट्रेप्टोमाइसिन और दूसरी नयी प्रतिजीवी औषधियों व यक्ष्मारोधी औषधियों, जैसे पास ( PAS ) फ्थीवैसिड आदि के आगमन से पहले रोग लम्बा खिंचता था और उपचार असफल रहता था।

## स्वरयंत्र का यक्ष्मा

स्वरयंत्र-यक्ष्मा फुप्फुसयक्ष्मा का द्वितीयक है। चिरकारी तंतुगह्वर-फेफड़ा के यक्ष्मा का संक्रमण स्वरयंत्र में यक्ष्मिक खखार के जमाव से और विदरों और उपकला के विशल्कि स्थानों से होता है। जिन रोगियों में दूसरे प्रकार की फुप्फुसी यक्ष्मा होती है उनमें यह रक्त और लसीका प्रवाह के साथ फैलता है। स्वर-रज्जु और अंतःएरिटेनोइड क्षेत्र प्रकोपन का सब से आम क्षेत्र है क्योंकि यहां श्लेष्मा फूली हुई और रक्ताधिक्यपूर्ण रहती है। वैसे अंतर्संचरण बढ़ने और उसके टूट कर व्रण बनाने के साथ-साथ, जिन का क्षेत्र और गहराई बढ़ते जाते हैं, प्रक्रिया गहराती है, अंतर्संचरण के साथ ही साथ उपास्थि और पर्युपास्थि के स्थानों पर भी परिगलन-शोथप्रक्रिया होती है और स्वरयंत्री शोफ का और साथ ही श्वासावरोध का खुला खतरा मौजूद हो जाता है, और इसके लिये श्वासप्रणाल-छेदन की आवश्यकता होती है।

यदि संक्रमण रक्त-मार्ग से प्रवेश करता है तो स्वरयंत्री श्लेष्मा पर ट्यूबरकलों का विस्फोट होता है जो गलतोरणिका और स्वरयंत्री छिद्रों पर साथ ही देखा जाता है। रक्त-मार्ग से रोग जल्दी फैलता है हालांकि इसका आघटन कम है पर इसके साथ कई बार निगरण-कष्ट देखा जाता है।

लक्षण स्वरयंत्री यक्ष्मा के रोगी में बार-बार स्वरयंत्री केटार देखा जाता है, जो किसी महत्वहीन कारण से भी हो जा सकता है और यह लम्बे काल तक रहता है। ये स्वरयंत्री केटार संभवतः श्लेष्मा-प्रक्रिया के तीव्र होने के कारण ही होते हैं। अंतर्संचरण और व्रणों के आने से स्वर रूक्ष हो जाता है, खांसी बदतर हो जाती है, निगरण में दर्द होता है, एपिग्लोटिस और एरिटेनोइड उपास्थियों में व्रण इतने कष्टदायक हो सकते हैं कि रोगी के लिये भोजन करना असंभव हो जाता है।

उपचार. पिछले वर्षों में यक्ष्मा के उपचार में, खासकर ऊर्ध्व श्वसन-

नली की यक्ष्मा के उपचार में काफी प्रगति हुई है। नयी प्रतिजीवी औषधियों ने यक्ष्मा के कई रूपों के लक्षणी उपचार की नई आशा पैदा की है, यहां तक कि उन रूपों की भी, जिनका उपचार पहले असंभव माना जाता था, जैसे स्वरयंत्री यक्ष्मा।

स्ट्रेप्टोमाइसिन, पास (PAS) और असरदार यक्ष्मारोधी औषधियों का ऊर्ध्व श्वसननली के तीव्र और चिरकारी यक्ष्मा के बढ़े हुए रूप के उपचार के लिये व्यापक उपयोग होता है। स्वरयंत्री यक्ष्मा के रक्त-रूप का श्रेष्ठतम उपचार है स्ट्रेप्टोमाइसिन, जो शीघ्र आराम देती है, निगरण कष्ट ठीक हो जाता है तथा तुरन्त सुधार होता है। सेनिटोरियल और मौसमी उपचार भी यक्ष्मा के मिले-जुले उपचार का अंतरंग हिस्सा है।

स्वरयंत्री यक्ष्मा की पहली आवश्यकता है स्वर-आराम, बिना बल प्रयोग के वाक, सौम्य भोजन, और तम्बाकू और मदिरा से परहेज।

1-3 प्रतिशत मेन्थोल तेल की 1 या 2 मि० लीटर मात्रा से स्वरयंत्र का हर दूसरे दिन आधान करने, स्वरयंत्री व्रणों का ट्राइक्लोरोएसिटिक अम्ल या गेल्वेनिक करेंट से काटरीकरण करने का, जो कि पहले बड़ी संख्या में काम में लाये जाते थे, आज भी कुछ केसों में बहुत सीमित महत्व है।

निगरण करने पर दर्द होने पर संवेदनाहरणों को प्रधमन, स्प्रे या अभिश्वसन द्वारा प्रत्येक भोजन के बाद दिया जाना चाहिए।

यहां उचित फार्मूले दिये गये हैं:

Rp. Orthoformii 1.0
(seu Anaesthesini)
Acidi borici pulverati substilissimi 2.0

निर्देश: स्वरयंत्र में प्रधमन के लिए।

Rp. Cocaini hydrochlorici
Morphini hydrochlorici āā 0.2
Aq. destill.
Aq. Menthae āā 100.0

निर्देश: खाने से पहले दो-तीन बार स्प्रे के लिये।

Rp. Mentholi crystallisati 0.1

Anaesthesini 3.0

Spiritus vini rectificati

Acidi tannici āā 10.0

निर्देश : स्वरयंत्र के स्नेहन के लिये।

रोग-निरोध और परिचर्या देखभाल. स्वच्छता और स्वास्थ्य-नियमों का कड़ा पालन रोगी की सक्षम देखभाल का अभिन्न अंग है। कमरे में सामान्य 18° से 19° सेन्टीग्रेड का ताप बना रहना चाहिए। कमरे को हर समय हवादार रखा जाना चाहिए। रोगी को नियमित भोजन तथा उचित समय पर और सही मात्रा में दवाइयां लेनी चाहिए। रोगी को स्वरयंत्र को आराम देने का महत्व समझना चाहिए। इसे कीटाणुरोधी थूकदानी का इस्तेमाल करने को कहना चाहिए ताकि रोग दूसरे लोगों तक न फैले।

## नाक और ग्रसनी का ल्यूपस

नाक और स्वरयंत्र के यक्ष्मा का विशेष रूप ल्यूपस है जो त्वचा के यक्ष्मी ल्यूपस या लसीका पर्व और अस्थियों के यक्ष्मा के उपद्रव से हो सकता है। यह रोग फेफड़ों में शान्त यक्ष्मी फोकस पैदा करता है।

हालांकि नाक का ल्यूपस तुलनात्मक तौर पर बहुत कम देखा जाता है, फिर भी यह ग्रसनी और स्वरयंत्र के ल्यूपस से अधिक पाया जाता है। नाक में यह आम तौर पर नासा पर और सपक्षों पर असर करता है। ल्यूपस के प्ररूपी चिन्ह हैं, पार्विकारूपी अंतर्संचरण और इसके साथ मुंह की त्वचा पर विक्षति में होने वाले क्षत-चिन्ह। ग्रसनी में ल्यूपस मुंह और नाक की समान अवस्था के साथ देखा जाता है। ग्रसनी-श्लेष्मा में स्थल पर पहले सपाट, हल्के, छोटे दानों वाला अंतर्संचरण होता है जो बाद में छिछला व्रण बनाता है। ये व्रण बहुत कम दर्द करते हैं या कोई दर्द नहीं पैदा करते और यक्ष्मा-व्रण के विपरीत इन में क्षतांकन अधिक होता है। ल्यूपस का चिरकारी मार्ग है और इसका रोगी की सामान्य अवस्था पर बहुत कम असर होता है। नाक, ग्रसनी और स्वरयंत्र का सुझाया उपचार है विटामिन डी$_2$, या फ्थीवासीड, जिसका रोग पर काफी उपचारी असर होता है।

सोवियत संघ में यक्ष्मा नियंत्रण के लिये क्लीनिको-रोग-विरोधी केन्द्रों

का व्यापक ताना-बना है, जिन्हें "ट्यूबरकुलसरोधी-औषधालयों" के नाम से जाना जाता है, जहां रोगियों को भर्ती किया जाता है और उन पर लगातार चिकित्सा-नियंत्रण रखा जाता है। फुफुसयक्ष्मा के सभी रोगियों के स्वरयंत्र का लैरिन्जोलीजिस्ट स्टाफ द्वारा परीक्षण स्वरयंत्री-यक्ष्मा को शुरूआती काल में पकड़ लेता है जिससे उसका प्रभावशाली उपचार किया जा सकता है।

यक्ष्मा के सभी रोगियों का आवश्यक औषधालयी उपचार और नयी प्रभावशाली प्रतिजीवी और यक्ष्मा-रोधी औषधियों से यक्ष्मा-रोग खासकर ऊर्ध्व श्वसननली-यक्ष्मा के रोग में और उससे होने वाली मृत्युओं में भारी कमी आयी है।

## ऊर्ध्व श्वसन-नली की सिफिलिस

### नाक की सिफिलिस

नाक की सिफिलिस प्राथमिक स्क्लेरोसिस या द्वितीय या तृतीय अवस्थाओं में विक्षति से हो सकती है। नासा सिफिलिस की तृतीय अवस्था इस रोग में आम तौर पर देखी जाती है, इसलिये इसका चिकित्साव्यवसायी के लिये विशेष महत्व होता है। वैकृत शरीरसंरचना के परीक्षण में सीमित या विसरित सिफिलिटिक अंतर्संचरणों को, तथाकथित गुम्मा को, जो बाद में विघटित हो जाता है, उद्घाटित करता है। सिफिलिटिक अंतर्संचरण, जो श्लेष्मा कला में बनता है, के नाश से गहरा व्रण बनता है, जिसके तेज रूपरेखा वाले किनारे होते हैं और नीचे त्वग्वसा होती है। यह व्रण बाद में नीचे की अस्थि और उपास्थि पर आक्रमण कर सकता है। यदि गुम्मा का प्राथमिक स्थल अस्थि या उपास्थि हो तो अस्थि में पोषण-विक्षोभ से परिगलन और पृथकभवन होता है तथा काफी गहरी दुर्गन्ध पैदा होती है।

तृतीयक सिफिलिस नाक के सभी ऊतकों पर प्रभाव डाल सकती है लेकिन प्रायः नासा-पट के अस्थि भाग पर प्रभाव पड़ता है जिससे गुम्मा के फटने से वेधन होता है। नासा-गुहा के फर्श का भी नाश हो सकता है और इस में और मुख-गुहा के बीच में छिद्र हो सकता है। झर्झरिकास्थि की छलनीदार प्लेट के परिगलन से अंतःकपाल-उपद्रव हो सकते हैं।
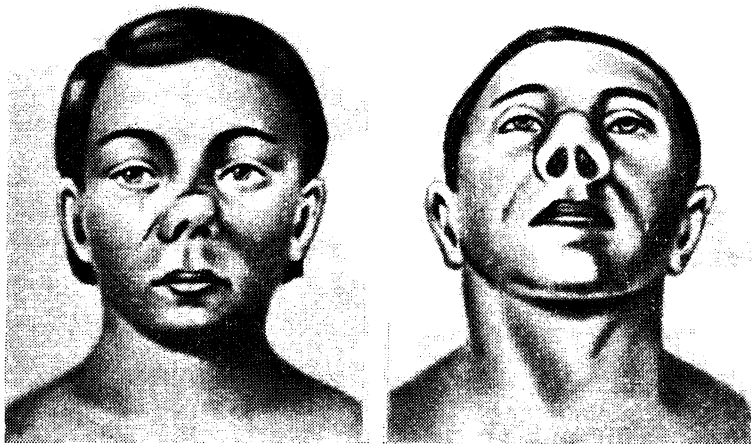
चित्र 102.

(a) नाक की सिफिलिस ; (b) नासा का स्क्लेरोमा

रोग की उपेक्षा किये जाने की स्थिति में नासा-पट और नासा-अस्थियों के नाश के कारण प्ररूपी नासा-विकार हो जाते हैं और सेतु धंस जाता है तथा संयोजी ऊतक का क्षतांकन व निकोचन हो जाता है। इस विकार को पर्याण-नासा या "धंसी नासा" नाम से जाना जाता है ( चित्र 102 a )।

निदान. देह में सिफिलिस के दूसरे चिन्हों के अभाव में तृतीय अवस्था को पहचानना काफी कठिन होता है।

उपचार. यह सार्वदेहिक और विशिष्ट दोनों होता है। विशिष्ट उपचार से गहरे नासा-नाश के सारे प्रयासों को विफल किया जा सकता है।

बाह्य विकारों, जैसे पर्याण-नासा को प्लास्टिक मोम की सूई द्वारा अस्थि और उपास्थि में टिकाया और पर्शुका उपास्थि से लेकर किये गये अस्थि या उपास्थि के प्रतिरोपण द्वारा और साथ ही मुर्दा-उपास्थि के निरोप द्वारा ठीक किया जाता है।
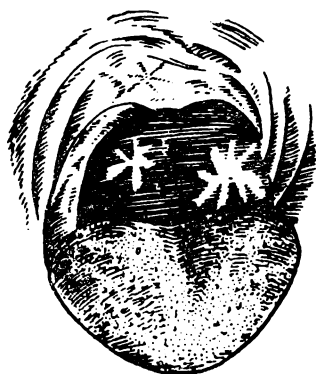
चित्र 103. कोमल तालु और पश्च ग्रसनी भित्तियों के सिफिलिटिक तारे-रूपी क्षत-चिन्ह

## ग्रसनी की सिफिलिस

ग्रसनी की सिफिलिस अपने तीनों रूपों में देखी जाती है। प्राथमिक विक्षति टांसिलों में या पश्च ग्रसनी भित्ति में देखी जाती है। वेदना सामान्यतः नहीं होती। ग्रीवा और पश्चकपाल ग्रंथियों में, जो घनी हो जाती हैं और फूल जाती हैं तथा वेदनारहित रहती हैं, विशिष्ट लिम्फेडिनाइटिस विकसित हो जाता है और सही निदान करने में सहायक होता है।

ग्रसनी की सिफिलिस के दूसरे लक्षण सिफिलिटिक एन्जीना के होते हैं। इनमें हल्का ज्वर, हल्का दर्द और विसरित ताम्बे के रंग का रक्ताधिक्य होता है जो गलतोरणिका-स्तंभों और कोमल और कठोर तालुओं पर प्रहार करता है। रोग का मार्ग अवतीव्र होता है और यह हफ्तों चलता है।

दूसरे केसों में इस अवधि में चौड़े कान्डिलोमा या पैपुल देखे जाते हैं। पैपुलर पित्तिकाएं जो कि सलेटी-सफेद रंगों में होती हैं और थोड़े साफ गोलाकार या अंडाकार आकार की लाल सीमा से घिरे धब्बे पूरी तरह से लाल गलतोरणिका-स्तंभों, तालु और टांसिलों पर दिखाई देते हैं। क्षेत्रीय लसीका पर्व सदा फूले रहते हैं।

तृतीयक सिफिलिस या तो सीमित गम्मायुक्त अर्बुद या फिर विसरित अंतर्संचरण के साथ रक्ताधिक्य परिधि के चारों ओर देखी जाती है। टूटने

के कुछ समय बाद कभी-कभी गम्मायुक्त ग्राकार गहरे गम्मायुक्त व्रण बनाते हैं जिनके सम किनारे होते हैं ग्रौर त्वग्वसा-युक्त फर्श होता है, जो परिगलित ऊतक से भरा रहता है।

समय पर उपचार नहीं करने से ग्रसनी के कोमल ग्रौर ग्रस्थिय ऊतकों का नाश, कोमल ग्रौर कठोर तालु का वेधन ग्रौर गलतोरणिका-स्तंभों का टूटना ग्रादि देखे जाते हैं।

उपचार के बाद प्ररूपी तौर पर तारे जैसे ठोस क्षत चिन्ह देखे जाते हैं, ग्रभिवृद्धियां ग्रौर वेधन कायम रहते हैं (चित्र 103)।

उपचार. यह विशेष होना चाहिये। स्थानीय तौर पर हल्की कीटाणुरोधी दवाइयों जैसे हाइड्रोजन पेरोक्साइड, पोटेशियम क्लोरेट ग्रादि से कुल्ले करने चाहिए।

## स्वरयंत्र की सिफिलिस

स्वरयंत्र में सिफिलिटिक लक्षण रोग की द्वितीय या तृतीय ग्रवस्था के ग्राने पर दिखाई पड़ते हैं। द्वितीयक सिफिलिस में स्वरयंत्र लाल हो जाता है ग्रौर इसपर पिटि्टका-विस्फोट पैदा होते हैं जो प्ररूपी उठे हुए सफेद धब्बों की तरह दिखते हैं ग्रौर इनके टूटने पर पृथक, लेकिन जुड़े हुए छिछले व्रण बनते हैं। ग्रधिकतर, स्वरयंत्र में द्वितीयक लक्षण सिफिलिटिक एरीथीमा की तरह दिखायी देते हैं जिन्हें तीव्र स्वरयंत्री शोथ के कारण देह में व्यापक द्वितीयक सिफिलिस के लक्षणों द्वारा ग्रलग किया जा सकता है। ये शोथ के तीन हफ्तों से तीन सालों के भीतर दिखाई पड़ते हैं।

गुम्मायुक्त या तृतीयक ग्रवस्था में प्ररूपी गुम्मा-ग्रंतर्सचरण ग्रौर ग्रर्बुद होते हैं जिनके टूटने पर स्वरयंत्री उपास्थियों में द्वितीयक पर्युपास्थि शोथ ग्रौर हठी क्षतांकन-परिवर्तन दिखाई देते हैं। उपास्थि की प्राथमिक विक्षति से ग्रौर ज्यादा नाश होता है। रोग सब से ज्यादा एपीग्लोटिस में होता है जो कभी-कभी प्रक्रिया में पूरी तरह समाप्त भी हो जाता है। तृतीयक सिफिलिस में लैरिन्जोस्कोपी दृश्य एकदम भिन्न होता है। गुम्मायुक्त पर्वों के टूटने से गहरा व्रण होता है, जिसकी तीखी रूपरेखाएं होती हैं, फर्श त्वगवसा से ग्रस्तरित होता है ग्रौर चारों ग्रोर शोथी, ग्रंतर्सचरण वाला ऊतक होता है। यह प्ररूपी तस्वीर ग्रक्सर द्वितीयक शोथ के ग्रतिरिक्त लक्षणों के कारण रूपान्तरित हो जाती है ग्रौर निदान को कठिन बना देती है। व्रणोत्पत्ति ग्रौर स्वरयंत्र के नाश से हल्का दर्द होता है। द्वितीयक

संक्रमण से फ्लेगमौनस शोथ या पर्युपास्थिशोथ स्वरयंत्री उपास्थियों में देखा जाता है। क्षत-चिन्हों के कारण स्वरयंत्री संकीर्णता हो सकती है जिनके लिये श्वास-प्रणाल छेदन आवश्यक हो जाता है।

निदान रोग-इतिहास, स्थानीय लक्षणों, सार्वदेहिक परीक्षण और वासर-मैल परीक्षण के आधार पर किया जाता है। अस्पष्ट रोग की स्थिति में जहां सिफिलिस, यक्ष्मा और स्वरयंत्रों के कैंसर के बीच विभेदी निदान किया जाना होता है, बायोप्सी का प्रयोग किया जाता है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि रोग-स्थिति को पहचानने से पूर्व ही विभिन्न काटरीकारी एजेन्टों, खासकर सिल्वर नाइट्रेट विलयनों, के इस्तेमाल से रोग के लक्षणों का दृश्य विकृत हो जाता है और निदान में भूल हो सकती है। जबतक निदान नहीं होता तबतक केवल सौम्य उपचार किये जा सकते हैं जैसे कि और भी क्रियात्मक विलयनों के गरारे और डूश, गले के तेलीय विलयनों आदि का प्रयोग।

उपचार. यह विशिष्ट होता है और पिछले कुछ वर्षों में पेनिसिलिन से किया जाता है। यदि विशिष्ट उपचार से संकीर्णता कम नहीं होती तो रोगी की पूरी तरह जांच करते रहना चाहिए ताकि श्वास प्रणाल छेदन की आवश्यकता को नजरअंदाज न किया जा सके।

सिफिलिस के रोगियों का, खास कर दूसरी अवस्था में जब रोग सर्वाधिक रहता है, परीक्षण करते समय अवश्य ही सावधानी बरतनी चाहिए। ओरल कथिटर, प्रोबों, स्पैचुला आदि से संक्रमण के फैलने के बहुत थोड़े से मामले साहित्य में मौजूद हैं। ऐसे रोगियों के लिये अलग से उपकरण रखने चाहिए, प्रत्येक परीक्षण के बाद उबालकर उन्हें विसंक्रामित कर लेना चाहिए। विभिन्न परीक्षणों के बाद जो रूई सिफिलिटिक रोगी की ग्रसनी और स्वर-यंत्र को साफ करने के लिये काम में लायी जाती है, उसे पिन्सर से प्रोब पर से हटाना चाहिए और या तो ऊर्ध्वपातजपूर्ण थूकदानी में डालना चाहिए या तुरन्त जला देना चाहिए।

सोवियत संघ में डर्मेटो वेनेरोलोजिकल औषधालयों का विशाखित ताना-बाना है जो सिफिलिस के तमाम मामलों का पता लगाने, इनका उपचार करने और आगे जांच करने का काम करते हैं। सोवियत संघ में विशेष चिकित्सा-संस्थानों, जो कि इसके उपचार और रोग-निरोध का काम करते हैं, के कारण इस रोग की आघटन-दर में काफी कमी आ रही है।

## स्क्लेरोमा

स्क्लेरोमा ऊर्ध्व श्वसन-नली का चिरकारी संक्रामक रोग है जिस में श्लेष्मा-कला में शीघ्र क्षतांकित होने वाले रोग होते हैं। यह वोल्कोविच-फ़िश्च बैसिलस के कारण होता है। रूसी वैज्ञानिक स्क्लेरोमा की समस्याओं की वृहत जांच (रोग के संक्रमण, निदान-समस्याएं और उपचार) में आगे रहे हैं। इस रोग से पहले अधिकतर श्लेष्मा का चिरकारी शोथ होता है जो नाक, ग्रसनी, स्वरयंत्र और कभी-कभी श्वासप्रणाल और श्वसनी के अंतर्संचरण की पृष्ठभूमि का काम करता है। अंतर्संचरण सपाट गुंथे प्रसारों की तरह हल्के लाल रंग में प्रकट होते हैं और कायिक संकीर्ण संरच-नाओं, जैसे नासा-प्रघाण, (चित्र 102 b), पश्चनासा द्वारों, नासा-ग्रसनी और अवकंठद्वार-क्षेत्र में देखे जाते हैं। ये अंतर्संचरण संयोजी ऊतक कोशि-काओं के प्रफलन के फलस्वरूप टूटे बिना क्षत-चिन्ह और प्ररूपी आसंजन बहुत संकीर्ण बनाते हैं। इस अवस्था में कुछ रोगियों की नाक और मुंह से विचित्र हल्की दुर्गन्ध निकलती है।

रोगी की मूल शिकायत श्वसन-विकार की होती है जो ऊर्ध्व श्वसन-पथ के रोगग्रस्त भाग के संकेंद्रिक क्षतांकन-संकुचन के कारण पैदा होता है। साथ ही, रोगी स्वरयंत्री में अंतर्संचरणों से अस्वरता और ऊर्ध्व श्वसन नली की संपूर्ण श्लेष्मा कला में शुष्कता की शिकायत करता है।

निदान. यह ऊर्ध्व श्वसन नली के परीक्षण और ब्रान्कोस्कोपी और रोग लक्षणों और लम्बे काल तक व्रणों के अभाव से किया जाता है। विभेदी निदान से सिफिलिस को अवश्य ही बाहर किया जाना चाहिए। कभी-कभी स्क्लेरोमक ऐंटिजन के साथ बायोप्सी और बोर्देजेंगु-सीरमी अभिक्रिया किये जाते हैं।

रोग वर्षों तक रह सकता है और बिगड़ सकता है।

उपचार. स्क्लेरोमा का प्रतिजीवी औषधियों, स्ट्रेप्टोमाइसिन और खासकर टेरामाइसिन से पिछले कुछ वर्षों से किये जाने वाले उपचार से काफी सफलता मिली है। स्ट्रेप्टोमाइसिन को अंतर्पेशी इन्जेक्शन द्वारा 500 000 यूनिट मात्रा में दिन में दो बार दिया जाता है, इसे 100 और 200 या 400 लाख यूनिटों में भी दिया जा सकता है। स्क्लेरोमा की प्रारंभिक अवस्था और छोटे अंतर्संचरणों वाले और तुलनात्मक रूप से कम लम्बे रोग वाले रोगी ठीक हो जाते हैं। कई क्षत चिन्हों वाले रोगियों में भी

अंतर्संचरण कम या विलुप्त हो जाते हैं और सामान्य अवस्था बेहतर हो जाती है। कई श्वासप्रणाल-छेदन हुए रोगियों में कैनुला को निकालना भी संभव होता है।

स्ट्रेप्टोमाइसिन चिकित्सा के साथ एक्स-रे उपचार से भी सहायता मिलती है और आवश्यक्ता पड़ने पर स्वरयंत्र और श्वासप्रणाल में बूजीप्रवेशन किया जाता है।

रोग निरोध. स्क्लेरोमा अतीत की धरोहर है। जन-कल्याण और सांस्कृतिक स्तर में विकास ने, उन क्षेत्रों में जहां कि स्क्लेरोमा के ज्यादा मामले हों, वहां स्क्लेरोमा के मामले को पता लगाने के काम सहित, स्वास्थ्य संगठनों के द्वारा उठाये गये नियोजित कदमों ने, इस रोग की नैदानिक हालत और इसे पैदा करनेवाले विविध कारणों के गहन अध्ययन ने और बड़े पैमाने पर आन्तरिक और बहिरंग सेवाओं ने सोवियत संघ में इस रोग के घटने की दर को कम कर दिया है और निस्संदेह, आनेवाले वर्षों में इस का पूरी तरह उन्मूलन हो जायेगा।

# श्वास-प्रणाल क रोग

## श्वास-प्रणाल की शरीर-रचना

श्वास-प्रणाल, अधोश्वसन-पथ के शुरू का हिस्सा तथा लैरिंक्स (स्वरयंत्र) का प्रसार है। यह 11 से 13 सें० मी० लम्बी बेलनाकार नली है जो लरिंक्स से आती है तथा काचाभ उपास्थि से बने 16-20 श्वासप्रणाल-वलयों से बनी होती है। ये वलय घने तंतु-ऊतकों के द्वारा एक साथ बने रहते हैं। पीछे की तरफ जहां कि श्वासप्रणाल-वलय पूरी तरह बन्द नहीं होते हैं, श्वासप्रणाल-भित्ति संयोजी ऊतकों तथा कोमल पेशियों से बनी होती है। श्वास-प्रणाल का यह भाग अपनी पूरी लम्बाई में ईसोफोगस से संलग्न रहता है।

आराम के समय वयस्कों में श्वास नाल सातवें ग्रैव कशेरुक या प्रथम वक्ष से पांचवें वक्ष कशेरुक तक फैला रहता है। श्वास नाल के चारों ओर के संयोजी ऊतक ढीले रहते हैं तथा लैरिंक्स और श्वास-नाल की गति में खूब विस्थापन करने देते हैं। अपने ऊपरी हिस्से में श्वास-नाल ग्रीवा के पृष्ठ के काफी निकट रहता है, फिर यह नीचे और पीछे की तरफ चलता है तथा अच्छी तरह विकसित वसीय तथा संयोजी ऊतकों, अग्र ग्रैव पेशियों उपस्थि प्रावरणी तथा त्वचा से आच्छादित होता है।

## श्वासप्रणाल-श्वसनी दर्शन

श्वासप्रणाल-श्वसनी दर्शन सीधी लैरिंगोस्कोपी में एक सुधार है। श्वास-प्रणाल तथा श्वसनी के परीक्षण के लिये श्वसन मार्ग में अन्बर दूसरे या तीसरे श्वसनी-विभाजन तक धातु-नली घुसते हैं। ब्रांकोस्कोपीक सेट (चित्र 104) निम्न भागों को मिला कर बना होता है: (1) प्रकाश करनेवाले
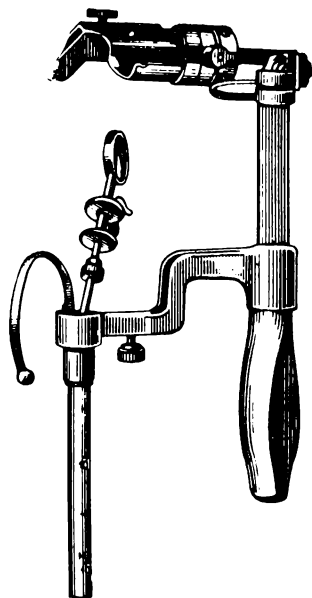
चित्र 104. ब्रांकोस्कोपीक नली में फारसेप्स के साथ बांकोस्कोप घुसाया हुआ
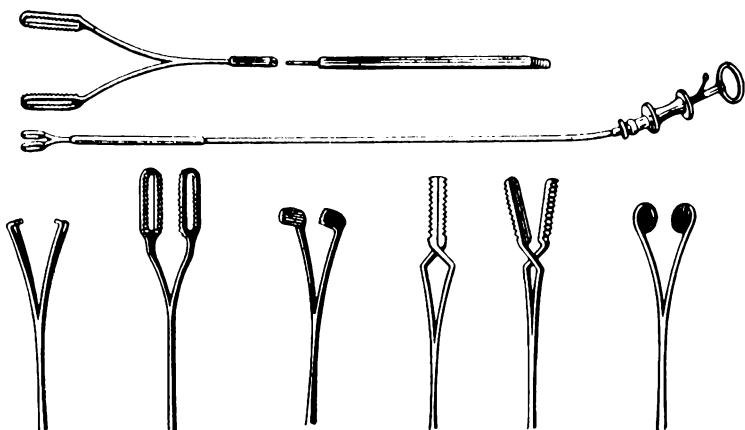
चित्र 105. आगंतुक शल्य निकालने के लिए विभिन्न एक्स्टेंसन पीसेज़ के साथ ब्रांकोस्कोपीक
फारसेप्स
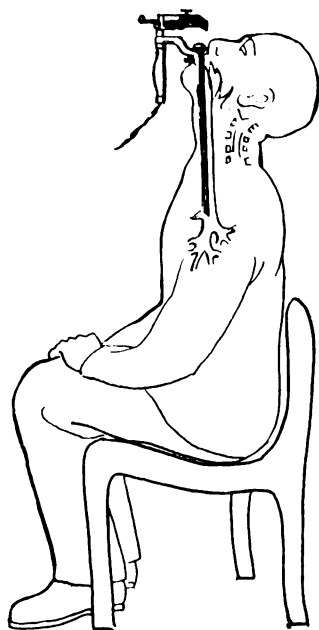
चित्र 106. बैठी हुई मुद्रा में ब्रांकोस्कोपी
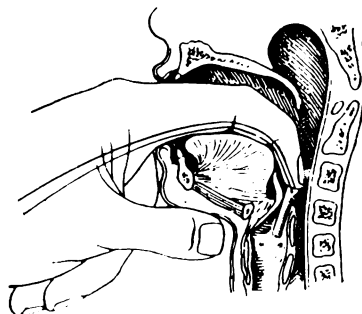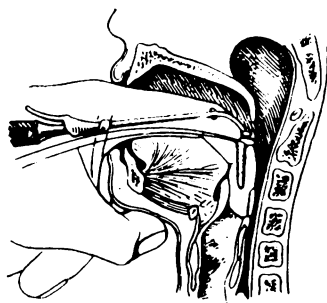
चित्र 107. लैरिंक्स का इन्टूबोशन

उपकरण के साथ हस्तक, (2) ब्रांकोस्कोपिक नली, (3) श्लेष्मा तथा रक्त को हटाने के लिये सूत्रित प्रोब सहित सहायक उपकरण तथा शल्य-क्रिया-उपकरण, रक्त हटाने के लिये पेंचदार प्रोब, श्लेष्मा-चूषक तथा विभिन्न एक्सटेंसन टुकड़ों वाला एक लम्बा फारसेप्स (चित्र 105) जिससे आगंतुक शल्य निकालते हैं और श्वसनी पर अन्य शस्त्रकर्म करते हैं।

ब्रान्कोस्कोपिक नली प्रकाशन और परीक्षण के लिये निम्न वायुपथ में प्रविष्ट कराया जा सकता है। उच्च ब्रान्कोस्कोपी में प्रवेशन नैसर्गिक छिद्रों (मुँह, ग्रसनी, स्वरयंत्र) से होता है और निम्न ब्रान्कोस्कोपी में प्रवेशन श्वास-प्रणाल में शल्यक्रिया से बने छेद द्वारा होता है। आखिरी परीक्षण-विधि सामान्यतया पाँच-छे वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिये प्रयुक्त होता है। शल्यक्रिया से छेद पहले ही बनाना पड़ता है।

अब ब्रान्कोस्कोपी श्वास-प्रणाल तथा श्वसनी के रोगों के निदान तथा

बहुत सारे फुप्फफुस-रोगों, जैसे फुप्फफुस-विद्रधि तथा श्वसनी-विस्फार, ग्रादि के उपचार के लिये व्यापक रूप से किया जाता है (चित्र 106)।

## नलिका-प्रवेशन

नलिका प्रवेशन (चित्र 107) का उपयोग ग्राम तौर पर उन बच्चों में करते हैं जिन में ग्रस्थायी संकीर्णता रहती है, जैसे डिप्थीरिया, भ्रमपूर्ण क्रूप में कीड़ों के काटने पर लैरिंक्स में इडिमेटस प्रतिक्रिया होने पर, तथा कौटराइजेशन (प्रदाहन) ग्रादि में। नलिका-प्रवेशन में बच्चे को उसी प्रकार बिठाते हैं जैसे एडिनोटोमी में। एक खोखली धातु-नली को एक विशेष यंत्र, जिसे इनट्यूबेटर कहते हैं, के साथ (चित्र 108 तथा 109) लैरींजियस छिद्र में लैरिंक्स में ग्रग्र उंगली को घुसाने के साथ, डालते हैं ग्रगर नली लैरिंक्स में घुस गयी हो तो खांसी ग्रायेगी तथा नली के जरिये मुक्त श्वसन
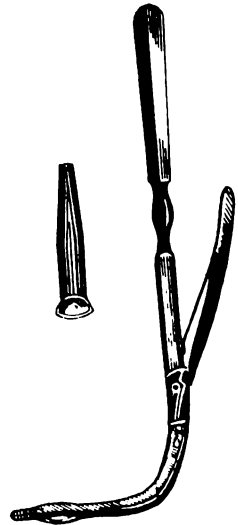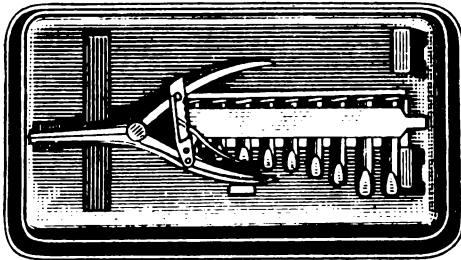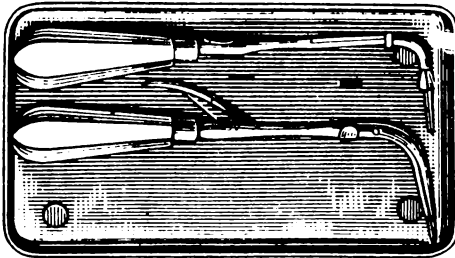
चित्र 108. लैरिंजीयस नलिका प्रवेशन सेट: गैग, नलिका प्रवेशक, एक्सक्यूबेटर तथा विभिन्न व्यासों वाले नलिका प्रवेशनों का संचय

चित्र 109. नलिका प्रवेशन नली तथा इन्ट्यूबेटर

क्रिया खास तरह की सीटी की आवाज के साथ होगी। नली को आसानी से हटाने के लिये इसको पहले से ही एक सिल्की धागे से बांध देते हैं जिसका मुक्त सिरा गाल से एक एडहेसिव प्लास्टर के जरिये चिपका रहता है। नलिका-प्रवेशन असुविधाजनक होता है, क्योंकि लैरिंक्स में व्रण से बचने के लिये 24-36 घंटों में नलिका को हटाना पड़ता है। दूसरी असुविधा यह है कि इस में चिकित्सक द्वारा लगातार ध्यान देने एवं देखभाल करने की आवश्यक्ता पड़ती है, क्योंकि खांसने या वमन करने पर नली आसानी से बाहर निकल आ सकती है तथा बेचैन बच्चा इसे धागे से आसानी से खींच सकता है। फिर भी श्वास-प्रणाल छेदन के मुकाबले इसमें ज्यादा फायदा है क्योंकि यह ज्यादा जल्दी किया जा सकता है। अतः इसमें कम सहायकों की आवश्यकता होती है।

## श्वसनप्रणाल-छेदन

क्रूप, लैरिंजीयल ईडेमा, आगंतुक शल्य, अर्बुद आदि के द्वारा किये गये श्वासप्रणाल के ऊपरी भाग या लैरिंक्स के गहरी संकीर्णता की स्थिति में श्वास-प्रणाल-छेदन का शस्त्रकर्म करते हैं, क्योंकि उपयुक्त हालतों में रोगी की जिन्दगी खतरे में पड़ी रहती है। सभी चिकित्सकों को फिर चाहे वे किसी भी विशेषज्ञता वाले क्यों न हों, यह शस्त्र कर्म ( श्वासप्रणाल-छेदन ) करने में सक्षम होना चाहिए।
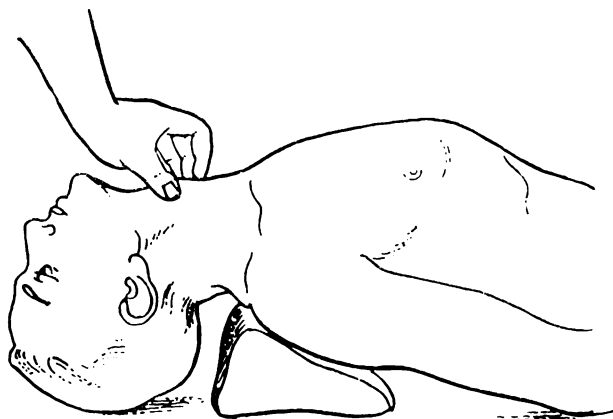
चित्र 110. श्वास-प्रणाल-छेदन में रोगी की स्थिति

लैरिंजीय संकीर्णता का सब से ग्राम ग्रौर प्रारंभिक लक्षण प्रश्वसन कष्ट होता है जिसमें विशिष्ट प्रकार का ग्रवरोध वायु के फुफ्फुस में ग्रबाध प्रवेश से होता है।

संकीर्णता की तीन ग्रवस्थांए होती हैं। प्रथम या तथाकथित क्षतिपूर्ति ग्रवस्था में श्वसन-पेशियों में तेज गतिविधि होती है जिस के द्वारा रोगी वायु की कमी की क्षतिपूर्ति करने की कोशिश करता है। इस ग्रवस्था में श्वसन गहरा होता है तथा निश्वसन के बीच का क्रियावैज्ञानिक ठहराव समाप्त हो जाता है। स्टेनोटिक श्वसन होता है जो काफी दूर तक, कभी-कभी बगल के कमरे तक में सुनाई पड़ता है।

फिर ग्रौक्जीलियरी (सहायक) पेशियां ग्रपना काम शुरू करती हैं तथा ग्रन्तरापर्शुका-ग्रवकाश के क्षेत्र के बीच में भरे हुए ऊतक ग्रन्दर की तरफ खिंच जाते हैं। कुछ समय बाद ये संचय काफी नहीं रह जाते हैं तथा दूसरी ग्रवस्था, जिसे क्षति-ग्रपूर्ति कहते हैं, की शुरूग्रात होती है। त्वचा, खास तौर पर चेहरे की त्वचा, श्याव हो जाती है ग्रौर बाद में स्पष्टतौर पर पीली पड़ जाती है। रोगी बेचैन होता जाता है ग्रौर ग्रनैच्छिक रूप से वायु की कमी को पूरा करने के प्रयास में मुंह खोलने लगता है। उसका श्वसन तेज होने लगता है ग्रौर वह ठंडे पसीने से भर जाता है।

संकीर्णता की इस ग्रवस्था में रोगी को उचित शल्यक्रिया की सहायता न दिये जा सकने से तीसरी ग्रवस्था, श्वासावरोध की ग्रवस्था शुरू हो जा सकती है। श्वसन धीमा ग्रौर छिछला हो जाता है, हृदय की गतिविधि कम हो जाती है, रोगी मुरझा जाता है ग्रौर ग्रन्त में होश खो बैठता है।

श्वास-प्रणाल छेदन संकीर्णता की दूसरी ग्रवस्था में करते हैं। जब रोगी ग्रभी क्षतिपूर्ति की ग्रवस्था में रहता है, तभी तीव्र स्थानीय शोथ को समाप्त करने तथा संकीर्णता के लक्षणों को खत्म करने के लिये जैसे रिवेल्सेंट रिमेडी का प्रयोग करके, जैसे पैरों का गर्म स्नान, मस्टर्ड प्लास्टर तथा 40 प्रतिशत ग्लूकोज घोल का ग्रन्तर्शिरा ग्राधान द्वारा ग्रनेक उपचारार्थ कदम उठाने चाहिए। इस बीच रोगी पर नजदीक से चिकित्सा निगरानी रखी जानी चाहिए ताकि द्वितीयक ग्रवस्था में उसके संक्रमण पर ध्यान रखा जा सके। हालांकि बहुत बार शस्त्रक्रिया तीसरी ग्रवस्था में करनी पड़ती है। ग्रनुभव ने साबित किया है कि इस ग्रवस्था में भी समय खोये बिना किया गया श्वासप्रणाल-छेदन एक जीवन को बचा सकता है।
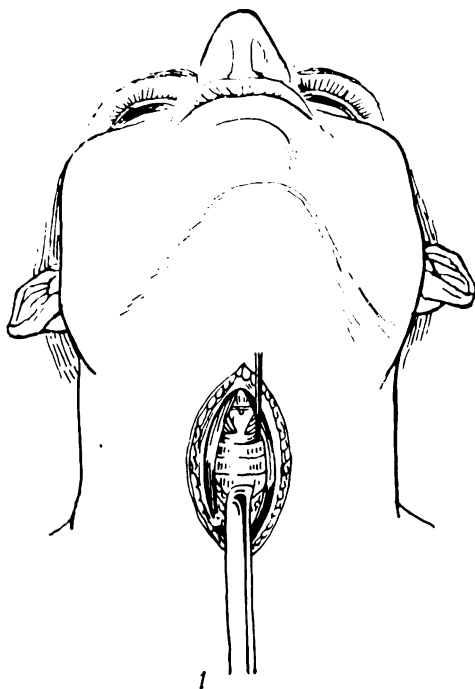
चित्र 111. श्वास-प्रणाल-छेदन
(1) श्वास-प्रणाल-उपास्थियों का अनावरण ; (2) खुला हुआ श्वासप्रणाल जिसमें श्वास-प्रणाल-छेदन की नली घुसी हुई है।

श्वासप्रणाल-छेदन ऊर्ध्व या निम्न हो सकता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि श्वास-प्रणाल को थाइरोइड ग्रन्थि के इस्थमस के ऊपर खोला जाता है या नीचे। रोगी को शल्यक्रिया की मेज पर कन्धों को गोलाकार ऊंचे तकिये पर ऊपर उठाकर और सिर को काफी पीछे मोड़ कर रखा जाता है (चित्र 110)। त्वचा तथा उपरिस्थ ग्रैव प्रावरणी का ग्रीवा के ठीक मध्य रेखा में छेदन करते हैं तथा छेदन को थाइराइड उपास्थि के निचले किनारे से 6 सें० मी० नीचे की तरफ ले जाते हैं। फिर क्रीकोइड उपास्थि के सामने के तल का ठीक मध्य लाइन में मंद उपकरण से अनावरण करते हैं, नीचे स्थित थाइरोइड इस्थमस के कैप्सुल में अनुप्रस्थ छेदन करते हैं तथा इस्थमस को नीचे ढकेल देते हैं ताकि प्रथम श्वासप्रणाल-

*2*
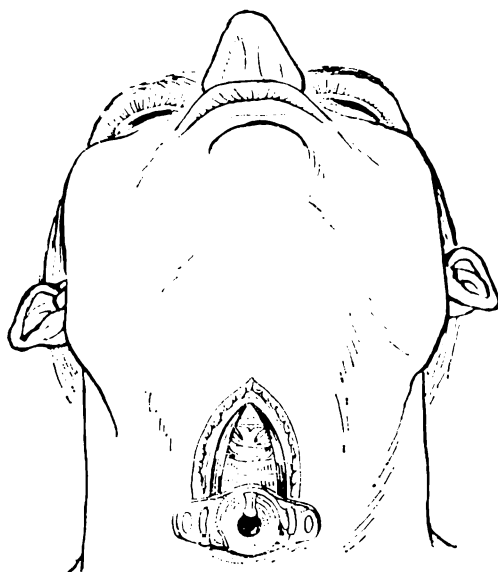
वलय अनावृत हो जाये। रक्तस्राव रुकने पर दो या तीन श्वासप्रणाल-वलयों को तेज स्काल्पेल से काटते हैं ताकि श्वासप्रणाल-छेदन में नली को घुसाया जा सके। ये धातु नलिकाएं होती हैं जो जुड़ी होती हैं और एक के अन्दर दूसरी घुसी होती है। नली को डालने के बाद खूब कफोत्सारण होता है तथा उसके बाद शांत श्वसननली को ग्रीवा में लगी एक बैण्डेज से बांध देते हैं, तथा छेदन का एक दो टांका नली के ऊपर तथा नीचे देकर सियन कर देते हैं ( चित्र 111 *1*, *2*, तथा चित्र 112 )।

शस्त्रकर्म आम तौर पर स्थानिक संवेदनाहरण से करते हैं, मगर श्वासावरोध की स्थिति में, जहां समय बहुत ही महत्वपूर्ण कारक होता है किसी संवेदनाहरण का प्रयोग नहीं करते ; ऐसे रोगियों में कार्बन मोनोक्साइड मादकता के कारण आम संवेदनाशीलता काफी कम हो जाती है। पहले तीन और चार रोज के दौरान पूरी नली को अपने स्थान से श्वासप्रणाल-छेदन मार्ग में शोथ ईडिमा तथा इसके तेजी से संकीर्णन को दृष्टिगत रखते हुए, हटाने का प्रयास नहीं किया जाता है। इन केसों में नली श्वासप्रणाल तथा
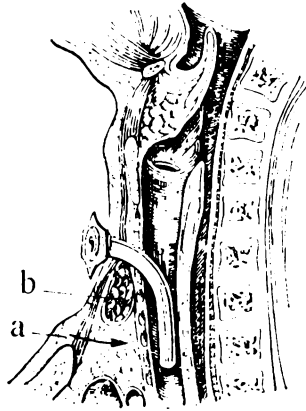
चित्र 112. ऊर्ध्व श्वास-प्रणाल-छेदन

(a) तीर का निशान निम्न श्वास-प्रणाल-छेदन में खोलने के बिन्दु को दिखाता है; (b) थाइरोइड का इस्थमस

उसके चारों ओर की पेशियों अथवा ईसोफेगस के बीच निवेशित रह सकती है।

आपात सहायता का संगठन तथा श्वासप्रणाल-छेदन के बाद की देखभाल. संकीर्णता हुए रोगी को समय पर और उपयुक्त सहायता पहुंचाने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक शल्यक्रिया कार्यालय तथा संक्रामक रोगों के केन्द्र में श्वासप्रणाल-छेदन के उपकरणों का एक पूर्ण विसंक्रामित सेट उपयुक्त एन्टीसेप्टिक अवस्था में तैयार रहे। इस सेट में ब्लन्ट तथा तेज हुक, कुछ आर्टीरियल क्लैम्प, दो शल्यक्रिया पिंसर तथा दो एनाटोमिकल पिंसर, विभिन्न आकारों की श्वासप्रणाल-छेदन की नलिकाएं, श्वासप्रणाल-छेदन से घाव के लिये एक रिट्रेक्टर, एक निडल-होल्डर, सूई तथा विसंक्रामित धागे के साथ एक ग्रूव्ड डाइरेक्टर तथा बहुत से स्काल्पेल होने चाहिए (चित्र 113)।

प्रत्येक शस्त्रकर्म-कक्ष में इस प्रकार का पूर्ण सेट होना चाहिए जो बराबर उपयोग के लिये तैयार रहे तथा उसपर पहचानने के लिये एक टैग रहना चाहिए। इसके अलावा 0.5 प्रतिशत नोवोकेन घोल तथा एक विसंक्रामित सिरिंज कई सूइयों के साथ उपलब्ध रहनी चाहिए ताकि अगर समय हो तो स्थानिक संवेदनाहरण का उपयोग किया जा सके। श्वासप्रणाल-छेदन

नली का उपयोग करने के पहले यह देख लेना चाहिए कि यह अपने प्लेट से अच्छी तरह बंधी हुई हो तथा आन्तरिक नली ठीक स्थान पर हो और उसको आसानी से निकाला जा सकता हो।

श्वासप्रणाल-छेदन के बाद खासकर शस्त्रकर्मोत्तर अवधि के शुरू के दिनों में रोगी पर अत्यन्त सावधानी से ध्यान रखना चाहिए।

यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि श्वासप्रणाल-छेदन नली सूखे श्लेष्मा या डिप्थेराइटिस फाल्स मेम्बरेन्स से अवरुद्ध न हो जाये जो श्वसन में बाधा उपस्थित कर सकता है।

इस उद्देश्य के लिये नली में विसंक्रामित वनस्पति तेल की 2-3 बूंदें हर दो-तीन घंटे पर डालते रहते हैं। शस्त्रकर्मोत्तर अवधि के शुरू में आन्तरिक नली को दिन में 2-3 बार निकालते हैं, तथा उसे, रूई के एक टुकड़े से, जो लचकीले सूत्रित प्रोब पर लगा होता है, साफ करते हैं और उसे उबलते पानी में विसंक्रामित करते हैं।

उबलते पानी से विसंक्रामित करने के बाद नली को सुखाते हैं, द्रव पेट्रोलेटम से चिकना करते हैं तथा फिर बाहरी नली में घुसा देते हैं। शस्त्रकर्मोत्तर अवधि के शुरू के दिनों में श्वास-प्रणाल से श्यान स्राव की उपस्थिति में भीतरी नली को इस प्रकार से प्रति दिन कुछ साफ करते हैं। श्वास-प्रणाल का सूखना कम करने की विधि के तौर पर वार्ड में हवा को आर्द्र बनाने के लिये एक भीगी हुई चादर को वार्ड के चारों ओर फैलाते हैं या एक छोटा भीगा हुआ वर्गाकार गाज नली के ऊपर टांगते हैं। बाहरी श्वासप्रणाल छेदन नली को एक प्रशिक्षित चिकित्सक द्वारा ही बाहर निकाला जाना चाहिए।

श्वासप्रणाल-छेदन नली के नीचे ग्रीवा की त्वचा के क्षोभ या मैसिरेशन से रोगी द्वारा कफोत्सारण रोकने के लिये कदम उठाने चाहिए। इस उद्देश्य से नली के चारों ओर की त्वचा को पेट्रोलेटम या लैसर पेस्ट से चिकना कर लेते हैं। एक वर्गाकार गाज को नली के नीचे, उस को बाहर निकाले बिना रखते हैं और फिर उसे तैल-त्वचा से आच्छादित करते हैं तथा ग्रीवा से दूर के हिस्से से बांध देते हैं। गाज को बदलते रहना चाहिए, क्योंकि यह खराब हो जाता है।

बहुत ही जोर की खांसी से रोगी के हिलने-डुलने से ढीले से फिक्स की हुई श्वासप्रणाल-छेदन नली बाहर गिर जा सकती है। अगर यह शुरू के दिनों में होता है यानी स्थायी क्षणांकुर चैनेल के बनने से पहले, तो
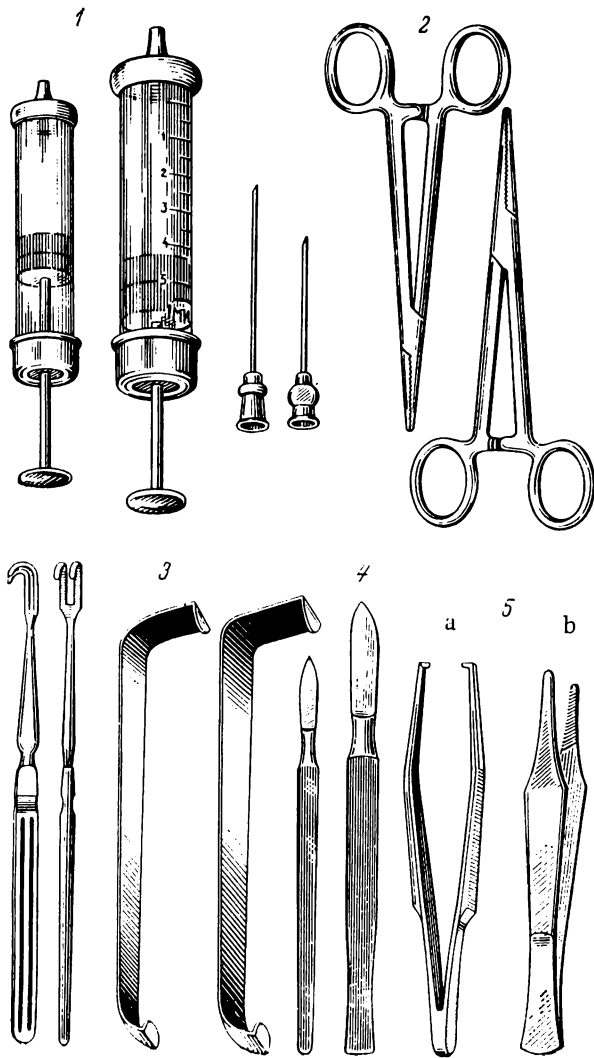
चित्र 113. श्वास-प्रणाल-छेदन के लिए उपकरणों का सेट
(1) संवेदनाहरण के लिए सुइयों के साथ सिरिंज; (2) रक्तस्तंभक फारसेप्स; (3) घाव चौड़ा करने के लिये तीक्ष्ण तथा कुंठित रिट्रेक्टर्स (4) स्कालपेल्स; (5) पिंसर्स; (a) – शल्यक्रिया के लिए; (b) –एनाटोमीकल;
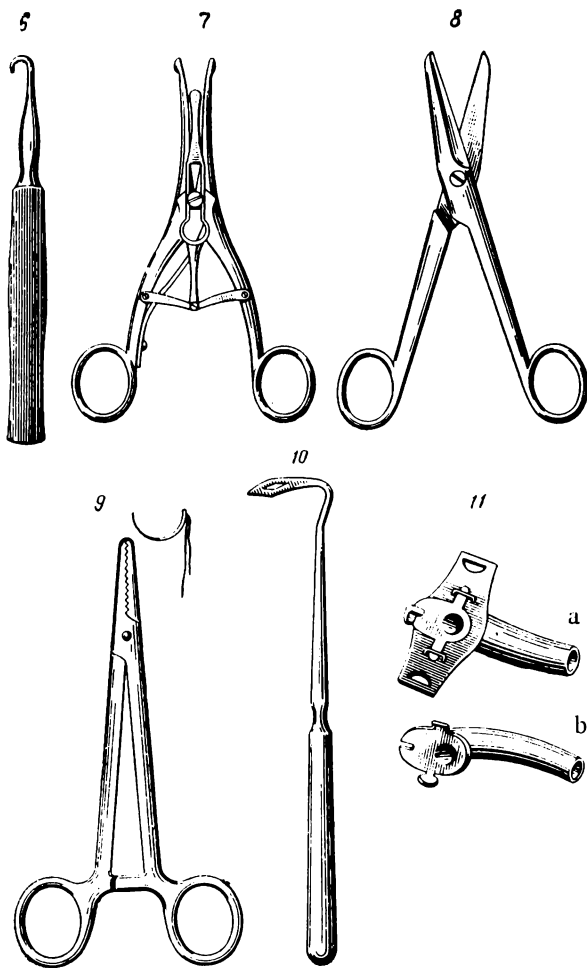
(6) श्वास-प्रणाल के स्थिरीकरण के लिए तेज हुक ; (7) श्वास-प्रणाल-छेदन घाव के लिए ट्रसो डाइलेटर ; (8) शल्यक्रिया कैंची ; (9) सुई के साथ निडल होल्डर ; (10) लिगेचर निडल ; (11) श्वास-प्रणाल-छेदन नली, (a) बाहरी, (b) भीतरी

श्वासप्रणाल-छेदन रिट्रेक्टर की सहायता से ही टांके को ढीला करके तथा हुक के उपयोग से घाव के ओष्ठों को अलग करके, नली को दुबारा घुसाना चाहिए।

श्वास-प्रणाल में बहुत बड़ा छेदन तथा त्वचा के कटे स्थान पर पूर्ण टांका लगाने से अघस्त्वक वात-स्फीति हो जाती है जो जोरदार खांसी से प्रोत्तेजित होती है। यह अवस्था ग्रीवा में खूब सूजन प्रभावित क्षेत्र का परिस्पर्शन करने पर हवा के बुलबुलों की गति के कारण उत्पन्न विशिष्ठ क्रैकिंग ध्वनि से पहचानी जाती है। ऐसी स्थितियों में घाव के टांकों को थोड़ा ढीला कर देना चाहिए तथा खांसी दूर करने के लिये कोडीन या डायोनीन देनी चाहिए।

श्वासप्रणाल-छेदन नली को तभी हटाना चाहिए जब लैरिंक्स का एक स्वत्व दुबारा वापस हो जाये, जिसका पता लैरिंजोस्कोपी तथा क्रियात्मक परीक्षणों से चलता है। ये परीक्षण श्वासप्रणाल-छेदन नली की प्लगिंग करके किये जाते हैं। तब अगर स्वाभाविक वायु-मार्ग से श्वसन संतोष-जनक रहता है तो श्वासप्रणाल-छेदन नली को हटाने का प्रयास कर सकते हैं तथा एक बन्डेज लगा देते हैं। इसी बीच एक विसंक्रामित श्वासप्रणाल-छदन नली तथा एक डाइलेटर तैयार रहना चाहिए ताकि आवश्यक होने पर क्षत को चौड़ा करके नली को दुबारा घुसाया जा सके।

## लैरिंक्स, श्वासप्रणाल तथा श्वसनी में आगंतुक शल्य

चिल्लाने, बातचीत करने, हंसने, खाने या वमन करने तथा वायु के अचानक प्रश्वसन से मुंह होकर लैरिंक्स, श्वास-प्रणाल तथा श्वसनी में विभिन्न आगंतुक शल्य प्रवेश कर सकते हैं। यह तरह-तरह की चीजें हो सकती हैं जैसे, सूर्यमुखी फूल के बीज, डेन्चर, ड्राइंग-पिन, बटन, अस्थि आदि।

लैरिंक्स तथा श्वसनी में आगंतुक शल्य का प्रमुख लक्षण है—बार-बार होने वाली कन्वल्सिव खांसी का प्रवेग तथा श्वासावरोध का आक्रमण। फेफड़ों की प्रारंभिक शारीरिक परीक्षा आम तौर पर कोई भी परिवर्तन दिखाने में असफल रहती है।

ऐसे आगंतुक शल्य जो ग्लौटीस से गुजर गये हैं सामान्यतः श्वास-प्रणाल से हो कर किसी प्रमुख श्वसनी में घुस जाते हैं। पांच में चार आगंतुक
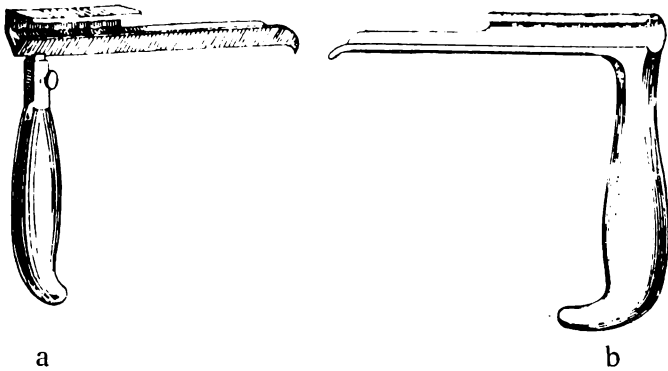
चित्र 114.
(a) तिखोमिरोव का स्पैचुला ;
(b) उंड्रिट्स का स्पैचुला

शल्य दाहिने श्वसनी में पहुंच जाते हैं जो कि चौड़ा होता है तथा श्वास-प्रणाल की वर्टिकल दिशा से कम विचलित होता है। कुछ हल्के और चिकने आगंतुक शल्य प्रत्येक खांसी के झटके के साथ श्वास-प्रणाल के ऊपर तथा नीचे उछलते हैं तथा वोकल कोर्ड के निचले तल से टकरा कर विशिष्ठ फ्लैपिंग ध्वनि पैदा करते हैं। कभी-कभी माता-पिता सही इतिवृत्त नहीं बता पाते हैं तथा चिकित्सक पर ही यह जिम्मेदारी आ पड़ती है कि वह निश्चय करे कि आगंतुक शल्य श्वसनी में है या ईसोफेगस में।

ईसोफेगस में आगंतुक शल्यों से आम तौर पर खांसी के बजाए सिर्फ दर्द, दबाव का एहसास तथा निगरण कष्ट होता है जबकि श्वास-प्रणाल और श्वसनी में आगंतुक शल्य सब से अधिक श्वसन-विकार पैदा करते हैं। आगंतुक शल्यों की वजह से, जो ग्लौटिस में चिपके रहते हैं, स्वररूक्षता या एफोनिया हो जाते हैं जो कि उसके और अन्दर चले जाने की स्थिति में नहीं होते। किसी भी प्रमुख श्वसनी में आगंतुक शल्य की वजह से निर्भर भाग में फुफ्फुस-अनुन्मीलन तथा विपरीत भाग में एम्फाइजेमेटस-विस्तार हो जाता है जिसका पता परिताड़न तथा परिश्रवण और एक्स-रे फोटोग्राफी से चलता है। धातु आगंतुक शल्य होने की स्थिति में एक्स-रे परीक्षण निदान में मदद पहुंचाता है। ब्रांकोस्कोपी का उपयोग निदान को साबित करने तथा साथ ही आगंतुक शल्य को निकालने में किया जाता है। लैरिंक्स

में आगंतुक शल्य तथा श्वास-प्रणाल और श्वसनी में गतिशील आगंतुक शल्य के लिये ब्रांकोस्कोपी के स्थान पर एक हल्की विधि का, जिसे सीधी लैरिंजोस्कोपी कहते हैं, तिखोमिरोव या उंड्रिट्स स्पैचुला की सहायता से प्रयोग करते हैं। स्पैचुला को एपीग्लौटिस के बाद तक ले जाकर इसे बाहर की तरफ धकेलते हैं (चित्र 114 a, b)। श्वसनी में आगंतुक शल्य की कुछ देर तक उपस्थिति से इसका पता लगाने में कठिनाई होती है।

प्रथम आवश्यकता होती है ब्रांकोस्कोपी करना, क्योंकि इसके बिना रोगी कई प्रकार के उपद्रवों जैसे द्वितीयक न्यूमोनिया या फुफ्फुस विद्रधि से वहुधा मर जाते हैं।

रोग-निरोध. यह भाषणों के द्वारा माता-पिता व शिशुकल्याण-केन्द्रों पर काम करने वाले व्यक्तियों को स्वास्थ्य शिक्षा देने के रूप में होना चाहिए। बच्चों पर लगातार नजर रखने की जरूरत पर अवश्य ही जोर दिया जाना चाहिए। उन्हें छोटी वस्तुओं, जैसे सूर्यमुखी के बीज, मटर, सेदार नटस आदि के साथ खेलने न दिया जाय तथा मुंह में वस्तुओं को उठा कर रखने की गन्दी आदत छुड़ानी चाहिए। बच्चों के खाने में छोटी अस्थियां या कांटे तथा कच्चे अन्न पदार्थ नहीं होने चाहिए; उदाहरण के लिये तरबूज या नारंगी खिलाते समय उनके अन्दर का बीज निकाल देना चाहिए। खिलाने के समय बच्चों का अचानक ध्यान बंटाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

लैरिंक्स में मुक्त तरह से घूमने वाले आगंतुक शल्य वाले बच्चों को बैठी हुई अवस्था में ही ले जाना चाहिए ताकि आगंतुक शल्य का विस्थापन न हो जाये जिससे श्वासावरोध हो सकता है।

# ऊर्ध्व श्वसन-पथ की अभिघातज विक्षतियां

## नाक एवं परानासा-विवरों की चोट

नाक का उद्वर्तन और इसकी संरचना की भंगुरता सामान्य अवस्थाओं में भी अनेक नासा-आघातों के कारण होते हैं। नाक और परानासा विवरों की अंत:विक्षतियां तथा बन्दूक की गोली से हुए घाव आम तौर पर रक्त-स्राव करते हैं और चेहरे के कुछ हिस्सों में विरूपता पैदा कर देते हैं। नाक में चोट के परिणामस्वरूप नासा मार्गों में परिवर्तन के कारण बहुधा क्रियात्मक विकार हो जाते हैं, तथा वाह्य नासा और चेहरे की विरूपता

के कारण चेहरे में दोष उत्पन्न हो जाते हैं। अभिघात के तुरन्त बाद दोषों को दूर करने के लिये इस्तेमाल की गयी साधारण विधियां बाद में प्लास्टिक सर्जरी की जरूरत को कम कर देती है।

सिर्फ नाक और परानासा विवरों में बन्दूक की गोली के घाव कम सामान्य होते हैं तथा इस क्षेत्र के संयुक्त घाव ज्यादा होते हैं, जिसमें एक साथ कपाल गुहा, नेत्रसौकेट टेरिगोपैलेटाइन या इन्फ्राटेम्पोरल खात आदि शामिल रहते हैं।

अंत:विक्षतियां कोमल ऊतकों की चोटें, नाक के अस्थिय तथा उपास्थिय ढांचे में साधारण तथा कठिन विभंग हो सकती हैं। चेहरे की अंतर्विक्षतियों में नाक और परानासा विवरों के छिपे हुएँ आघात शामिल होते हैं।

इन केसों में नासास्थि के स्वतंत्र किनारे के छोटे विभंगों से उपास्थि विरूपता नहीं होती और इनका पता पारस्पर्शन करके अवदाब का पता चला कर तथा कभी-कभी क्रेपिटेशन से और ज्यादातर एक्स-रे परीक्षण करके लगाते हैं। अधिकांशत: चोट नासास्थि में लगती है, जबकि फ्रन्टल मैक्ज़ी-लरी प्रोसेसेज़ में चोट कम ही पायी जाती है। नासा पट में चोट से यह विचलित हो सकता है, इसका विस्थापन और विभंग हो सकता है और इसमें विदर हो सकते हैं। ऐसी स्थितियों में नासा तल के अस्थिय भाग में हानि की संभावना कम रहती है। नाक के कार्टिलेजीनस भाग में चोट होने पर उपास्थि के लचकीला होने की वजह से नाक में, विरूपता की बहुत कम संभावना रहती है। नाक की विरूपता में, उपास्थि वाला हिस्सा, अस्थिय हिस्से के बाद ही विरूप होता है तथा अस्थिय हिस्से की विरूपता का ठीक कर दिया जाना उपास्थि वाले हिस्से को अपने सामान्य स्थान पर पहुंचाने के लिये पर्याप्त होता है। वाह्य नासा के सभी अन्य प्रकार के अस्थि विभंगों को कुछ विशिष्ट प्रकारों में बांटा जा सकता है।

नासा डौर्सम की फ्रन्टल चोट में नासास्थि का लम्बाई में विभंग होता है तथा डौर्सम के नाक के अस्थिय तथा आंशिक तौर पर उपास्थिय हिस्से में चले जाने के कारण, नाक चपटी हो जाती है। नासा-पट में काफी विरूपता आ जाती है या इस का विभंग हो जाता है और हिमेटोमा बन जाता है व श्लेष्मा-कला का विदार हो जाता है। एक्स-रे परीक्षण करके विभंग के प्रकार को निश्चित करते हैं।

ऐसे बच्चों में, जिनमें अस्थि सीवन की संसक्ति कम होती है, नासा अस्थियां तथा ललाट प्रवर्ध अलग हो जा सकते हैं। नाक और भी धंसा

हुआ दिखाई पड़ता है तथा ललाट प्रवर्धों के किनारे नाक के धंसे हुए हिस्से के पार्श्वों में महसूस किये जा सकते हैं। नासा-दर्शन से नासा पट की संधि च्युति या अस्थि भंग दिखता है।

नाक के पार्श्विक विस्थापन ज्यादा सामान्य होते हैं। नासास्थि और फ्रन्टल प्रोसेसेज़ के बीच का सीवन प्रभावित हिस्से में अलग हो जा सकता है, जबकि फ्रन्टल प्रोसेसेज़ का विभंग विपरीत हिस्से में होता है। इस के साथ नासा-पट का विभंग तथा फ्रन्टल सीवन से नासास्थि का विस्थापन हो सकता है।

बन्दूक की गोली के बड़े घावों या छुरे के घावों से नाक तथा चेहरे की त्वचा में खरोंच आ जाती है तथा नासा-उपास्थि तथा पार्श्विक अस्थिय भाग चूर्ण हो जाते हैं। दूर से दागी गयी गोली से एक क्षत मार्ग बन जाता है जिसका निकास-छिद्र प्रवेश-द्वार से बराबर बड़ा होता है।

गोली के मार्ग तथा छिद्रों की स्थिति प्रोबिंग किये बिना ही नासास्थि फ्रेम तथा परानासा विवरों में चोट के आकलन के संभव बना देते हैं। नजदीक से दागी गयी गोली से और भी बड़ा अभिघात हो सकता है जिसमें चेहरे के कोमल ऊतकों तथा अस्थि भाग का अपदारण हो जाता है। ऐसी स्थिति में संपूर्ण वाह्य नासा या इसके अलग-अलग हिस्से जैसे नोक तथा पृष्ठ विरूपित हो जा सकते हैं, तथा साथ ही परानासा-विवर भी निश्चित तौर पर प्रभावित होते हैं।

नाक में चोट के लक्षण हैं (1) शॉक, (2) नासा रक्तस्राव जो कुछ बुन्द से लेकर जान लेवा रक्त-हानि तक हो सकता है, (3) नाक तथा उससे सटे हुए चेहरे के हिस्सों में दर्द, सूजन तथा रक्तस्राव, (4) नाक की छत में चोट पहुंचने के कारण क्रीब्रीफार्म प्लेट में विदर के द्वारा मस्तिष्क मेरु तरल का निकलना।

त्वचा कुछ स्थानों पर टुटी-फूटी हो सकती है, जबकि नासा-श्लेष्मा के विदार से तथा नाक को काफी जोर से छिड़कने पर अधस्त्वक वात-स्फीति हो सकती है। त्वचा की ईडिमा तथा श्लेष्मा की सूजन तेजी से बढ़ती है तथा विभंग के एकदम सही निदान में बाधा पहुंचाती है।

<u>निदान</u>. नासा की विस्तृत चोट, जिसमें नासा अस्थिय फ्रेम का विभंग भी हो, का निदान आसान होता है तथा मुख्यतः यह एक्स-रे परीक्षण पर आधारित होता है।

<u>उपचार</u>. संवृत चोटों में पहला कदम होता है, जितना जल्दी संभव

हो रक्तस्राव को बन्द करना तथा ग्रस्थि उपभंगों को जितना ग्रधिक संभव हो, कम करना। नाक के हल्के रक्तस्राव को, नाक को हाइड्रोजन पेरोक्साइड या एड्रेनालीन के साथ कोकेन के 2 प्रतिशत घोल से भिगोए हुए टेम्पन से प्लग करके रोका जा सकता है। बाद के टेम्पन का प्रयोग न सिर्फ रक्तस्राव रोकने के लिये, बल्कि ग्रस्थि उपभंगों को उनके सामान्य स्थान पर सेट करने के लिये किया जाता है।

ग्रांतरिक रूप से इसे नासा गुहा की ठीक से पैकिंग करके किया जाता है ग्रौर वाह्य रूप से गाज के रोल्स को नाक के दोनों तरफ लगाकर जो ग्रपने स्थान पर एडहेसिव प्लास्टर की पट्टियों के द्वारा रखे जाते हैं, या क्लीयोल ग्राच्छादित गाज या ठीक से कसी हुई बैन्डेज द्वारा।

ग्रगर ऊतकों के ज्यादा ईडिमा से ठीक-ठीक स्थान निर्धारण कठिन हो तो विभंग को 2-3 दिन के बाद ठीक करने का प्रयास करना चाहिए। नासा-पट के हेमोटोमा में एक बड़े छेदन की तुरन्त जरूरत होगी, जिसके बाद विद्रधि बनने को रोकने तथा सेप्टल उपास्थि को नष्ट होने से बचाने के लिये नाक की प्लगिंग करते हैं। ग्रस्थि प्रभंगों को कम करने के लिये कोई कदम उठाने से पूर्व एक ग्रौर एक्स-रे परीक्षण ग्रावश्यक है। विवृत क्षत के फटे तल से किसी प्रकार के रक्तस्राव को, कसी हुई ड्रेसिंग द्वारा, प्राथमिक उपचार के नियमों के ग्रनुसार, ग्रथवा क्षत में बड़ी वाहिकाग्रों का बंधन करके रोकते हैं।

नासा-गुहा से बहुत ज्यादा रक्तस्राव को रोकने के लिये ग्रग्र नासा टैम्पोनेड का प्रयोग करते हैं ग्रौर इसके ग्रपर्याप्त साबित होने पर पश्च टैम्पोनेड का।

बहुत ज्यादा रक्तस्राव को जिसमें संरक्षी उपचार ग्रसफल रहता है ग्रौर जीवन के लिये खतरा पैदा हो जाता है, रक्त संभरण वाहिकाग्रों का, यानी वाह्य कैरोटिड धमनी, ग्रौर यहां तक की सामान्य कैरोटिड धमनी का भी, बंधन करके रोकते हैं। बाह्य फिस्चुलों की उपस्थिति में, जो एक या दूसरी साइनस से पूय का ग्रास्राव करती है, सामान्यत: समूल शस्त्र-कर्म की जरूरत रहती है।

नाक तथा परानासा विवरों, साथ ही चेहरे के घाव उनके ग्रत्यधिक रक्त-संभरण के कारण जल्दी भर जाते हैं।

भरने पर घाव ग्राम तौर पर कुछ सीमा तक नासावरोध तथा नासा विरूपता छोड़ जाता है जिसे कोसमेटिक शल्य क्रिया से ठीक किया जा सकता है।

**नासा ग्रसनी के घाव.** नासा ग्रसनी के गोली क्षत आम तौर पर संयुक्त होते हैं। गोली या छर्रे नासा गुहा या हिग्मोर के एन्ट्रम और कभी-कभी आंख के सौकेट या मैस्टाइड प्रवर्ध से गुजरते हुए नासा-ग्रसनी में पहुंचते हैं। ग्रीवा के एक तरफ से नुकसानदेह मिसाइल्स के नासा-ग्रसनी में घुसने के तुलनात्मक तौर पर बहुत कम मामले देखे गये हैं।

लक्षण. ये सामान्य प्रकार के होते हैं और अधिकांशतः साथ में हुई हानि, जैसे मस्तिष्क को चोट या कनकसन या बड़ी वाहिकाओं में चोट, के द्वारा पहचाने जाते हैं। सामान्य लक्षणों में सब से मुख्य शॉक है। स्थानीय लक्षण हैं: (1) नाक या मुंह से रक्तस्राव तथा रक्त का वमन जो कुछ अन्तराल पर कुछ मात्रा में निगल लिया गया होता है; (2) जमे हुए खून द्वारा और कभी-कभी अस्थि प्रभंगों द्वारा या स्वयं नुक्सानदेह वस्तु द्वारा अवरुद्ध नासा-मार्ग के कारण नासा-श्वसन में अवरोध; (3) कोमल पैलेट-पेशियों तथा ऊर्ध्वग्रसनी-संकीर्णता में चोट की वजह से निगरण कष्ट; (4) नासिक स्वर; (5) ऊपरी ग्रैव कशेरूका तथा कभी-कभी भीतर स्थित ग्रैव पेशियों पर चोट लगने के कारण सिर को मोड़ने या नीचे करने में दर्द।

प्रमुख उपद्रवों में से एक है कान में विकार हो जाना, जो यूस्टेशियन नली द्वारा नासा-ग्रसनी से कान में द्वितीयक संक्रमण के चले जाने के कारण होता है। नासाग्रसनी के संयुक्त घाव, जिनमें स्फिनाइड साइनस तथा मेरुदण्ड शामिल रहते हैं, खासतौर पर खतरनाक होते हैं। विदरों का बनना, जो कि कपाल गुहा में पहुंचते हैं, खतरनाक अन्तःकपाल उपद्रव पैदा कर सकता है।

निदान. यह शारीरिक परीक्षण तथा मुख्यतः एक्स-रे परीक्षण से किया जाता है।

उपचार. सामान्य उपचार में प्रथम कदम हैं एंटी-शॉक चिकित्सा, टेटनस से बचाव तथा रक्त-हानि की क्षति पूर्ति। स्थानीय उपचार बहुधा पश्च टैम्पोनेड से, रक्तस्राव रोकने से शुरू होता है। बहुत खतरनाक केसों में वाह्य कैरोटिड और कभी-कभी सामान्य कैरोटिड धमनी को बांधने की जरूरत पड़ सकती है। आगंतुक शल्य को मुंह, नाक और कुछ मामलों में मैक्सीलरी साइनस से हो कर निकाल लेना चाहिए। आसान पहुंच पर

स्थित आगंतुक शल्य को तुरन्त हटा देना चाहिए। ऐसे आगंतुक शल्य, जिस तक पहुंच कठिन हो, को निकालने का निर्णय तभी लिया जा सकता है, जब इसके बने रहने और उसकी वजह से पैदा हो सकने वाले क्रियात्मक विक्षोभों का शल्यक्रिया के करने के खतरों की तुलना में, अनुमान लगा लिया गया हो।

**मुख ग्रसनी के घाव.** ग्रसनी के मध्य भाग के गोली क्षत या तो वेधी या अन्ध होते हैं। क्षत मार्ग कई दिशाओं से गुजर सकता है। सब से ज्यादा आम अंध-घाव होते हैं, जिन में क्षत-मार्ग आम तौर पर अग्र, पश्च तथा तिर्यक दिशाओं से गुजरता है। खतरा पैदा करनेवाली वस्तुएं, जैसे बुलेट या छर्रे, पश्च ग्रसनी-भित्ति और ग्रीवा के कोमल ऊतकों के बीच फंस जाते हैं।

लक्षण. सर्वाधिक सामान्य लक्षण हैं: (1) रक्तस्राव; (2) दर्द या यांत्रिक कारणों, जैसे एक अपभंग या कोमल ऊतकों के ईडिमा से होने वाला निगरण कष्ट। दुसरे लक्षण – अगल-बगल के अंगों तथा क्षेत्रों, जैसे जिह्वा ऊपरी या निचले जबड़े, कोमल तालु तथा स्पाइनल कालम में हुए घावों के कारण होते हैं।

निदान. सीधी परीक्षा में मुख ग्रसनी तक आसान पहुंच के कारण आम तौर पर कोई कठिनाई नहीं होती।

चूषण न्यूमोनिया तथा सेप्सिस जैसे उपद्रवों के खतरे पर अवश्य ही जोर दिया जाना चाहिए। बड़ी ग्रैव वाहिकाओं से द्वितीयक रक्तस्राव बहुधा रोगी की जान को खतरे में डाल सकता है।

उपचार. इसके अन्तर्गत घाव की प्राथमिक सफाई की जाती है तथा बहुधा बड़ी वाहिकाओं का वंधन करके रक्तस्राव को रोका जाता है। प्राथमिक सफाई जमे हुए खून, चूर्ण ऊतकों तथा आगंतुक शल्य को घाव से हटा कर तथा उस पर उजले स्ट्रेप्टोसाइड का पाउडर लगा कर किया जाता है। लैरिंजियल प्रवेश के शोथ ईडिमा के कारण हुए श्वसन-अवरोध को दूर करने के लिये श्वासप्रणाल-छेदन की जरूरत होती है। ग्रीवा के साफ वाह्य घावों, जिनमें टूटे हुए या चूर हो गये ऊतकों में ज्यादा नुक्सान नहीं हुआ हो, की परत दर परत सीवन इस प्रकार करते हैं: पहले श्लेष्मा, फिर पेशियां और अन्त में त्वचा।

**ग्रसनी के स्वरयंत्र भाग के घाव.** ग्रसनी के निचले भाग के घाव ज्यादा गंभीर होते हैं चूंकि वे ईसोफेगस के ऊपरी भाग तथा लैरिंक्स को भी समेट

लेते हैं। वे चूषण न्यूमोनिया और मीडीयास्टीनल कोशीकीय ऊतक की सपूयता, जिसे मध्यस्थानिका-शोथ भी कहते हैं, जैसे उपद्रवों को पैदा कर सकते हैं। ये घाव भी दो प्रमुख भागों में बांटे जा सकते हैं–वेधी तथा ग्रन्ध। लैरिंजोफैरिंक्स को प्रभावित करने वाले घावों के लक्षण हैं: निगलने, तथा कभी-कभी सांस लेने में कठिनाई, साथ ही ग्रसनी से रक्तस्राव, ग्रधस्त्वक वात-स्फीति। फ्लेगमोन्स तथा ग्रीवा में विद्रधि भी बहुधा हो जाते हैं।

निदान. ग्रसनी या ईसोफेगस में वेधी घाव का एक सीधा संकेत ग्रैव घाव से लार या चबाये हुए भोजन का निकलना है। इस चिन्ह की ग्रनुपस्थिति में, उस क्षेत्र में वेधी घाव का पता लगाना कठिन है। एक दूसरा ग्रावश्यक चिन्ह ग्रधःत्वक वातस्फीति है मगर यह लैरिंक्स ग्रौर श्वास-प्रणाल में चोट के परिणामस्वरूप भी हो सकता है, जिसमें ग्रसनी ग्रौर ईसोफेगस को चोट न लगी हो। ग्रसनी के निचले भाग के घाव का सीधा परीक्षण कठिन होता है।

इन घावों का निदान एक्स-रे परीक्षण द्वारा ग्रत्यंत सुगम हो जाता है।

उपचार. घावों का सावधान ग्रौर संपूर्ण शल्यक्रिया-उपचार कठिन उपद्रवों को रोकने के लिये एक प्राथमिक कदम होता है। रोगी को खिलाने की पद्धति बहुत महत्वपूर्ण है। सर्वाधिक युक्तिसंगत है, भोजन-नली द्वारा, कभी-कभी वाह्य घाव के जरिये पेट में खाना पहुंचाना। ग्रसनी ग्रौर ईसोफेगस के घावों के उपचार में रोगी का खयाल रखना खास तौर पर महत्वपूर्ण होता है। सल्फोनामाइड तथा पेनिसिलिन का बड़े पैमाने पर प्रयोग करते हैं।

## लैरिंक्स तथा श्वासप्रणाल की चोटें

लैरिंक्स तथा श्वास-प्रणाल को ग्रधिकांश चोटें ग्राग्नेयास्त्रों से लगती हैं, जबकि छुरे द्वारा किये गये घाव तथा ग्रन्तर्क्षतियां इन में कम ग्राम हैं। लैरिंक्स तथा श्वास प्रणाल के गोली-क्षत वेधी, ग्रन्ध तथा गटर प्रकारों के हो सकते हैं। संयुक्त घाव, जिसमें साथ-साथ जिह्वा ग्रसनी तथा ईसोफेगस को चोट लगती है, काफी ग्राम होते हैं। बड़ी ग्रैव वाहिकाग्रों तथा तंत्रिका स्कन्धों के काफी नजदीक होने के कारण इन घावों से खतरा बढ़ जाता है ग्रौर बहुधा मृत्यु का कारण होता है।

लक्षण. चोट का सब से सामान्य लक्षण है ध्वनि उच्चारण में सामान्य स्वर रूक्षता से पूर्ण अस्वरता तक विभिन्न स्तरों का विक्षोभ। लैरिंक्स तथा श्वास-प्रणाल के घावों में निगरण के समय बराबर दर्द महसूस होता है, चूंकि निगलते समय चोट लगे अंगों को गति करनी पड़ती है। लैरिंक्स के ऊपरी भाग में चोट श्वासावरोध से पता चलती है। लैरिंक्स और श्वास-प्रणाल में चोट का एक बहुधा पाया जाने वाला लक्षण है सांस लेने में कठिनाई होना। चोट के शुरू के घंटों में श्वसन में अवरोध आम तौर पर वायु-मार्ग में, रक्त के प्रवेश या तंत्रिका अवरोध, जैसे कार्टिलेज के अपभंगों, कोमल ऊतकों के स्क्रैप्स और कभी-कभी खुद हानिकारक पदार्थ से पैदा होता है। बाद में श्वसन में अवरोध लैरिंक्स तथा श्वास-प्रणाल, दोनों में तथा चारों ओर की ग्रीवा के कोमल ऊतकों में शोथज ईडिमा के पैदा हो जाने के कारण होता है। एक बहुधा पाया जाने वाला लक्षण है–खांसी, जिस के साथ-साथ ग्रीवा घाव से स्राव तथा फोमी रक्त या लार एवं रक्त मिश्रित श्लेष्मा का कफोत्सारण होता है। प्रारंभिक अवस्था में कभी-कभी ग्रीवा के घाव से वायु बाहर निलती है।

लैरिंक्स तथा श्वास-प्रणाल के घाव जिस के साथ-साथ ग्रसनी के निचले भाग तथा ईसोफेगस के ऊपरी भाग में भी चोट हो, खास तौर पर खतरनाक एवं गंभीर होते हैं। रक्तस्राव तथा श्वसन अवरोध के अलावा इस अवस्था में निगरण कष्ट एक गंभीर उपद्रव है। ऐसे घावों का एक विशिष्ट लक्षण है श्वसन पथ में भोजन का प्रवेश तथा निगले हुए भोजन एवं द्रवों का ग्रीवा के खुले घाव से निकलना। ये संयुक्त घाव बहुधा फ्लेगमोन्स परिग्रसनी विद्रधि, पेरि-इसोफेजियल विद्रधि तथा कभी-कभी मध्य स्थानिक शोथ और सेप्सिस आदि के कारण गंभीर हो जाते हैं।

ये घाव बहुधा अधस्त्वक वातस्फीति पैदा करते हैं जो आम तौर पर तब विकसित होती है जब क्षत-मार्ग संकीर्ण तथा घुमावदार होता है। ऐसे मामलों में श्वसन द्वारा क्षत-मार्ग में पंप की गयी हवा को बाहर निकलने का मार्ग नहीं मिल पाता तथा वह अधस्त्वक ऊतक में कोशिकीय अंतरावकाशों के द्वारा बेध कर जाता है। चूषण-न्यूमोनिया शुरू के उपद्रवों में से एक है। लेकिन सब से अधिक और सब से कठिन उपद्रव है संकीर्णता जो आम तौर पर चोट के कुछ घंटों के अन्दर विकसित होती है। इस में बहुधा श्वासप्रणाल-छेदन की जरूरत पड़ती है। बाद के उपद्रवों में सब से खराब है द्वितीयक रक्तस्राव। लैरिंक्स का अभिघातक पेरिकांड्राइटिस

सर्वाधिक गंभीर उपद्रवों में से एक है, जिस में लम्बी और कठिन चिकित्सा की जरूरत पड़ती है।

निदान. तुलनात्मक तौर पर इस अवस्था को पहचानना आसान है। अधिकांश केसों में लैरिंक्स तथा श्वास-प्रणाल की चोटों को बाहरी परीक्षण से ही पहचाना जा सकता है। ग्रीवा के घाव से झागदार खून का बाहर निकलना श्वासप्रणाल के वेधी घाव का निर्विवाद प्रमाण है। रक्त के धब्बों सहित खंखार के कफोत्सारण के साथ होने वाली खांसी भी लैरिंक्स और श्वास-प्रणाल में चोट का संकेत होती है। श्वसन कठिनाइयों की समय से पहचान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तत्काल होने वाली संकीर्णता के चिन्हों जैसे ग्रीवा तथा वक्ष के फ्लैसिड हिस्सों का अन्दर की तरफ खिंचना तथा श्यावता आदि पर विशेष ध्यान देना चाहिए। अंध घावों में एक्स-रे परीक्षण से आगंतुक शल्य के ठीक स्थान का पता चलाने में सहायता मिलती है।

पूर्वानुमान. यह हरदम गंभीर चोट की प्रकृति तथा आकार पर ही निर्भर नहीं करता है, बल्कि साथ में हुए संक्रमण और उपद्रवों पर भी निर्भर करता है। लगभग सभी घातक केसों में मृत्यु का कारण रक्तस्राव तथा श्वासावरोध होता है। जब तीव्र अवस्था के प्ररूपी खतरे निकल जाते हैं तब बाद के उपद्रवों, जैसे द्वितीयक रक्तस्राव, न्यूमोनिया, सेप्सिस आदि में लैरिंक्स और श्वासप्रणाल के घाव को और भी खतरे उपस्थित हो जा सकते हैं।

उपचार. प्राथमिक कदम रक्तस्राव रोकना तथा श्वासावरोध को दूर करना है। जब रक्तस्राव करती वाहिकाओं का बांधना असंभव हो तो ग्रैव वाहिकाओं को बांधने का काम करना चाहिए।

प्रगामी श्वसन अवरोध में श्वासप्रणाल-छेदन आवश्यक होता है। आजकल यह शस्त्रकर्म तभी किया जाता है जब दम घुटने से मृत्यु हो जाने का सीधा खतरा हो। घाव का प्राथमिक उपचार चोट के बाद जितनी जल्दी संभव हो सके अविलम्ब किया जाना चाहिए।

ऐसे आगंतुक शल्यों को जो पहुंच के भीतर हों, साथ ही चूरे हुए और स्पष्टतः मरते हुए कोमल ऊतकों को निकाल दिया जाता है। श्लेष्मा कला, पैरिकोन्ड्रियम तथा लैरिंक्स की उपास्थियों की विशेष देखभाल करने की जरूरत होती है। क्षतिग्रस्त उपास्थियों को अपने स्थान पर सेट करके पैरिकोन्ड्रियम होकर दिये गये टांकों से बांध देते हैं। कई केसों में त्वचा-क्षत की प्राथमिक सीवन पेनिसिलिन देने के साथ-साथ करना संभव होता

है। बाद की देखभाल के अंतर्गत घाव तथा अगल-बगल के ऊतकों की सावधानी से निगरानी जरूरी है, ताकि सपूय उपद्रव को रोका जा सके। पिछले कुछ वर्षों में उन उपद्रवों की दर में सल्फोनामाइड तथा पेनिसिलिन के प्रयोग के कारण भारी कमी आयी है। श्वासप्रणाल-छेदन में शस्त्रक-मोत्तर देखभाल आम नियमों के अनुसार ही की जाती है। वे सामान्य कदम जिन्हें उठाने की सलाह दी जाती है, इस प्रकार हैं—पूरी शान्ति, आवाज को आराम तथा दर्द और खांसी से आराम पहुंचाने के लिये मौर्फीन और पेन्टोपोन जैसे शामकों का उपयोग, साथ ही लार एवं श्लेष्मा के स्राव को कम करने के लिये एट्रोपीन का उपयोग। मुख-गुहा की देख-भाल पूरी तरह होनी चाहिए। अगर रोगी को कहीं ले जाना हो तो उसके साथ एक अनुभवी चिकित्सा-सहायक रहना चाहिए जो श्वासप्रणाल-छेदन नली को इस्तेमाल करने में सक्षम हो। इसकी लम्बाई उतनी पर्याप्त होनी चाहिए जितनी कि रास्तों में उसे गिरने से बचाने के लिये जरूरी हो। नली को, उस में एक रबड़ नली जिसका व्यास उपयुक्त हो, जोड़कर और लम्बा किया जा सकता है।

## ऊर्ध्व श्वसन-पथ के व्यावसायिक रोग

ऊर्ध्व श्वसन-पथ के लिये प्रमुख व्यावसायिक संकट निम्नलिखित हैं: (1) धूल, (2) वाष्प तथा गैस, (3) प्रतिकूल मौसम परिस्थितियों जैसे वायु की शुष्कता अथवा आर्द्रता, तापमान में तेजी से परिवर्तन, हवा के झोंके आदि।

विकार का सब से महत्वपूर्ण स्थान नासा-गुहा है, जो ऊर्ध्व श्वसन-पथ का खुलता हुआ भाग है और इसीलिये यह हानिकारक प्रभावों के प्रति सुग्राह्य है। दूसरे स्थान पर श्वसन-पथ के दूरस्थ भागों की विक्षतियां आती हैं। नासा ग्रसनी की विक्षतियों से यूस्टेशियन नली तथा मध्य कर्ण में रोग हो जा सकते हैं।

धूल. सारे व्यावसायिक कारणों में धूल का ऊर्ध्व श्वसन-पथ पर सब से खराब प्रभाव पड़ता है।

धूल कार्बनिक या अकार्बनिक हो सकती है। अकार्बनिक धूल भी खनिज या धात्विक प्रकार की हो सकती है, जबकि कार्बनिक धूल का मूल वनस्पति या जानवर हो सकते हैं। धूल का यांत्रिक या रासायनिक प्रभाव इसकी विलेयता तथा अवशोषण पर निर्भर करता है। सामान्य प्रकार की

औद्योगिक धूल से सामना लोहा, ब्रास, तांबा, सीसा, सिलिकेट, सिमेंट, चूना आदि के साथ काम करने पर होता है। वनस्पति धूल आटा, लकड़ी, तंबाकू, कपास से तथा जानवर, धूल ऊन, केशों तथा त्वचा की प्रोसेसिंग करने से आती हैं।

ये धूलें नासा, ग्रसनी तथा लैरिंक्स की श्लेष्मा का यांत्रिक विक्षोभ से शोथ कर देती हैं। विकार का स्थान तथा स्थिति अभिश्वसन किये हुए धूल के कणों के भौतिक गुणों, जैसे वजन, आकार-प्रकार तथा उनके उड़कर आने की गति पर निर्भर करते हैं। धातु तथा खनिज धूल के भारी कण मुख्यत: नाक के अग्र भाग पर आक्रमण करते हैं, जबकि सन, रूई आदि के हल्के कण श्वसन-पथ के भीतरी हिस्सों को प्रभावित करते हैं। ऐसे धूल कणों में, जो तेज गति से उड़ते हैं, जैसा कि धातु, पोर्सेलिन तथा अन्य पदार्थों की प्रोसेसिंग में होता है, अभिघातज कर्म अधिक होता है। चाक, जिप्सम तथा आटे के गोल कोमल कणों का श्लेष्मा कला पर प्रत्यक्ष अभिघातज प्रभाव श्वास पर गंभीर नहीं होता है। लेकिन ये धूलें तेजी से श्लेष्मा ग्रन्थियों की निर्गम वाहिकाओं को अवरुद्ध कर देती हैं, श्लेष्मा को शुष्क बना देती हैं, जिससे शोष प्रक्रिया की शुरूआत हो जाती है।

श्लेष्मा के तीव्र शोथ के प्रथम लक्षण हैं नाक में गुदगुदाहट, छींक तथा अच्छी मात्रा में नासास्राव। सूजी हुई नासा श्लेष्मा, नासा-श्वसन में बाधा पहुंचाती है तथा रोगी मुंह से सांस लेने लगता है, जिससे वह और अधिक मात्रा में धूल-कणों का अभिश्वसन करता है। मुख-श्वसन से ग्रसनी में क्षोभ होता है तथा गले में खुजली तथा सूखेपन का एहसास होता है, जिस के कारण गले को साफ करने की लगातार इच्छा होती है तथा जोरदार खांसी आती है। केटारल या सपूय कर्णशोथ तब होता है जब नासा-ग्रसनी और यूस्टेशियन नली भी प्रक्रिया में शामिल हो जाते हैं।

बहुधा केटारल शोथ से श्लेष्मा का शोष हो जाता है तथा बाद में ग्रन्थिल पद्धति का व्यपजनन होता है तथा स्तंभाकार रोमक उपकला की जगह शल्की उपकला आ जाती है। धूल द्वारा प्रोत्तेजित लगभग सभी श्वसन रोग केटारल और शोथ-प्रक्रिया के होते हैं। नासा-गुहा के शोथ के अलावा धूल वाले कुछ उद्योगों, आटा मिल, सिमेंट प्लांट आदि के मजदूर अग्र राइ-नाइटिस सिक्का विकसित करते हुए पाये जाते हैं जिसके साथ-साथ अपरदन, व्रण, बार-बार नासा-स्राव तथा नासा-पट का छिद्रण भी हो सकते

हैं। छिद्रण आम तौर पर अग्र कार्टिलेजीनस भाग में होता है तथा पर अस्थिय भाग को वैसे का वैसा छोड़ देता है। यह क्रोमियम उद्योग में काम करने वाले मजदूरों में ज्यादा होता है, तथा सिमेंट और कास्टिक अम्ल उत्पादन करने में संलग्न मजदूरों में कम।

कुछ प्रकार की धूलों का रासायनिक प्रभाव उन की अभिघातज क्रिया से बराबर संयुक्त रहता है। तेल, सेलाइन घोल की क्रिया केटारल-शोथ के लक्षण उत्पन्न करती है जिससे बहुधा बाद में ऊतक अतिवृद्धि हो जाती है। एक रासायनिक दाह के बाद बहुधा ऊतकों में क्षत-चिन्ह तथा शोष हो जाते हैं। क्रोमिक अम्ल के लवणों एवं वाष्पों के द्वारा श्लेष्मा कला पर एक निश्चित प्रभाव उत्पन्न होता जो न सिर्फ नासा-श्लेष्मा का बल्कि सेप्टल उपास्थि का भी सीमित परिगलन कर देता है, जिस में बाद में छिद्र हो जाता है।

अधिकांश केसों में वाष्पों और गैसों का हानिकारक प्रभाव उनकी विषालुता के कारण होता है और स्थानीय लक्षणों के अलावा वे अक्सर सामान्य मादकता भी पैदा करते हैं। ऊर्ध्व श्वसन-पथ की श्लेष्मा में विकार की सीमा सर्वोपरि किसी विशेष गैस की पानी में विलेयता पर निर्भर करती है। इससे मसलन यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अमोनिया खासकर नासा एवं ग्रसनी को ही क्यों प्रभावित करता है, जबकि फौस्जीन मुख्यतः फुफ्फुस एल्वियोलाई पर आक्रमण करता है। कुछ गैसों से विषाक्तता से श्लेष्मा कुछ रोगजनक जीवाणुओं से प्रतिरोध करने में अक्षम हो जाती है। अतः हाइड्रोजन सल्फाइड तथा सल्फ्यूरस गैस विषाक्तता स्ट्रेप्टोकोकाई तथा स्टेफाइलोकोकाई से प्रतिरोध को कम कर देती है; यह ऊर्ध्व श्वसन-पथ की श्लेष्मा में शोथ के विकसित होने में योगदान करता है। सल्फरस वाष्प (एनहाइड्राइटस) ऊर्ध्व श्वसन-पथ की सभी श्लेष्मा-कलाओं में क्षोभ उत्पन्न करता है। इन केसों में रोग लक्षण श्लेष्मा के शोथ, व्रण और परिगलन के होते हैं।

तीव्र गैस-विषाक्तता में तीव्र नासा-शोथ तथा तीव्र-लैरिंजाइटिस के लक्षण मिलते हैं, जब कि चिरकारी गैस-विषक्तता श्लेष्मा का चिरकारी केटारल शोथ पैदा करती है। विक्षति आम तौर पर घ्राण विश्लेषकों के ग्राहकों को भी समेट लेती है तथा गन्ध-बोध बहुत हद तक या एकदम समाप्त हो जाता है।

अम्लों के, जैसे सल्फ्यूरिक, हाइड्रोक्लोरिक नाइट्रिक अम्लों या अन्य

अम्लों के वाष्प श्लेष्मा कलाओं में क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं और ऊर्ध्व श्वसन-पथ की श्लेष्मा में शोथ प्रोत्तेजित कर देते हैं, जो तीव्र या चिरकारी हानिकारक प्रभाव की अवधि के आधार पर हो सकता है। अम्लों का प्रभाव अल्बूमाइनेटों के कोशिकीय प्रोटीनों के साथ योग द्वारा निर्माण में अनिवार्यत: निहित होता है।

क्षारों में कौटरीकरण करने के हल्के गुण रहते हैं पर उन का प्रोटोप्लाज्म पर तनु करने वाला प्रभाव काफी होता है। शोथ प्रतिक्रिया कम होती है, फिर भी यह बढ़ने की ओर प्रवृत्ति रहती है और कभी-कभी इसकी परिणति ऊतकों के काफी नष्ट हो जाने में होती है।

कई वोलाटाइल तेल, तैल पदार्थ तथा टर्पेन्टाइन तेल श्लेष्मा में तेज क्षोभ पैदा करते हैं तथा इसका धीरे-धीरे शोष होने लगता है। प्रारंभिक अवस्था में श्लेष्मा अतिसुग्राही होती तथा उसमें क्षोभ होता है। इसके बाद सुग्राहिता पूरी तरह समाप्त हो जाती है तथा गंध-बोध की आंशिक या पूर्ण हानि हो जाती है। कई उद्योगों में वाष्पों, हानिकारक गैसों तथा धूल का संयुक्त प्रभाव पाया जाता है।

श्लेष्मा के विकार का एक सब से पहला लक्षण, मसलन नाक में, काफी मात्रा में द्रव्य-स्राव तथा ईडिमा होता है। अन्य हानिकर कारक जैसे धूल, गैस या संक्रमण का संयुक्त प्रभाव ऊर्ध्व श्वसन-पथ की श्लेष्मा में गंभीर शोथ पैदा करते हैं। रोग-निरोध के अभाव में वैसे व्यक्तियों में जो शुष्क, गर्म तथा धूल भरे वातावरण में काम करते हैं जैसे स्टोक्स , फाउन्ड्री तथा भट्ठी में काम करने वालों में, श्लेष्मा का शोष विकसित हो जाता है।

ऊर्ध्व श्वसन-पथ के व्यावसायिक रोगों का निरोध सामूहिक तथा व्यक्तिगत कदमों पर आधारित होता है। सोवियत कानूनों तथा उपयुक्त श्रम-सुरक्षा के नियमों द्वारा सामाजिक महत्व के ऐसे सारे कदमों को उठाया गया है। हाल ही में, व्यवसाय के सम्बन्ध में चिकित्सा सलाह तथा ऊर्ध्व श्वसन-पथ के रोग-निरोधी उपचार पर विशेष जोर दिया गया है। चिकित्सा परीक्षण पर आधारित यह सलाह नये रोजगार प्राप्त व्यक्ति को उसकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं के अनुरूप सब से अच्छे काम पर नियुक्त होने में सहायता प्रदान करती है तथा प्रशासन को खास तौर पर हानिकारक कामों को करने के लिये ऐसे व्यक्तियों के चुनाव में मदद करती है जिनकी शारीरिक तंदुरुस्ती अत्यन्त अच्छी हो और जिनमें अनुकूलन की क्षमता हो।

उदाहरण के लिये एक ऐसा नौजवान, जिसे काफी विकसित शोषी नासा-

शोथ हो, अगर खासे धूल भरे वातावरण में काम करता है तो अपने स्वस्थ सहयोगी के मुकाबले धूल के प्रति अधिक सुग्राह्य होगा। दूसरा उदाहरण: एक युवक को, जिसे एडिनाइड्स तथा चिरकारी नासा-शोथ हो, काम पर जाने से पूर्व निश्चित तौर पर उसके ऊपरी वायु मार्गों का रोग-निरोधी उपचार लेना चाहिए, यानी उसका एडिनाइड्स निकाल दिया जाना चाहिए तथा उसको नासा-शोथ से ठीक कर दिया जाना चाहिए।

उदाहरणों की लम्बी सूची में यह एक उदाहरण था, जो यह निस्संदेह साबित करता है कि नियमित काम में नियुक्ति के पहले व्यवसाय के बारे में चिकित्सा सलाह तथा रोगनिरोधी कदम अत्यन्त आवश्यक है।

व्यक्तिगत रोग-निरोध के अन्तर्गत नासा-गुहा का विभिन्न वसीय पदार्थों से (क्रोमियम उत्पादन में) स्नेहन करना या नाक के लिये विभिन्न तैल ड्रौप्स का उपयोग कर के तथा उद्योगों में नाक, ग्रसनी और लैरिंक्स के नियमित डूश करके तथा अभिश्वसन के द्वारा ऐसा करना शामिल है। धूल भरे वातावरण में काम करने के तुरन्त बाद किये गये अभिश्वसन का निर्णायिक महत्व हो सकता है। विशेष प्रकार के मास्क तथा रेस्पीरेटर आदि ऊपरी वायु मार्गों में नोक्सस पदार्थों के अभिश्वसन को रोकने के लिये उपलब्ध हैं।

सामूहिक रोग-निरोध के अन्तर्गत मुख्य तौर पर वे कदम आते हैं जिनके द्वारा उत्पादन की विधियों में सुधार किया जाता है ताकि हानिकारक औद्योगिक कारकों जैसे धूल, वाष्प, गैस इत्यादि के मूल कारणों को बड़ी सीमा तक दूर किया जा सके। इस उद्देश्य से विशेषकर बड़े पैमाने पर उन्नत संवातन पद्धति लागू की गयी है।

ये कदम सभी सोवियत संयंत्रों तथा कारखानों में उठाये गये हैं और नयी औद्योगिक परियोजनाओं में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

रोग-निरोध के अन्य उपाय, जो सोवियत संघ में स्वास्थ्यवर्धन के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण समझे जाते हैं, इस प्रकार हैं: नियमित छुट्टियां, जो स्वास्थ्य संकट वाले कामों में संलग्न लोगों के लिये और भी लम्बी होती हैं, जनकल्याण तथा सांस्कृतिक स्तर का विकास, आराम-गृहों तथा सैनिटोरियमों में छुट्टियां, मुफ्त चिकित्सा सहायता, मदात्यय नियंत्रण, इत्यादि।

# ईसोफेगस के रोग

## ईसोफेगस की शरीर-रचना

ईसोफेगस लगभग 25 सें० मी० लम्बी एक पेशीनलिका है जो ग्रसनी के निचले भाग से, और जो क्रीकाइड उपास्थि के ऊपरी सीमा के स्तर में होता है, नीचे वक्ष-गुहा से होकर गुजरती है तथा डायाफ्राम को बेध कर फिर उदर में मुड़ जाती है।

ईसोफेगस में ग्रैव, वक्ष तथा उदरीय, तीन भाग होते हैं। ईसोफेगस की भित्तियों की तीन परतें होती हैं: (1) शल्की उपकला से आच्छादित श्लेष्मा, (2) सीधे और तिरछे पेशी-तंतुओं से बनी पेशी-पर्त, (3) बाहरी पर्त, जो घने और तंतु-संयोजी ऊतकों से बनी होती है, जो कुछ प्रत्यास्थ तन्तुओं के साथ से अंतरावेष्ठित रहती है।

व्यावहारिक दृष्टि से यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि ईसोफेगस का ल्यूमैन अपनी पूरी लम्बाई में एक समान नहीं होता और इस में तीन ढांचागत संकीर्णताएं होती हैं, पहली ईसोफेगस के शुरू होने पर, दूसरी बायीं श्वसनी से अन्तरायोजी के बिन्दु पर तथा तीसरी उदर के प्रवेश पर। आगंतुक शल्य इन्हीं संकीर्ण स्थानों में निवेशित होने की प्रवृत्ति रखते हैं। वयस्कों में दांतों के ऊपरी किनारे से पहली संकीर्णता तक की दूरी 15-17 सें० मी०, दूसरी संकीर्णता तक की 22-25 सें० मी० तथा उदर प्रवेश तक की दूरी 40-42 सें० मी० है।

## ईसोफेगस के परीक्षण की विधियां

वास्तविक परीक्षण से पूर्व रोगी की निगरण कष्ट की शिकायतों का विस्तार से पता लगा लेना महत्वपूर्ण होता है। सब से आम परीक्षण है – विभेदक माध्यम से ईसोफेगस का रेन्टगेन (एक्सरे) दर्शन तथा रेन्टगेन

आलिग्व ईसोफेगस का अन्वेषण, इसके रोगों का निदान तथा आगन्तुक शल्यों को बाहर निकालने का काम। एन्डोस्कोपी ज्यादा विशेष तौर पर ईसोफेगोस्कोपी द्वारा करते हैं जो अत्यन्त मूल्यवान नैदानिक तथा चिकित्सा पद्धति है।

## ईसोफेगस के दग्ध तथा निकोचन

ईसोफेगस के दग्ध, गर्म भोजन, अम्लों तथा कास्टिक क्षारों से होते हैं जिनका विनाशकारी प्रभाव काफी ज्यादा होता है। नेक्रोसिस, फाइब्रोसिस या परिगलन, जो ईसोफेगस में हो जा सकते हैं, निगले हुए रसायन के गुणों तथा सांद्रण पर निर्भर करते हैं। ईसोफेगस की भित्तियों का परिगलन कभी-कभी इतना गहरा हो सकता है कि पेशी अस्तर को भी समेट ले सकता है तथा पूरी ग्रास नली की भित्ति का छिद्रण कर दे सकता है तथा कभी-कभी मध्यानिका क्षोभ हो जा सकता है।

रोग की हल्की स्थितियों में बाद में होने वाले क्षतांकन से ईसोफेगस के निकोचन हो सकते हैं जो अपनी भित्ति के पिछले शोथों और व्रणों के कारण भी विकसित हो जा सकते हैं। ईसोफेगस का ल्यूमैन बाहरी अर्बुद के इसकी भित्तियों पर दबाव के कारण और संकरा हो जा सकता है या विकसित होते हुए आन्तरिक अर्बुदों के कारण बाधित होता है जो इसे पूरी तरह अवरुद्ध कर दे सकते हैं।

रोगी निगरण-कष्ट तथा कभी-कभी गले में पूर्ण अवरोध की शिकायत करते हैं, रोग की हल्की स्थितियों में सिर्फ ठोस आहार निगलने में ही कठिनाई होती है, तरल भोजन आसानी से निगला जा सकता है। इन रोगियों का वजन तेजी से गिरता जाता है।

अम्ल या क्षार के निगलने के तुरन्त बाद प्राथमिक उपचार के तौर पर पहले 6 घंटों के भीतर ही उदर का सावधानी से धोवन कम से कम करते हैं तथा टौक्सिक पदार्थ का निष्प्रभावीकरण करते हैं।

अम्ल विषाक्तता में उदर को उष्ण पानी या उष्ण मैग्नेसियम आक्साइड घोल से साफ करते हैं। चूने या क्यूकिलेजीनस डिकोक्सन्स को मुंह के रास्ते देते हैं तथा बर्फ के टुकड़ों को निगलने की सलाह भी दी जाती है।

क्षार-विषाक्तता में उदर को एसिटिक अम्ल वाले पानी से धोते हैं तथा

रोगी को टार्टरिक, एसिटिक, या सिट्रिक अम्ल का 1 प्रतिशत घोल लेने, काफी दूध पीने, क्यूकिलेजीनस डिकोक्सन्स, तैल इमल्शन लेने तथा बर्फ के टुकड़ों को निगलने का निर्देश दिया जाता है।

साथ ही शॉक के उपचार के लिये कदम उठाने की आवश्यकता होती है, तथा 2 प्रतिशत पेन्टोपोन या ओम्नोपोन घोलों की 1 मि० ली० मात्रा का या 1 प्रतिशत मार्फीन घोल की 1 मि० ली० मात्रा का अधस्त्वक इन्जेक्शन दिया जाता है। अगर जरूरी हो तो त्वचा को नीचे कैम्फर, कैफीन या एक क्रियाविज्ञानी घोल का इंजेक्शन देते हैं।

शोथज प्रतिक्रिया को कम करने तथा गंभीर उपद्रवों से, जो दग्ध के बाद बहुधा हो जाते हैं, बचने के लिये पहले ही दिन बड़ी मात्रा में पेनिसिलिन चिकित्सा दी जाती है और उसे 6 से 9 दिनों तक जारी रखा जाता है।

उपचार. दुर्घटना के प्रथम सप्ताह में दूध, क्रीम, फटे हुए कच्चे अंडों तथा म्यूसिलेजीनस शोरबों आदि का रक्षक आहार दिया जाता है। एक चम्मच भर वनस्पति तेलों, जैसे जैतून और सूर्यमुखी फूल के तेलों को 5-6 बार प्रति दिन दिये जाने पर तप्त द्रवदाहग्रस्त श्लेष्मा पर आराम पहुंचाने वाला प्रभाव पड़ता है। रोगी को काफी तरल पीने की सलाह दी जाती है, और निगरण कष्ट होने पर, पोषक एनिमा साथ ही 5 प्रतिशत ग्लूकोज घोल तथा क्रियाविज्ञानी घोल का इन्फ्यूजन देते हैं तथा अगर जरूरी हुआ हो तो, रक्ताधान भी दिया जा सकता है। शोथ-लक्षणों के समाप्त हो जाने पर अगर कोई रोग-जटिलता न बची रहे तो रोगी को तुरन्त उसका नियमित आहार देना शुरू कर देना चाहिए और रफेज लेने से बचना चाहिए। ईसोफेगस के रासायनिक दग्धों का सफल उपचार "जल्द" बूजी प्रवेशन से करते हैं जो चिकित्सक के द्वारा तब किया जाता है जब तीव्र लक्षण शान्त पड़ गये होते हैं। रोग की हल्की स्थितियों में इसे पांचवें या छटे दिन से करते हैं तथा कुछ अधिक गंभीर स्थितियों में आठवें या बारहवें दिन से। इस विधि को दो या तीन महीने तक जारी रखा जाता है। रोग के चिरकारी होने की स्थिति में, जहां क्षतांकज निकोचन पहले ही बन गया हो, देर तक बूजी-प्रवेशन का उपयोग करते हैं जो अत्यन्त कठिन, कम प्रभावकारी होता है और बहुधा उसके बाद बार-बार निकोचन होता रहता है।

बूजी को उबालते नहीं हैं, बल्कि गर्म पानी से धोते हैं और किसी विसं-

क्रामक घोल, ग्राम तौर पर 1 प्रतिशत क्लोरामीन घोल, से भिगोकर रखे गये रूई के टुकड़े से सुखा लेते हैं।

कास्टिक दग्ध के बाद ईसोफेगस के क्षतांकज निकाचन की रोकथाम के लिये ग्रावश्यक है कि समय पर ग्रौर उचित ग्रापात सहायता पहुंचायी जाय तथा दुर्घटना के शुरू के दिनों में ही ठीक उपचार कर दिया जाय।

कास्टिक दग्धों के गंभीर प्रभावों के बारे में स्वास्थ्य तथा सफाई संबंधी भाषणों तथा पोस्टरों के जरिए जानकारी व्यापक तौर पर उपलब्ध करायी जानी चाहिए। साथ ही, स्वास्थ्य ग्रधिकारियों को यह देखना चाहिए कि कास्टिक योग, जैसे कास्टिक सोडा या एसिटिक ग्रम्ल, विशेष पैकेजों या बोतलों में "जहर" का लेबल लगा कर ही बेचे जायें।

## ईसोफेगस के ग्रागंतुक शल्य

कई तरह के पदार्थों, जैसे मछली के कांटे, सिक्के, बटन, नेल्स इत्यादि के ईसोफेगस में फंस जाने का खतरा रहता है। वे ग्राम तौर पर ढांचागत संकीर्णताग्रों में निवेशित होते हैं, हालांकि तेज तथा खुरदुरे पदार्थ ईसोफेगस के किसी हिस्से में भी फंस सकते हैं। ग्रागन्तुक शल्यों में ग्रधिकांश, लगभग 75 प्रतिशत, ईसोफेगस की ऊपरी तिहाई में ही निवेशित होते हैं। ग्रागंतुक शल्य के लक्षण हैं निगलने में कठिनाई, छाती या मेरुदण्ड में दर्द ग्रौर दबाव। ईसोफेगस की भित्तियों में सटे तेज पदार्थ छिद्र कर दे सकते हैं, जिससे कभी-कभी तेज दर्द तथा फ्लेगमोनस परिग्रास, नली-शोथ, या मध्यस्थानिका शोथ के लक्षण उत्पन्न हो जा सकते हैं। कभी-कभी यह मृत्यूकारक साबित होता है।

निदान रोगी से प्राप्त विस्तृत इतिवृत्त, विभेदक माध्यम एक्स-रे परीक्षण तथा कभी-कभी रेन्टगेन ग्रालेख पर निर्भर करता है। जरूरत होने पर, ईसोफेगोस्कोपी का निदान के रूप में साथ ही दृष्टि के निर्देश में ग्रागन्तुक शल्य निकालने के लिये चिकित्सीय उपाय के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए। प्रोबिंग तथा विभिन्न उपकरणों, सिक्का एक्सट्रैक्टर या फारसेप्स के द्वारा ग्रागंतुक शल्य निकालने के लिये मनमाना प्रयास करना एकदम मना है।

ग्रगर ग्रास-नली के मार्ग से ग्रागन्तुक शल्य निकालने के ग्रसफल प्रयास के बाद वह सूज गयी हो तथा वहां दाब वेदना हो तो, सब से ग्रच्छी विधि है–बड़ी मात्रा में रोगी को पेनिसिलिन देना तथा ग्रभिघातज ग्रासनली-

शोथ के लक्षणों के ठीक हो जाने के लिये दो-तीन दिन इंतजार करना। सौम्य आहार लेने की, तथा कुछ दिनों के लिये पेनिसिलिन का अंतर्येशी

ईसोफेगस की भित्तियों में खरोंचें होने की स्थिति में, जब कि ग्रासनली-मार्ग में आकर्ष तथा मद्धिम दर्द हो जा सकता है, तरलों तथा दलिया का सौम्य आहार लेने की, तथा कुछ दिनों के लिये पेनिसिलिन का अंतर्पेशी इन्जेक्शन लेने साथ ही ग्रास-नली की अनैच्छिक पेशियों के आकर्ष को समाप्त करने के लिये एट्रोपीन तथा एट्रोपीन औषधियां लेने की सलाह दी जाती है। जहां ईसोफेगोस्कोप से आगन्तुक शल्य निकालना संभव न हो वहां ग्रास-नली-छेदन की जरूरत होगी।

## ईसोफेगस का कैन्सर

दुर्दम अर्बुदों की कुल संख्या में काफी संख्या ईसोफेगस के कैन्सर की होती है तथा आम तौर पर यह 40 या 50 वर्ष की उम्र से अधिक के पुरुषों में होता है।

ज्यादा उम्र के व्यक्तियों में निगरण कष्ट की शिकायत होने पर कैंसर के लिये जांच कर लेनी चाहिए। ग्रास-नली के कैन्सर के शुरूआती चरण में निगरण-कष्ट कई बार साथ-साथ हुए ईसोफेगस के आकर्ष का संकेत होता है और यह भोजन के प्रकार तथा तंत्रिका-तंत्र की अवस्था के अनुसार कम या ज्यादा हो जाता है। दर्द ईसोफेगस की शोथज-भित्तियों के आकर्ष या व्रण से हो जा सकता है। सब से पहले बेचैनी और निगलते समय स्टर-नम के पीछे दबाव तथा बेचैनी के एहसास की शिकायत हो सकती है, जबकि बाद में काफी दर्द तथा खिंचाव होता है, जो ग्रीवा की तरफ, स्कन्ध ब्लेड्स के बीच के क्षेत्र में तथा अधिजठर क्षेत्र में फैल जाता है। फिर, ये लक्षण कुछ हद तक अर्बुद के स्थान पर भी निर्भर करते हैं। बहुधा वमन होता है तथा खाने के समय मरोड़ उठती है। लालास्राव बढ़ जाता है तथा सांसों में दुर्गन्ध आती है। तो भी, अन्तिम निदान एक्स-रे परीक्षण तथा ईसोफेगोस्कोपी पर निर्भर करता है।

उपचार. आजकल ईसोफेगस के कैन्सर के उपचार में, विशेषकर इस की शुरू की अवस्थाओं में, उतनी निराशाजनक स्थिति नहीं है जितना कि पहले थी। यह वक्ष-शल्यक्रिया में महती प्रगति के कारण संभव हुआ

है। जरूरत पड़ने पर रेडियोथेरैपी भी कर सकते हैं। रोग की [illegible] गंभीर अवस्था की स्थितियों में, जिस में निगरण में बहुत ही कठिनाई हो, मृत्यु में देर करने के लिये गैस्ट्रोटोमी करते हैं।

रोग-निरोध. इस बात के प्रमाण मौजूद हैं कि शराब, तम्बाकू तथा गर्म भोजन के दुष्प्रयोग का ग्रास-नली के कैन्सर की दर पर असर पड़ता है। स्वास्थ्यवर्धन के विषय पर किसी भी भाषण या बहस में इस तथ्य पर जोर दिया जाना चाहिए।

# परिशिष्ट

## स्वास्थ्य-शिक्षा

अपने नियमित कर्तव्यों के अलावा कनिष्ठ चिकित्साकर्मियों पर स्वास्थ्य-शिक्षा का अभियान संगठित करने की जिम्मेदारी भी होती है, ताकि समाज का स्वास्थ्य-स्तर ऊंचा उठ सके तथा संक्रामक, जानपदिक तथा परजीवी रोगों से बचाव के लिये जरूरी व्यक्तिगत तथा सामूहिक उपायों तथा व्यक्तिगत और औद्योगिक स्वास्थ्य के तत्वों के सम्बन्ध में जानकारी मिल सके या प्रचार हो सके।

रोग-निरोध पर जोर, जो कि सोवियत चिकित्सा की एक विशिष्टता है, किसी भी शाखा के मुकाबले कर्णनासाकंठविज्ञान में ज्यादा स्पष्ट है। निस्संदेह, कर्ण नासाकंठविज्ञान के किसी भी विभाग पर विचार क्यों न किया जा रहा हो, आकारिकी विक्षोभ को रोकने में कान, नाक तथा गले की बीमारियों के रोग-निरोध एवं उपचार की जबर्दस्त भूमिका खुलकर सामने आ जाती है। उदाहरणार्थ, तीव्र तथा चिरकारी टान्सिल-शोथ के समय पर इलाज रियूमेटिज्म, वृक्कशोथ, संक्रामक बहुसंधि शोथ जैसी गंभीर बीमारियों को रोकने में मदद करता है। नाक तथा नासा-ग्रसनी के रोगों का समय पर उपचार ऊर्ध्व श्वसन-पथ के बार-बार होने वाले केटार, मध्य कर्ण के रोगों आदि से बचाव करता है, जबकि मध्य कर्ण-शोथ का उपचार जबरदस्त अंतःकपाल उपद्रवों, जैसे तानिकाशोथ, सेप्सिस प्रमस्तिष्क विद्रधि के खतरों से बचाव करता है। कर्णनासाकंठविज्ञान पर भाषणों तथा बहसों का बड़े पैमाने पर संगठन, इसी विषय पर पुस्तिकाओं एवं पर्चों का वितरण, निस्संदेह कान, नाक, गले की बीमारियों का शुरू में ही पता लगा लेने में तथा उनका उपचार करने में मदद करेगा तथा इस तरह उनके

बहुत से उपद्रव होने से बचायेगा। यह चिकित्साकर्मियों का कर्तव्य है कि वे स्वास्थ्य-शिक्षा को अपने नियमित रोग-उपचार तथा निरोध-कार्यों का अभिन्न अंग समझें।

नीचे हम स्वास्थ्य शिक्षा के सम्बन्ध में भाषणों और बहसों के लिये सुझाये गये विषयों की संक्षिप्त सूची दे रहे हैं :

(1) टांसिल-शोथ और इसका नियंत्रण.

(2) बच्चों में नासावरोध तथा इसके परिणाम.

(3) श्रवण दोषों की रोकथाम.

(4) सपूय मध्य कर्ण-शोथ के अन्तःकपाल-उपद्रवों की रोकथाम.

(5) नासा-रक्तस्राव और उसकी रोकथाम.

(6) चिरकारी कर्ण पूय आस्राव के रोगियों को सलाह.

(7) चिरकारी टान्सिल-शोथ.

(8) ऊर्ध्व श्वसन-पथ के रोगों के निरोध के तौर पर शरीर को मजबूत करना.

(9) चिरकारी नासा शोथ के कारण और उपचार .

(10) धूम्रपान का गंध, स्वाद तथा श्रवण-बोध पर हानिकारक प्रभाव।

प्रस्तुत पुस्तक कान, नाक, गले की बीमारियों के बारे में सारी जरूरी सूचना प्रदान कर सकती है। भाषण या बहस 20-30 मिनट का होना चाहिए तथा इन की भाषा साधारण तथा उपस्थित लोगों की समझ में आ सकने लायक होनी चाहिए। प्रतिदिन की जिन्दगी से उदाहरण देकर भाषण या बहस को ज्यादा रोचक बनाया जा सकता है।

सभाओं में भाषण देने के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को, जिसको कान, नाक या गले की बीमारी हो, रोग की प्रवृत्ति के बारे में विस्तृत स्पष्टीकरण देना चाहिए तथा रोग की पुनरावृत्ति को रोकने के सम्बन्ध में निर्देश देने चाहिए। निर्देश का ठीक से पालन नहीं करने पर होने वाले उपद्रवों के बारे में सूचित करना भी महत्वपूर्ण है।

नीचे दो अलग-अलग विषयों पर भाषण अथवा बहस की एक नमूने के तौर पर एक योजना दी गयी है।

पहला विषय : "टांसिल-शोथ तथा इसका नियंत्रण"

भाषण की शुरूआत, गलतोरणिका-टांसिल की शरीर-रचना तथा क्रिया-विज्ञान का संक्षेप में वर्णन करके फिर केटारल, रिक्तिका तथा पुटकीय

टांसिल शोथ में गलतोरणिका में होने वाले परिवर्तनों के बारे में बता कर, करनी चाहिए। इस पर जोर देना चाहिए कि यह रोग एक आकारिकी विक्षोभ है, जिस में बिस्तर पर आराम तथा स्वास्थ्यकर आदतों की आवश्यकता होती है। चूंकि टांसिल शोथ डिप्थीरिया या स्कार्लेट ज्वर के कारण हो सकता है अतः यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि जितना जल्द संभव हो, डाक्टर की सलाह ली जाये, ताकि रोगी को समय पर संक्रामक रोगों के अस्पताल में ले जाया जा सके। टांसिल-शोथ के गंभीर उपद्रवों जैसे रूमेटिज्म, वृक्कशोथ, आदि को भी लक्षित किया जाना चाहिए। किन्तु भाषण का प्रमुख मुद्दा टांसिल-शोथ रोकने के लिये कदम होने चाहिए, जैसे रोगी के लिये अलग बिस्तर तथा खाने के बर्तन की व्यवस्था, ताकि रोग का दूसरे लोगों तक संचरण न हो सके। इसी कारण रोगी का कमरा भी हवादार होना चाहिए तथा कमरे को भीगे कपड़े से साफ कर लिया जाना चाहिए। इस पर बल देना चाहिए कि एडिनाइड, चिरकारी नासा-शोथ या चिरकारी वायुविवर-शोथ के कारण होने वाला नासा-अवरोध बार-बार होने वाले टांसिल-शोथ का कारण हो सकता है। दंत-क्षरण भी प्रवर्तनपूर्व कारणों में से एक हो सकता है। चूंकि टांसिल-शोथ के पहले बहुधा कंपकंपी होती है, अतः शरीर को मजबूत बनाने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। कैसे सांस लें, और धूप स्नान करें तथा कैसे अपने शरीर का स्पंज करें, इसके बारे में विस्तृत स्पष्टीकरण करने चाहिए।

काम और आराम में बुद्धिमत्तापूर्ण विभाजन, अच्छा आहार, अच्छा स्वास्थ्य कायम करने हेतु व्यायाम तथा खेलकूद पर जोर दिया जाना चाहिए।

दूसरा विषय : "बच्चों में नासा-अवरोध तथा इसके परिणाम"

शरीर के लिये सामान्य नासा-श्वसन का महत्व बताने तथा नाक की शरीर-रचना तथा क्रिया-विज्ञान का संक्षिप्त विवरण देने के बाद, यह अवश्य ही इंगित किया जाना चाहिए कि श्वसन-अवरोध का सब से आम कारण बच्चों में एडिनाइड अतिवृद्धि, चिरकारी नासा-शोथ तथा परानासा-विवरों के चिरकारी शोथ होते हैं, जबकि नासा के अर्बुद, जो वयस्कों तक ही सीमित रहते हैं, आम तौर पर कम ही इसके वायु मार्ग को अवरुद्ध करते हैं। इस अवस्था के लक्षणों को बताते समय उपचार के तरीके पर भी संक्षिप्त टिप्पणी कर देनी चाहिए। इसके बाद बताना चाहिए कि नासा अवरोध को नाक के साथ के वायु-मार्गों के विकार मध्य कर्ण शोथ तथा श्रवण हानि हो सकते हैं। बच्चे के विकास पर एडिनाइड के नकारात्मक

प्रभावों, जैसा कि मानसिक मन्दता स्केलेटल विरूपताओं आदि से दिखता है, के बारे में भी बताना चाहिए।

प्रत्येक कनिष्ठ चिकित्सा कार्यकर्ता को विभिन्न संगठनों की सहायता से और स्थानीय रेडक्रास या रेड क्रीसेंट सोसाइटी के कर्मियों के घनिष्ठ सहयोग से तथा दूसरे सार्वजनिक संगठनों की सहायता प्राप्त करते हुए स्वास्थ्यशिक्षा-अभियान में अपने हिस्से का कार्य करना चाहिए। यह सुनिश्चित करने के लिये हर प्रयास करना चाहिए कि हर व्यक्ति स्वच्छता के महत्व को, व्यावसायिक संकटों को खत्म करने व श्रम सुरक्षा नियमों के पालन के महत्व को समझे।

FOR ACQUIRING MIR BOOKS, PLEASE CONTACT

**People's Publishing House (P) LTD,**
5 — E, Rani Jhansi Road, New Delhi — 110055,
Phones: 529365, 523349

**Punjab Book Centre,**
S.C.O. 1126—27, Sector 22 — B,
Chandigarh — 160022,
Phone: 32052

**Lok Vangmaya Griha (P) LTD,**
Prabhadevi, 85, Sayani Road, Bombay — 400025,
Phone: 422822, Grams: Lok Sahitya

**People's Book House,**
Piram Shah Manzil, Gheekanta Cross Road,
Relief Road, Ahmedabad — 380001,
Phones: 335210, 332995

**Rajastan People's Publishing House (P) LTD,**
Chameliwala Market, M. I. Road, Jaipur — 302001,
Phone: 74620

**Manisha Granthalaya (P) LTD,**
4/3 — B, Bankim Chatterjee Street,
Calcutta — 700073,
Phone: 348637

**National Book Agency (P) LTD,**
12, Bankim Chatterjee Street,
Calcutta — 700012, Phone: 341677,
Grams: Marxist Lit.

**Bingsha Shatabdi,**
Soviet Book Centre, 75—C, Park Street,
Calcutta — 700016,
Phone: 244496

**People's Book House,**
Opp. Patna College, Ashoka Raj Path,
Patna — 800004,
Phone: 51315

**Nabajuga Granthalaya,**
Bajrakabati Road,
Cuttack — 753001

**Sahityalaya,**
"Ashirvad", 56/5, Sirki Mahal Chauraha,
Kanpur — 208001

**Navakarnataka Publications (P) LTD,**
B.R.C. Complex, [illegible] Road, Bangalore [illegible]
Phone: 73810, Grams: Book Centre

**Visalaandhra Publishing House,**
Chandram Bldgs., Machavaram,
P.O. Vijayawada 520001,
Phones: 75301, 61529, 75302,
Grams: Vignana

**Magazine Centre,**
52, Abid Shopping Centre,
Chiragali Lane, Hyderabad — 500001,
Phone: 33079

**New Century Book House (P) LTD,**
41 — B, Sidco Industrial Estate,
Ambattur, Madras — 600098,
Phone: 432410,
Grams: New Lit.

**Prabhat Book House,**
Vanchiyoor, Trivandrum — 695024,
Phones: 66533, 66568, 66616,
Grams: Prabhath